सुख का पंछी

उज़्बेक लेखकों की कहानियाँ

सुख का पंछी

उज़्बेक लेखकों की कहानियाँ

कामगार प्रकाशन

प्रथम कामगार संस्करण, सितम्बर, 2025

प्रकाशक की ओर से

*यह पुस्तक **सुख का पंछी उज़्बेक लेखकों की कहानियाँ**, रादुगा प्रकाशन, ताशक़न्द, 1984 द्वारा प्रकाशित से पुनर्मुद्रित की गई है।*

साभार : रादुगा प्रकाशन

ISBN : 978-81-989139-2-0

मूल्य : 400 रुपये

प्रकाशक

बलराम शर्मा,
कामगार प्रकाशन
बी–4838, गली नं.112, संतनगर बुराड़ी, दिल्ली-110084
वेबसाईट : kamgarprakashan.com
ईमेल : kamgarprakashan@gmail.com
मोबाईल :

मुद्रक
कोमसर्विसेस, ए-73, वजीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया,
दिल्ली-110052

विषय-सूची

प्रस्तावना 5

1. ग़फ़ूर गुलाम, **प्यारा चोर** 8
   अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

2. अब्दुल्ला क़ह्हार, **अंधों का इलाज** 11
   अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

3. आयदिन (मंज़ुरा साबिरोवा), **ख़ुशी के आँसू** 34
   अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

4. नज़ीर सफ़ारोव, **सच्चा सुख** 58
   अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

5. शोहरत, **फटकार** 68
   अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

6. हमीद गुलाम, **सिपाही की माँ** 82
   अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

7. रहमत फ़ैज़ी, **सास** 94
   अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

8. सईद अहमद, **सुम्बुल** 114
   अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

9. अस्क़द मुख़्तार, **बीवी** 128
   अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

10. मीरमोहसिन, **नट** 142
   अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

11.इब्राहीम रहीम, **शर्त** 152
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

12.सरवर अज़ीमोव, **मेरा दोस्त** 160
अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

20.मक़्सूद क़ारियेव, **पिकनिक** 172
अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

21.सईदा ज़ुन्नुनोवा, **बड़ा भाई** 184
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

22.आदिल याकूबोव, **सुख का पंछी** 192
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

23.पिरिमक़ुल क़ादिरोव, **आशा** 222
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

24.नासिर फ़ाज़िलोव, **झुर्री** 234
अनुवाद – नूरिये इस्माइलोवा

25.जॉनरीद अब्दुल्लाख़ानोव, **गौरैया** 248
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

26.फ़रहाद मुसाजानोव, **शादी में ज़रूर आइये** 260
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

27.उल्मस उमरबेकोव, **बूढ़ा अख़रोट** 270
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

28.लतीफ़ महमूदोव, **चिनार** 285
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

29.उकतम उस्मानोव, **अड़ियल मुहम्मद** 295
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

30.उत्किर हाशिमोव, **प्यार** 303
अनुवाद – सुधीर कुमार माथुर

इस धरती पर हर चीज़ का विकास आश्चर्यजनक तेज़ी से होता है। हाल ही में लगाये गये पौधे, जो कल तक हवा में ठण्ड के मारे ठिठुरते-से लगते थे, दो-तीन वर्ष में ही लहलहाते बाग़ों में बदल जाते है देखकर आश्चर्य होता है: आख़िर ये कब इतने बड़े हो गये! चमत्कार ... उज़्बेकिस्तान से परिचय करते समय प्रायः यही शब्द स्वतः मुंह से निकल पड़ता है अवधियाँ विस्मित करती है और परिणाम भी। वे परिणाम, जो अतीत काल से ज्ञात हैं, – और वे, जिनके बारे मे आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व किसी ने सुना भी नहीं था। प्रति वर्ष यहाँ चुनी जानेवाली कपास की – और उत्पादित इस्पात की मात्रा। अंगूर की खेती – और नाभिकीय भौतिकी। काव्य – और गद्य ...

विश्व साहित्य के विकास के पथों व कालों से परिचित व्यक्ति को उज़्बेक मनोवैज्ञानिक गद्य का जन्म और विकास वास्तव में एक चमत्कार ही प्रतीत होगा। महान् अक्तूबर की पूर्वसन्ध्या में और उसके परिणामस्वरूप आयी महान् सांस्कृतिक क्रान्ति की मुख्य धारा में पदार्पण करते समय उज़्बेक काव्य अपने साथ उस लगभग सहस्त्रवर्षीय उज़्बेक काव्य की परम्पराएं लेकर आया था, जो ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद क़ाशग़ारी के गीतों तथा यूसूफ़ बालासग़ूनी के काव्य-सृजन के साथ स्थापित हुई थीं। उज़्बेक काव्य से, जो अलीशेर नवाई के कृतित्व में अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच चुका था, उज़्बेक गद्य लगभग चार शताब्दी पीछे रह गया। ये वही चार शताब्दियाँ हैं, जिनके दौरान पश्चिम में बोकाचिओ,

राबले, सरवांटेज़, गेटे, स्टेंडाल, बालज़ाक, डिकिंस, गोगल, तुरगेनिफ़, फ़्लोबेर, तल्सतोय, दस्तायेव्स्की, च्येख़फ़ व गोरिकी उपन्यास व कथा साहित्य की महान् परम्पराओं की स्थापना कर चुके थे।

मध्य एशिया के जनगण को अभी कल्पनातीत कार्य करना था – मध्य युग से प्रगति की ओर क़दम बढ़ाना था। राष्ट्रीय संस्कृतियों को भी अभी वैसी ही लम्बी छलांग लगानी बाक़ी थी, और इसके लिए तो जनता की चेतना तथा विचारधारा में आमूल परिवर्तन होना अत्यावश्यक था।

उज़्बेक गद्य के जन्म का वर्ष सन् 1924 माना जाना चाहिए, जब अब्दुल्ला क़ादिरी ने अपना उपन्यास "गुज़िश्ता साल" प्रकाशित किया। लेकिन उसमें यथार्थवादी सटीक चित्रण, पात्रों की मनोवैज्ञानिक विश्वासोत्पादकता, जीवंत लोक-भाषा के बावजूद वर्णन के प्रवाह के कारण दास्तान की प्राचीन परम्पराओं से साम्यता स्पष्ट रूप से अनुभव होती है। सुप्रसिद्ध उज़्बेक लेखक ग़फ़ूर ने ठीक ही लिखा था: " ... क़ादिरी के उपन्यासों ने उज्ज्वल सम्भावनाएं दर्शायीं, लेकिन वे आम राह न दिखा सके।" उज़्बेक उपन्यास की युवा विधा के सामने जीवन की कायापलट करनेवाले नये इनसान के जन्म को दर्शाने की समस्या आ खड़ी हुई। आयबेक के उपन्यास "मुक़्क़दस है यह लहू" (1943) के प्रकाशन तक इस दिशा में "निर्णायक क़दम" न तो क़ादिरी ही उठा सके और न ही तीस के दशक के अन्य उज़्बेक लेखक। यह उपन्यास उज़्बेक गद्य में वास्तविक यथार्थवाद के इतिहास का मील का पत्थर है, जिसका मार्ग आगामी दशकों में आयबेक के अन्य उपन्यासों, शरफ़ रशीदोव, अस्क़द मुख़्तार, मीरमोहसिन, हमीद गुलाम तथा अन्य अनेकानेक लेखकों की कृतियों ने प्रशस्त किया।

उज़्बेक कहानी का जन्म समाचारपत्रों की दो "कारग़र" विधाओं-व्यंग्यलेखों और रूपलेखों से हुआ है। प्रधानतया व्यंग्यलेखों से, क्योंकि युवा साहित्य की कुछ विधाओं के समान आरम्भ में उसका विषय-क्षेत्र भी अभियोगात्मक रहा: सर्वव्यापी और विशेषतः सर्वविदित सामन्तवादी

अवशेषों का भंडाफोड़ करना। किसी न किसी सीमा तक तथ्यों से जुड़े रहने की प्रवृति बीस के दशक के अन्त और तीस के दशक के आरंभ में आयदिन, ग़फ़ूर गुलाम तथा लब्धप्रतिष्ठ उज़्बेक कथाकारों में से एक अब्दुल्ला क़ह्हार की कहानियों में भी दृष्टिगोचर होती है, जिन्होंने शुद्धहृदय से कहा था: "आधुनिक उज़्बेक लघुकथा का इतिहास उसी समय से आरम्भ हुआ, जब हमने च्येख़फ़ तथा गोगल की कृतियों का गम्भीरतापूर्वक, व्यापक व सम्पूर्ण परिचय प्राप्त किया।" अब्दुल्ला क़ह्हार का तात्पर्य सर्वप्रथम अपने व्यक्तिगत अनुभव से है। उन्हीं के सृजन में रूसी यथार्थवादी कथा की इन शिक्षाओं को अत्यधिक स्पष्ट और फलप्रद रूप से ग्रहण किया गया है कि विषय-वस्तु की स्थापना चरित्र के वर्णन के साधनों के बारे में धारणा से होती है न कि घटनाओं और कथांशों के कथानकीय सहसंबंध से।

प्रस्तुत संग्रह में पुरानी पीढ़ी की भी और हाल ही में साहित्य में पदार्पण करनेवाली युवा पीढ़ी की भी – शैली और रचनाकाल के अनुसार यद्यपि वे एक दूसरे से काफ़ी भिन्न हैं, लेकिन इस विधा में उज़्बेक भाषा में रचित साहित्य की अत्यधिक ज्वलंत तथा लाक्षणिक कृतियां शामिल हैं। निस्सन्देह उज़्बेक गद्यकारों की सभी प्रतिनिधि रचनाएं शामिल नहीं की गयी हैं। प्रस्तुत कृतियां एक प्रकार से उज़्बेक कहानी तथा उसके विषयक्षेत्र की व्यापकता को रेखांकित करती हैं।

ग़फ़ूर ग़ुलाम

(1903-1966)

उज़्बेकिस्तान के जन-कवि लेनिन पुरस्कार विज़ेता ग़फ़ूर ग़ुलाम को अपने महान् जीवन-पथ में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। अल्पायु में अनाथ रह जाने पर उन्हें दसियों तरह के पेशे अपनाने पड़े। सोवियत सत्ता काल में उन्होंने हाई स्कूल तथा ताशक़न्द अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान की शिक्षा समाप्त की। ग़फ़ूर ग़ुलाम अनेक कहानियों, लघु-उपन्यासों, नाटकों, व्यंग्यात्मक लेखों व वृत्तांतों के लेखक हैं। लेकिन अधिक ख़्याति उन्हें अपनी काव्यकृतियों के लिए मिली, जिनमें कविता-संग्रह – "पूरब से आया हूँ" (1943), जो सोवियत संघ के राजकीय पुरस्कार से सम्मानित हैं, "दिलों की बहस" (1964), "भविष्य का स्वागत" (1966), "परिणाम" (1967) आदि प्रमुख हैं।

प्यारा चोर

(सच्ची कहानी)

अब्बा को गुज़रे कई बरस हो चुके थे। सन् सत्तरह के वसंत में माँ का साया भी हमारे सिर से उठ गया और हम अनाथ हो गये। हमारी परवरिश की ज़िम्मेदारी हमारी नानी रक़ियाबीबी ने अपने ऊपर ले ली। वह बहुत ही साँवली थीं, इसलिए हम उन्हें काली नानी कहते थे।

रात को हम सब काली नानी के साथ खुले बरामदे में पुरानी उरातेपी दरी फ़र्श पर बिछाकर, फटी रज़ाई ओढ़कर सो जाते थे।

यह पतझड़ की पहली रातों में से एक की बात है। हम एक दूसरे से सटे, बदन गरमाते सोये हुए थे। गौरैया की तरह अपने बच्चों का ख़याल रखनेवाली हमारी काली नानी किनारे पर लेटी थीं। नानी की ज़बान के नीचे हमेशा तंबाकू रहती थी। उस रात मेरी नींद अचानक खुल गयी। यह रात के दूसरे पहर की बात है, जब सप्तर्षि अपने शीर्ष पर थे। काली नानी किसी से बात कर रही थीं, लेकिन फुसफुसाकर नहीं, जैसा कि हमारे सोये होने पर करती थी, बल्कि ज़ोर-ज़ोर से।

जिस बातचीत से मेरी नींद खुली, उससे मैं समझ गया कि हमारे घर में चोर घुस आया है। "कम-से-कम एक ऐसा आदमी तो मिला, जो हमारे ग़रीब घर में आया, मतलब हम भी औरों की तरह हैं," मैंने सोचा। "मैं कल ही दोस्तों के सामने डींग हांकूँगा! पर वे विश्वास नहीं करेंगे, कहेंगे, गप है।"

चोर, जैसा कि नानी ने हमें बाद में बताया, पड़ोस के घर की छत से हमारी सपाट कच्ची छत पर चढ़ आया था, लेकिन जैसे ही वह उस जगह तक पहुँचा जहाँ हम सो रहे थे, अचानक उसे छींक आ गयी। नानी सीने के नीचे तकिया रखे लेटी तंबाकू का मज़ा ले रही थीं। नानी ने बड़े अफ़सोस के साथ, जैसा कि उन्होंने बाद में बताया, तंबाकू थूक दी और छत की तरफ़ मुंह करके बोलीः "मेरे प्यारे चोर, प्यारे बेटे, ज़ाहिर है तुम छत पर यूँ ही नहीं, बल्कि कुछ पेट भरने लायक़ चीज़ उठाने के लिए चढ़े हो। तुम्हारे पेशे में बहुत सफ़ाई और होशियारी की ज़रूरत है, इसलिए तुम्हें पहले अपने ज़ुकाम का इलाज कर लेना चाहिए था, बेटे ..."

चोर छत पर खड़े-खड़े बोलाः "और आपको भी, प्यारी दादी, कम-से-कम एक रात तो चैन से सोना चाहिए था, ताकि मैं अपनी रोटी कमा सकूं!"

यहीं मेरी नींद खुल गयी, इसलिए बाक़ी सब मैंने अपने कानों सुना।

"मेरे प्यारे चोर, प्यारे बेटे, भला मैं सो कैसे सकती हूँ, जब मेरे सिर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा हो। पूरे छः महीने हो चुके हैं, मेरी पलक से पलक नहीं लगी है। दिन में शराबी की तरह लड़खड़ाती हूँ, खड़े-खड़े चिड़िया की तरह झपकी ले लेती हूँ, जब कि रात को फ़िक्रें नींद उड़ा देती हैं। मैं सो ही नहीं पाती।"

"तुम्हें क्या परेशानी है, दादी?" इतना कहकर चोर ने अपना चोग़ा उतारकर लपेटा और उसे बग़ल में दबाकर छत पर लेट गया।

"मैं इन चार अनाथों के कल की न सोचूँ, तो और क्या सोचूँ? तुम ख़ुद ही देखते हो, जीवन पत्थर की तरह भारी हो गया है, चंदिया-सी रोटी नियामत हो गयी है। और मेरे अनाथ बच्चे अभी बहुत छोटे हैं ... उनका एक गाड़ीवान चाचा है, पर वह जो कमाता है, उसे ही पूरा नहीं पड़ता है। घर में कोई ढंग की चीज़ नहीं बची है, जो थी, सो बेचकर खा चुके हैं ... इसीलिए नींद नहीं आती, सोचती रहती हूंः ये कब बड़े होंगे, कब अपनी रोटी कमाने लायक़ होंगे। तिस पर इनमें सिर्फ़ एक लड़का है, बाक़ी – लड़कियाँ। ऐसे बुरे वक़्त में किस को इन्हें रखने का लालच

होगा, मेरे प्यारे बेटे, मेरे प्यारे चोर। बहुत बुरा वक़्त है!"

"आप सच कहती हैं, दादी," चोर ने पुष्टि की। "मेरे भी दो बच्चे हैं, बीवी है, बूढ़ी माँ हैं। कहते हैं, मुर्ग़ी तक को दाना-पानी तो चाहिए ही। उनका पेट कैसे भरूं? जौ की एक रोटी हासिल करने के लिए जान पर खेल जाना पड़ता है। आप क्या सोचती हैं, मुझे चोरी करना अच्छा लगता है?"

"तुम्हें अपने लिए कोई दूसरा काम ढूँढ़ना चाहिए, बेटे," नानी ने कहा।

"कौन-सा काम करूं? क्या नरम जूते सीने का पुश्तैनी काम करूं? लेकिन उस तरह के जूते सीने के लिए न चमड़ा है, न धागे, न रोग़न है और न ही सरेस। हम्माल का काम करना चाहता था, पर अब गये ज़माने के वैसे लोग ही नहीं रहे, जो बाज़ार में बोरियों गेहूं ख़रीदें! परसों ही मोहल्ले के सबसे पुराने मोची उस्ताद बुवामात अता ने अपने सारे औजार बेच डालेः कलबूत, सुए, धागे, सब कुछ। दो पूद* मक्का ख़रीद ली। और उसने ठीक ही किया! अब ऐसा कौन सा उज़्बेक, क़ज़ाख़, क़िर्ग़ीज़ किसान बचा है, जो उसके बनाये जूते ख़रीद सके? अब वैसे लोग रहे ही नहीं। सिर्फ़ उनके भूखे अनाथ बच्चे शहर में मारे-मारे फिरते हैं। जिधर भी नज़र डालो – हाथ पसारे बच्चे नज़र आते हैंः 'चचा, रोटी का एक टुकड़ा दे दो!...' मैं अकेला ही ऐसा नहीं हूँ, दादी, सारे कारीगरों की तक़दीर फूटी है। क्या चाकू-छूरीवाला, क्या मोची – सारे दाने-दाने को मुहताज भटक रहे हैं!"

"भाड़ में जाये ऐसी लड़ाई! शायद यही क़यामत की घड़ी है। पर तुम थोड़े पैसेवालों या खाते-पीते लोगों के घर में घुसते, बेटे!"

"ओफ़, कितनी भोली हैं आप, दादी!" चोर ने कहा। "भला कोई इन बायों** के घर में क़दम रख सकता है? उनकी चहारदीवारियां ऊँची हैं, फाटक लोहे के हैं, हरेक के आंगन में गधे से बड़ा कुत्ता है। अगर ख़ुदा

---

* पूद – क्रांतिपूर्व रूस में प्रचलित वज़न की इकाई, जो 16.3 किलोग्राम के बराबर है।

** बाय – ज़मींदार, धनी आदमी।

न करे, वहाँ कोई चिड़िया भी पर मार जाये, तो ये कुत्ते हफ़्ते भर भौंकते रहते हैं। और आदिलख़ोजाबाय के फाटक पर तो बंदूक़ लिये पुलिसवाला तैनात है। वह जान से न भी मारे, पर साइबेरिया तो ज़रूर ही भेज देगा।"

"यह भी ठीक है, मेरे प्यारे बेटे, अभागे चोर। फिर भी होशियार रहना। कहीं जगहंसाई मत करा बैठना ..."

"ठीक कहती हो, दादी। कुछ दिन हुए मैं उस आरिफ़बाय – बदबूवाले के दरबे से चार मुर्ग़ियाँ और एक मुर्ग़ा उड़ा लाया था ..."

"क्या उन बेवकूफ़ जानवरों ने कुड़कुड़ाकर तुम्हारा भण्डा नहीं फोड़ा?"

"अरी, दादी, हर हुनर के अपने गुर होते हैं। जब मैं मुर्ग़ियाँ चुराने जाता हूँ, तो जेब में पानी से भरी बोतल रख लेता हूँ। अड्डे के नीचे पहुँचकर, मुँह में पानी भरकर मुर्ग़ियों पर फुहार छोड़ देता हूं। वे सोचती हैं कि बारिश आ गयी, सिर पंखों में छिपा लेती है और मैं उन्हें एक-एक करके बोरी में डाल लेता हूँ!"

"तो ऐसे किया जाता है यह काम! मुझे तो मालूम ही नहीं था। हर हुनर के अपने गुर होते हैं।"

"अपनी सारी होशियारी के बावजूद, दादी, मैं पकड़ा गया। मुझे मुर्ग़ा जमादार रहमानख़ोजा को देना पड़ा ..."

"ख़ुदा उसे सलामत रखे! अब मेरी बात सुनो, बेटे, पौ फटनेवाली है। शुक्र तारा चमकने लगा है। तुम वहाँ उस शहतूत के पेड़ पर से, जो तंदूर (उसे जलाने के लिए हमारे पास कुछ नहीं है) के पास है, उतर जाओ। वहाँ कुछ अख़रोट की लकड़ी के कुंदे पड़े हैं। कुल्हाड़ी उठाकर थोड़े टुकड़े फाड़ लो। तंदूर जलाकर मैं चाय बना दूंगी। कल इन अनाथों का चाचा दो जौ की रोटियाँ दे गया था, सब साथ चाय पियेंगे।"

"क्या कहती हैं आप, दादी!" चोर बोला। ठीक है, मैं आपके कुंदे फाड़ दूंगा, पर चाय नहीं पिऊंगा, क्योंकि दिन निकल आया, तो आप मुझे पहचान जायेंगी। और मैं चोरी भले ही करता हूँ, पर अभी मैंने अपनी इज़्ज़त नहीं गंवाई है।"

"तुम भी क्या, बेटे। क्या तुम नेक घर से, भले ही ग़रीब सही, बिना चाय पिये जा सकते हो? कुछ तो लेते जाओ। ठहरो, अच्छा, तुम्हें क्या दूँ? रूको, याद आ गया: मेरे घर में आधे पूद का एक देग है। कभी हमारा घर भी भरा-पूरा था, बड़े देग में खाना पकता था। शायद हमने ख़ुदा को नाराज़ कर दिया – इतने लोगों में से सिर्फ़ चार अनाथ बचे हैं। उन्हें बड़े देग की क्या ज़रूरत है? उसे ले जाओ, बेटे। शायद कोई ख़रीद ले।"

"आप भी क्या, दादी, ऐसी बात ज़बान पर मत लाइये!" बुरा वक़्त गुज़र जायेगा। यह घर भी भर जायेगा। देग तब काम आयेगा। इसे अनाथों के लिए रहने दीजिये। ख़ुदा की इनायत हुई, तो मैं उनकी शादियों में बारातियों की ख़ातिरदारी करूंगा। ख़ुदा हाफ़िज़, चलता हूँ, दादी, वरना सवेरा होनेवाला है।"

"ख़ुदा हाफ़िज़, बेटे, प्यारे चोर। आते रहना। हमारे झोंपड़े को मत भूलना।"

"ख़ुदा हाफ़िज़, दादी।"

... मैं उसी वक़्त उस चोर को पहचान गया था, पर मैंने आज तक कभी किसी को इस घटना के बारे में नहीं बताया।

अब्दुल्ला क़ह्हार

(1907-1968)

अब्दुल्ला क़ह्हार अपनी लघु-कथाओं के लिए सुपसिद्ध हैं। इस विधा में उन्होंने उज़्बेक साहित्य के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है (कहानी-संग्रह "कहानियाँ" – सन् 1935, "बरस" – सन् 1947)।

विनोद व हास्य से परिपूर्ण लघु-उपन्यास "नन्ही-सी चिड़िया' में उनकी प्रतिभा विशेष रूप से उभरकर सामने आयी। गीतात्मक प्रहसन "दहेज़" से उन्हें बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

अब्दुला क़ह्हार उपन्यासकार की हैसियत से भी प्रसिद्ध हैं ("मृगतृष्णा," "क़ुशचिनार की रोशनियाँ")। लेखक की अन्तिम रचनाओं में से एक "गुज़रे ज़माने के क़िस्से" के लिए जो उनकी जीवनी पर आधारित है, उन्हें उज़्बेक सोवियत समाजवादी जनतंत्र के हमज़ा राजकीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

अंधों का इलाज

हाँ, तो अहमद पहलवान मौत की प्रतीक्षा कर रहा था। सच कहा जाय तो मौत अहमद पहलवान की प्रतीक्षा में थी। बात यह नहीं थी कि वह परलोक जाने को उत्सुक था। नहीं, उसे मरने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। पर वह बकरे की तरह बंधा था और जमादार के साथ सटाकर खड़ा कर दिया गया था जिसे इस बार ज़ल्लाद का काम करना था। इस हालत में वह करे तो क्या करे। जल्लाद नाटे क़द का, पर तगड़ा जवान था। जब जल्लाद ने उसे धक्का दिया, तो अहमद पहलवान सरकंडे की भांति लड़खड़ा गया और पीछे बंधे हाथों के बल चित्त गिर पड़ा।

जल्लाद ने ज़ोर की ठोकर मारकर अहमद को उठने पर मजबूर किया। अहमद पहलवान ने कंधे हिलाकर देखा कि कहीं कोई हड्डी तो नहीं टूटी, कोई जोड़ तो नहीं हटा। मगर उसने मन-ही-मन में विवशता के साथ सोचा कि हड्डी टूटे या न टूटे, अब इससे फ़र्क़ क्या पड़ता है।

जल्लाद ने पहलवान को फिर धक्का दिया, पर कुछ हल्का-सा, वह डगमगाता हुआ आगे बढ़ा और चबूतरे के पास रुक गया। चबूतरे पर गाव-तकिये का सहारा लिये पैर पसारे काना क़ुरबाशी* बैठा था – एकदम चिक्कट धारीदार चोग़ा पहने, उसके चेहरे पर चेचक के दाग़ थे, वह बड़ा बदसूरत था। उसके पास पीले चेहरेवाला तबीब और पीछे घर का मालिक – नाटा, चमगादड़ की तरह फुरतीला बुड्ढा बैठे थे।

* क़ुरबाशी – बासमाचियों (प्रतिक्रांतिकारियों) के गिरोह का सरदार।

क़ुरबाशी ने मुश्किल से अपनी चंगी आंख खोली। पर इस समय उसकी यह आंख भी कुछ नहीं देख पा रही थी। एक ज़ोर की सांस खींचकर क़ुरबाशी चिल्लायाः

"बता अपने साथियों के नाम! किस ने तेरी मदद की?" अहमद पहलवान चुप रहा। अब तक बताई गई बातों में वह और क्या जोड़ सकता था? हां, उसने इस्माइल अफ़न्दी की जान ली थी। यह सच है। पर किसी ने उसका साथ नहीं दिया था। उसका बस एक ही मददगार था – कुल्हाड़ा।

क़ुरबाशी इस्माइल अफ़न्दी को अपना प्रमुख मददगार मानता था। और सचमुच वह उसके दायें हाथ की तरह था। जब अलकार मज़ार के पास घुड़सवार लाल सैनिक की गोली इस्माइल अफ़न्दी के सीने में लगी, तो क़ुरबाशी उसे गोलियों की बौछार से निकालकर उसे सहारा देता और घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ पहाड़ों में भाग गया। क़ुरबाशी अपने प्रमुख मददगार की मरहम पट्टी करना चाहता था। पर लाल तारा लगी नुक़ीली टोपियोंवाले सिपाहियों ने भगोड़ों का पीछा करना नहीं छोड़ा, इसलिए वे एक क्षण के लिए भी नहीं रुक सके।

रात को अपने आधे घुड़सवारों को खोकर क़ुरबाशी उस गांव में पहुंचा, जहां अहमद पहलवान रहता था।

ख़ून से लथपथ अफ़न्दी ने उसे वहीं किसी विश्वसनीय व्यक्ति के घर में छोड़ने का अनुरोध किया।

गांव में ऐसे दो-तीन घर अवश्य थे, जिन पर क़ुरबाशी को पूरा विश्वास था। मगर वे सब अमीरों के घर थे। उनके यहां क़ुरबाशी अफ़न्दी को नहीं छोड़ सकता था। उसे मालूम था कि लाल सैनिक अमीर लोगों को संदेह और द्वेष की दृष्टि से देखते हैं। क़ुरबाशी ने सोचा कि इस हालत में अफ़न्दी को किसी ग़रीब किसान के घर में छोड़ना उचित होगा। इसीलिए उसने अहमद पहलवान का झोंपड़ा चुना।

अहमद पहलवान अफ़न्दी को अपने घर में रखने को राज़ी हो गया। क़ुरबाशी के आदेश पर उसने ज़ख़्मी अफ़न्दी की देखभाल करने और उसे

पूरा चैन देने का वचन भी दिया। क़ुरबाशी और उसके जवानों के घोड़ों की टापों की आवाज़ आनी बन्द भी न हो पाई थी कि अहमद पहलवान ने अपना वचन पूरा कर दिया।

अहमद पहलवान ने अफ़न्दी के स्वस्थ होने अथवा मर जाने की प्रतीक्षा नहीं की क्योंकि उसे डर था कि कहीं क़ुरबाशी लौटकर अपने मददगार को न ले जाय। कुल्हाड़े के एक ही वार से उसने अफ़न्दी को सदा के लिए चैन से सुला दिया और एक गहरे गड्ढे में दफ़ना दिया।

इसके सैंतीस दिन बाद क़ुरबाशी, जिसे गांव के किसी ज़मीनदार ने अहमद की करतूत की ख़बर दे दी थी, गांव में आ धमका।

उसने अहमद को बांधकर घोड़े पर बोरे की तरह लदवा दिया और दो दिन तक वह घोड़े पर लदा हिचकोले खाता रहा। आज अफ़न्दी की मृत्यु के चालीसवें दिन क़ुरबाशी के वफ़ादार दोस्त का ख़ून करने के लिए उसे सज़ा दी जानेवाली थी।

वह अपने दुश्मन के सामने खड़ा उसके निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था।

पर क़ुरबाशी चुप था। वह इतना क्रोधोन्मत्त था कि बोलने की शक्ति उसमें नहीं बची थी। तबीब और बुड्ढा उसके पास चबूतरे पर बैठे घबराये हुए एक दूसरे की ओर देख रहे थे, पर वहीं पास में खड़े जल्लाद और क़ुरबाशी के घुड़सवारों से नज़र बचा रहे थे, जो घोड़ों से उतरकर ऊबते हुए इंतज़ार कर रहे थे।

अचानक क़ुरबाशी चौक पड़ा। उसे याद आया कि दिन ढलने पर उसे अपने जवानों को लेकर पड़ोस के गांव पर छापा मारने के लिए रवाना होना है। वहां उसे अपने कुछ दुश्मनों से बदला लेना है। सूर्य डूबने में दो-तीन घंटे रह गए होंगे। इसलिए क़ुरबाशी ने सोचा : बस, अब इस हरामज़ादे का काम तमाम किया जाये। उसकी इकलौती आंख से चिनगारियां छूटने लगीं। वह अहमद पहलवान को घूरकर देखने लगा।

अहमद ने आंखें नहीं झुकाई। उसकी निगाहों में थकावट की झलक अवश्य थी, पर साथ ही दृढ़ता भी टपक रही थी।

"अबे हरामी!" झटके के साथ आगे झुककर क़ुरबाशी गला फाड़कर चिल्लाया – "क्या तू भूल गया कि तेरे पास जल्लाद खड़ा है। आख़िर आदमी इस दुनिया में एक ही बार आता है। बता, तेरी मदद करनेवाले कौन थे?"

अहमद ने पीठ के पीछे अपनी सुन्न उंगलियां हिलाईं और क़ुरबाशी की आंख से आंख मिलाकर बोलने लगा:

"सरकार! मैं सब कुछ बता चुका हूं। मेरे पास और बताने के लिए कुछ नहीं है। अफ़न्दी किसानों को मारता था, मैंने उसे मार दिया और अब आप मुझे मारनेवाले हैं ... जो हुआ सो हुआ ... अब अपनी ज़िन्दगी की आख़िरी घड़ी में मैं सवाब का एक काम करके जाना चाहता हूं ताकि ख़ुदा ..."

"ख़ुदा का मुक़द्दस नाम ज़बान पर मत ला, हरामी," क़ुरबाशी गरजकर बोला।

"नहीं, सरकार! अब मेरे लिए कोई बुरी बात सोचने का समय नहीं रहा," अहमद पहलवान ने खिन्न मुस्कान के साथ कहा – "आप मुझे वह काम करने की इजाज़त दे दीजिये, जिससे आपका भला हो सके, सरकार।"

"मेरा भला ... तू मेरा क्या भला कर सकता है?" क़ुरबाशी गरजके बोला।

"सरकार! आप शेर जितने ताक़तवर हैं, और मैं शहद की मक्खी जैसा हूं," अहमद ने नम्रतापूर्वक कहा।

"आपने उस शेर की कहानी सुनी होगी, जो शहद की मक्खी की उपेक्षा करने के कारण मरते-मरते बचा था। मेरा एक राज़ है ..."

क़ुरबाशी के चेहरे पर न जाने क्रोध या हंसी की कंपकंपी पैदा हुई पर उसने उसे दबाकर उबासी में बदल दिया। बातचीत जारी रखने की अनिच्छा दर्शाते हुए क़ुरबाशी ने गुस्से में कहा:

"मुझे मालूम है तू क्या चाहता है, कुत्ते के पिल्ले!"

"आप मुझे अभी एक आंख से देख रहे हैं, सरकार, पर आप दो आंखों से भी देख सकते हैं," अहमद पहलवान ने कहा।

क़ुरबाशी के चेहरे पर असमंजस और क्रोध को भांपकर अहमद पहलवान जल्दी-जल्दी कहने लगाः

"सरकार, आपकी बायीं आंख की रोशनी इसलिए जाती रही, क्योंकि उसमें काला जल भरा है। मैं आपकी ख़राब आंख की रोशनी लौटा सकता हूं। मुझे अंधेरे की मार से त्रस्त अंधों का इलाज करने का गुर मालूम है।"

इलाज की बात सुनकर तबीब चौंक उठा। वह अहमद पहलवान की कही बात के बारे में सोचने लगाः "यह सब झूठ ही होगा! पर इसके झूठ में थोड़ी सच्चाई भी तो हो सकती है।"

क़ुरबाशी ने पलटकर तबीब से कहाः

"तबीब, इस कमबख़्त के सारे गुर सीख लीजिये। आप चिकित्सा में इतने नादान हैं कि अपने ही रोग का इलाज नहीं कर सकते हैं। आये दिन बुख़ार की चपेट में आकर ऐसे कांपते रहते हैं जैसे शैतान आपके जिस्म को झंझोड़ रहा हो। अंधों के इलाज के इसके गुर सीख लेंगे तो अपने काम में कुछ माहिर हो जाएंगे।"

क़ुरबाशी क़हक़हा लगाता हुआ गाव-तकिये पर लोट गया। वह इतने ज़ोर से क़हक़हे लगा रहा था कि उसकी देखादेखी बाक़ी लोग भी हंसने लगे। गंभीर से गंभीर स्वभाववाले लोग भी मुस्कराये बिना न रह सके। चमगादड़ से मिलता-जुलता वृद्ध हंसते-हंसते बेहाल हो गया। केवल तबीब इस बेतुकी हंसी से अछूता रहा।

अंततः क़ुरबाशी शांत हो गया और दम लेकर बोलाः

"मैं इस कमबख़्त की कहानी से ऊब गया हूं। तबीब अब आप ज़रा इससे बातचीत करें। हम सुन रहे हैं।"

तबीब ने धीरे से सिर हिलाया और अहमद पहलवान की ओर पलटाः

"क्या तुमने कभी किसी अंधे की आंखें ठीक की हैं?"

"जी नहीं," अहमद पहलवान ने सरलता से उत्तर दिया। "मैंने अभी

तक किसी अंधे का इलाज नहीं किया है। पर मेरे उस्ताद ने एक अंधे की आंखों की रोशनी लौटा दी थी। अंधा देखने लगा था, पर मेरे बूढ़े उस्ताद अंधे हो गये और चल बसे।"

"क्यों, तेरा उस्ताद ख़ुद अंधा हो गया?"

"जी हां, अपनी आंखों की रोशनी उन्होंने अंधे आदमी को दे दी थी।"

अहमद पहलवान ने फिर अपनी सुन्न उंगलियों को हिलाया और शांत स्वर में कहाः

"जब मैं अपनी आंखों की रोशनी सरकार को दे दूंगा, तो मैं भी अंधा हो जाऊंगा।"

तबीब ने ऐसा आभास दिया मानो अहमद पहलवान के जवाब से उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ हो और कठोरता से पूछाः

"तेरे उस्ताद का नाम क्या था?"

"वह मैं आपको तभी बताऊंगा जब सब लोग देख लेंगे कि मैं अंधी आंख की रोशनी लौटाने में समर्थ हूं।"

तबीब ने फिर सिर हिलाया और सोच में डूब गया। उसमें ज्ञान से अधिक अंधविश्वास था। फिर भी वह कुछ इलाज कर ही लेता था। अहमद पहलवान ने जो कुछ कहा वह उसे असंभव लगा, पर उसे अपने उस्तादों की यह बात भी याद थी कि क़ुदरत में संभव असंभव का भेद करना मुश्किल है। क़ुरबाशी जैसा जाहिल ही केवल इसलिए हकीम की हंसी उड़ा सकता है, क्योंकि वह ख़ुद अपने मलेरिया का इलाज नहीं कर सकता। बड़े से बड़े हकीम भी रोग के सामने बेबस हो जाते हैं। पर कौन जाने जो राज़ बड़ों से छिपा है, वह किसी गंवार के सामने खुल सकता है।

तबीब ने फिर अहमद को ग़ौर से देखा और सोचाः कुछ भी हो, इस मौक़े को हाथ से जाने नहीं देना चाहिए। अहमद को संबोधित करके उसने पूछा कि इलाज के लिए क्या-क्या चाहिए।

अहमद पहलवान ने उत्तर में कहा कि उसे अनाजबूटी के छः फूलों, दो ख़ुरमों, एक अंडे, चम्मच भर शहद और चुटकी भर अजवायन की ज़रूरत है। मकान मालिक के पास फूलों को छोड़कर बाक़ी सब चीज़ें मिल गईं। एक जवान को फूल तोड़ने भेजा गया।

"और क्या चाहिए?"

"तांबे की देगची और मोमबत्ती।"

चमगादड़ सरीका बूढ़ा ये चीज़ें भी ले आया। अहमद पहलवान ने मोमबत्ती को क़ुरबाशी के सामने इस प्रकार लगाने को कहा ताकि उसकी लौ उसकी फूटी आंख के पास रहे और देगची में दो प्याले पानी डालकर उसे उबालने को कहा। ये सब कर लिया गया। जब देगची में पानी उबलने लगा, अहमद ने उसमें शहद, अंडा, ख़ुरमा और अजवायन डालने को कहा। एक जवान देगची के पास खड़ा उसमें करछुल चलाता रहा। अहमद पहलवान ने फूल भी उस जवान को देने को कहा। देगची में छः फूल भी डाले गए।

तबीब अहमद पहलवान को टकटकी बांधे देख रहा था। वह दवा बनाने की प्रक्रिया याद करने की कोशिश कर रहा था। पर साथ ही सन्देह भी उसे सता रहा था।

"काश, यह आदमी वास्तव में अंधों का इलाज करने में समर्थ होता!" तरह-तरह के विचार उसके मन में उठ रहे थेः अगर वह इसके गुर सीख ले, तो उसके लिए कितना अच्छा हो! सबसे पहले मालिक पर उसकी निर्भरता समाप्त हो जाएगी। तब वह शायद अपने शहर भी लौट सकेगा, जहां से उसे अन्य तबीबों की साज़िश के कारण धोखेबाज़ और नीम-हकीम कहकर निकाल दिया गया था। यदि वह एक महानतम तबीब की प्रसिद्धि पाकर अपने शहर लौटे, तो ये दुष्ट और ईर्ष्यालू तबीब क्या कहेंगे। और बड़े-बड़े नामी हकीमों के तो चेहरे देखने लायक़ होंगे। देगची से निकलती नीली भाप को देखते हुए तबीब के मन में कुछ ऐसे ही विचार उमड़ रहे थे।

अहमद की नज़र भी देगची पर थी। जब भाप सफ़ेद हो गई, तब

उसने देगची को उठाने तथा ऐसे पत्थर लाने के लिए कहा जिनसे कभी पानी न लगा हो।

"पत्थर लाओ!" क़ुरबाशी ने आदेश दिया।

उसे अहमद पहलवान की बात पर विश्वास नहीं था। वह सोच रहा था कि यह एक चाल चल रहा है। तमाशा कर रहा है। पर पड़ोस के गांव पर छापा मारने के पहले यदि उसके जवानों को एक तमाशा देखने को मिल जाय तो उसमें क्या हर्ज है। क़ुरबाशी ने इस तमाशे को मज़ेदार ढंग से सम्पन्न करने का निश्चय किया। चाहे ख़ून-ख़राबा क्यों न हो।

तीन जवान अपने चोग़ों के पल्लों में पत्थर भर लाए और उन्हें अहमद पहलवान के पैरों के पास रख दिया। अहमद ने एक-एक करके उसे पत्थर दिखाने को कहा। उनमें से उसने कोई सात-आठ पाउंड का एक पत्थर चुना।

"पर मुझे पूरा यक़ीन नहीं है कि इस पत्थर से कभी पानी नहीं लगा है," अहमद ने कहा और पत्थर को इस तरह तराशने को कहा, ताकि उसका आकार हल की नोक जैसा हो जाय।

"तराशकर लाओ!" क़ुरबाशी ने आदेश दिया और एक भारी-भरकम जवान काम में लग गया।

अहमद पहलवान ने तबीब को संबोधित करके कहाः

"अब मुझे लहू, आदमी के लहू की ज़रूरत है!"

"वह हम कहां से लाएं?" तबीब हैरान हो उठा।

उसने कनखियों से क़ुरबाशी की ओर देखा। क़ुरबाशी अहमद को एकटक देख रहा था।

"मैं देता हूं अपना लहू!" अहमद ने कहा और क़ुरबाशी को संबोधित करते हुए बोलाः

"सरकार, जल्लाद को मेरी उंगली काटने को कहें!"

सब भौंचक्के रह गये और हवेली के आंगन में भनभनाहट-सी गूंज उठी। फिर एकदम सन्नाटा छा गया।

क़ुरबाशी ने अपनी घुंघराली दाढ़ी में हाथ फेरा और कुछ ऐसी सुस्ती से कहा मानो अपने आपसे कह रहा हो:

"तब तो इसके हाथ खोलने पड़ेंगे!"

"और आप क्या ... डरते हैं मुझसे?" अहमद ने पूछा और बड़ी दिलेरी से क़ुरबाशी से आंखें चार की। क़ुरबाशी का दाढ़ी सहला रहा हाथ फड़क उठा। उसके गाल तमतमाकर लाल हो गये, उसके चेहरे पर चेचक के दाग़ साफ़-साफ़ उभर आये।

"खोलो इस सूअर के हाथ!" उसने गरजकर कहा। "पर दो जवान अपनी तलवारें तानकर इस सूअर के दोनों तरफ़ खड़े हो जाएं।" फिर जल्लाद को संबोधित करके वह बोला:

"तुम भी चौकस रहो!"

अहमद पहलवान के हाथ जिस रस्सी से बंधे थे, उसे चाकू से काट दिया गया। रस्सी धप्प से ज़मीन पर गिरी। अहमद ने अपने मुक्त हाथ उठाकर कुछ हिलाया। "अब कुन्दा और एक छोटा प्याला लाओ!" उसने अपनी कलाई मलते हुए कहा, जहां रस्सी बंधे रहने से नील पड़ गया था।

कुन्दा और प्याला लाया गया और अहमद ने आंख से इशारा किया कि कुन्दा कहां रखना है।

"अब तुम तैयार हो जाओ, जल्लाद!" उसने धीमे स्वर में कहा। "जब मैं कहूं, तब काटना!"

जल्लाद ने बड़बड़ाकर न जाने क्या कहा।

"हकीम जी!" अहमद ने तबीब को बुलाकर कहा। "आप यहां खड़े होकर प्याला संभालिये।"

चबूतरे से उतरकर तबीब ने प्याला अपने हाथों में ले लिया और जहां अहमद ने खड़े होने को कहा, वहीं खड़ा हो गया। अहमद ने घुटनों के बल बैठकर अपने बायें हाथ की कानी उंगली कुन्दे पर रखी।

हवेली में इतना सन्नाटा छा गया कि उड़ती तितली के पंखों की फड़फड़ाहट तक सुनी जा सकती थी।

एक दर्शक से देखा नहीं गया, उसके चेहरे का रंग उड़ गया और उसने अपना मुंह हाथों से ढांप लिया। इस आदमी ने शायद न तो अहमद का "काटो" कहना सुना और ना ही तलवार की सनसनाहट।

जब उसने अपनी आंखें खोलीं, तब तक अहमद पहलवान खड़ा हो चुका था। वह अपना घायल हाथ सिर के ऊपर उठाये हुए था। ख़ून बन्द करने के लिए तबीब उसकी कटी उंगली पर दवा डाल रहा था। अहमद के चेहरे पर पसीने की मोटी-मोटी बून्दें चमक रही थीं। वह बुरी तरह हांफ रहा था।

तबीब की नज़र लहू-भरे प्याले पर पड़ी, तो उसने तुरंत मुंह फेर लिया। अहमद की आंखें झुकी हुई थीं। पलकें उठाकर उसने अपना हाथ देखा। ख़ून निकलना बन्द हो गया था।

"क्या पत्थर तैयार है?" उसने पूछा।

क़ुरबाशी ने उसकी बात दोहराई:

"क्या पत्थर तैयार है?" और बड़ी अधीता से हाथ हिलाकर उसने कहा: "लाओ इसे यहां।"

पहले क़ुरबाशी का यही विचार था कि अहमद पहलवान अपनी मौत टालने के लिए चाल चल रहा है। पर अब उसे क़रीब-क़रीब पूरा विश्वास हो गया कि यह अजीब आदमी उसकी कानी आंख की रोशनी लौटा सकता है। क़ुरबाशी के वहशी दिल में कुछ हमदर्दी उमड़ी और अब वह जब अहमद की तरफ़ देखता था तो उसकी दृष्टि में पहले जैसी क्रूरता नहीं होती थी।

और अहमद पहलवान आदेश देता रहा। उसके आदेशों का वैसे ही पालन किया जा रहा था जैसे वे स्वयं क़ुरबाशी के आदेश हों।

भारी-भरकम जवान पत्थर लाया, जिसका आकार अब हल की नोक जैसा हो गया था। अहमद के कहने पर तबीब उस पर देगची में उबली दवा लगाने लगा। अब वह बड़ी लगन और चतुराई से काम कर रहा था। क्योंकि उसे अब अहमद पहलवान पर पूरा विश्वास था। उसे पूरा यक़ीन था कि अब उसे एक महान राज़ मालूम हो जाएगा।

पत्थर को उठाकर तबीब एक ख़ाली जगह पर गया, जहां हवा के झोंके अधिक तेज़ थे, क्योंकि अहमद ने कहा था कि उस पत्थर को सुखाना ज़रूरी है। उसी क्षण तबीब को अहमद की यह बात याद आ गई कि अंधे की आंखों को ठीक करनेवाला ख़ुद अंधा हो जाता है। इसका विचार आते ही वह भयभीत हो गया। और ठोकर खा गया। पत्थर उसके हाथ से गिरते-गिरते बचा। अब वह सोचने लगा कि "मैं सिर्फ़ धनी लोगों का इलाज करूंगा, फिर ख़ुद भी अमीर बन जाऊंगा और पैसे के लिए कोई न कोई ग़रीब अपनी आंख की रोशनी बेचने को राज़ी हो जाएगा।"

उसने इस विचार से प्रसन होकर पत्थर को खुली जगह पर रखा और प्रश्नसूचक दृष्टि से अहमद पहलवान की तरफ़ देखा।

"बाक़ी सब मैं ख़ुद करूंगा," अहमद ने कहा। तबीब ऐसे चबूतरे पर जा बैठा मानो उसने अभी-अभी कोई बहुत भारी काम किया हो।

अहमद पहलवान ने अपना हाथ कुछ नीचा कर लिया। अब ख़ून निकलना बन्द हो चुका था। धीरे से क़ुरबाशी की ओर मुड़कर उसने नम्रतापूर्वक कहाः

"सरकार! आपकी इजाज़त हो तो पत्थर सूख जाने तक मैं कुछ दम ले लूं।"

"हां, ज़रूर!" क़ुरबाशी ने हड़बड़ाकर कहा। अगर उसकी भर्राई आवाज़ कुछ नरम हो पाती तो उपस्थित लोगों को उसकी आवाज़ में प्यार का पुट महसूस होता।

अहमद पहलवान ने तीन पहरेदारों के बीच उकड़ूं बैठकर अपना सिर झुका लिया। यदि उसके घुटनों पर उसका घायल हाथ न टिका होता, तो वह किसी किसान जैसा लगता, जो कुछ क्षण सुस्ताने के लिए बैठ गया हो और कुछ दम लेने पर फिर अपने बाग़ अथवा खेत के काम में लग जानेवाला हो। क़ुरबाशी मुजरिम के शांतचित्त होने से हैरान और कुछ बेचैन था। यह देखकर कि वह शांत होकर दम ले रहा है, क़ुरबाशी उसे यंत्रणा देने का कोई विशेष उपाय सोचने लगा, पर उसे ऐसा कुछ नहीं सूझा, जिससे अहमद पहलवान की आश्चर्यजनक शांति को भंग कर सके।

"यदि यह शैतान मेरे दस्ते में शामिल होने के लिए राज़ी हो जाये तो वह मेरे दस जवानों की जगह ले ले!" क़ुरबाशी सोच रहा था और प्रशंसा एवं क्रोध का मिला-जुला भाव उसके दिल को कुरेद रहा था। उसे मालूम थाः पत्थर को तोड़ा जा सकता है, पर झुकाया नहीं जा सकता है।

अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ क़ुरबाशी इसी सोच में डूबा था। उसका कोई विश्वासपात्र उसके पास आकर उसके कान में फुसफुसायाः

"देर तो नहीं होगी, सरकार?"

क़ुरबाशी चौंक पड़ा और कड़ककर बोलाः

"अरे! काम शुरू करोगे कि नहीं?"

"हां, सरकार!" अहमद पहलवान ने सिर उठाते हुए शांत स्वर में कहा। "पत्थर सूख गया होगा। उसे उठा लाओ।"

भारी-भरकम जवान तुरंत पत्थर ले आया। अहमद ने पत्थर लिया और धीरे से उसकी तिकोनी नोक टटोलकर देखी। "सरकार!" पत्थर अपने पैरों के पास रखते हुए उसने कहाः "इलाज शुरू करने के पहले आपसे एक प्रार्थना है।"

"क्या जान बख़्श देने की, क्यों?" अहमद पहलवान की बात काटते हुए क़ुरबाशी ने कहा। उसकी अच्छी आंख में क्रूरता चमक उठी। "पर मैं तेरी जान नहीं बख़्श सकता, मसख़रे ... नहीं, तूने अफ़न्दी का ख़ून जो किया है ..."

"ठीक है, सरकार!" कुछ उदासी के साथ अहमद ने कहा। ऐसा लग रहा था कि वह क़ुरबाशी को सच्चा मानता है।

"पर आप मुझे ज़रा यह बताइये कि आपका दायां हाथ बनने के पहले अफ़न्दी कौन थे?"

"वह एक साहसी सैनिक था," घमंड और उल्लास के साथ क़ुरबाशी ने उत्तर दिया।

"यह मैंने सुना था," अहमद ने भोलेपन के साथ कहा। "पर मैंने यह भी सुना था कि जब उनके देश के बादशाह को समुन्दर के तट पर स्थित

उसके सफ़ेद महल से निकाल दिया गया, तो अफ़न्दी ने अपने देश नहीं लौटना चाहा था।"

क़ुरबाशी ने सिर हिलाया और चौकन्ना हो गया।

"तो अफ़न्दी ने ..." अहमद ने उसी भोलेपन के साथ कहा, "तो अफ़न्दी ने अपना देश छोड़ दिया और परदेस में यानी हमारे यहां रह गया। पर हमारे यहां वह क्या करता रहा? जवाब देने का कष्ट न करें, सरकार। मैं ख़ुद बताता हूं। आपके साथ वह हमारे गांवों में आग लगाता रहा, हमारे लोगों की हत्या करता रहा, लूट-खसोट करता रहा..."

अहमद पहलवान ने ढिठाई के साथ क़ुरबाशी पर नज़र डाली और चिल्लाकर कहा:

"इसीलिए मैंने उसे मार डाला!"

"हरामी! कुत्ते का पिल्ला!" कर्कश स्वर में क़ुरबाशी ने कहा और उसका हाथ चोग़े में तलवार की मूठ टटोलने लगा।

"इलाज! आप इलाज के बारे में भूल गए!" तबीब चिल्ला उठा, और वृद्ध अपने पीले हाथ से अहमद पहलवान की ओर संकेत करते हुए क्षीण स्वर में बोलने लगा:

"इसके धोखे में न आइये, जनाब! क्या आप नहीं देखते? यह तो आसान मौत चाहता है!"

"आपका कहना सच है ... आप भी ठीक कहते हैं, तबीब!" क़ुरबाशी बुरी तरह हांफता हुआ बोला। "पर यह कुत्ते का पिल्ला आग से न खेले। सुन लिया, हरामी?"

"जी! ... माफ़ कीजियेगा, सरकार!" अहमद पहलवान ने बड़ी नम्रता के साथ कहा। "मैं तो बस यह देखना चाहता था कि आपका गुस्सा तो ठंडा नहीं हुआ।"

"यह क्यों?" क़ुरबाशी के मुंह से निकला।

"इसलिए कि मैं आपके गुस्से से नहीं, आपकी मेहरबानी से डरता हूं।"

क़ुरबाशी हैरान होकर बोल उठाः

"कुछ समझ में नहीं आ रहा है..."

"अभी समझाता हूं," अहमद पहलवान ने कहा। "मैं आपका इलाज करने जा रहा हूं न? तो मुझे डर है कि जब आपकी आंख की रोशनी लौट आएगी तो आपका दिल पिघल जाएगा और आप मेरी जान बख़्श देंगे।"

"फिर मज़ाक़..." क़ुरबाशी गुस्से में बड़बड़ाया।

"मैंने अभी अपनी बात पूरी नहीं की, सरकार!"

"तो जल्दी करो!"

"अच्छा, सरकार! यह है मेरा घायल हाथ और ये है मेरी आंखें। जब मैं इनकी रोशनी आपको दे दूंगा..."

"तो?" क़ुरबाशी ने फिर अहमद की बात काटी।

"तो क्या?"

"तो मैं यह नहीं चाहता कि आप मेरी जान बख़्श दें ... अंधे भिखारी की ज़िन्दगी से मुझे क्या फ़ायदा?"

"तेरी बात तर्कपूर्ण तो है, मगर तू क्यों सोचता है कि मैं तेरी जान बख़्शूंगा?" क़ुरबाशी ने हंसकर कहा।

अहमद पहलवान, जो अब तक उकड़ू बैठा था, सीधा तनकर खड़ा हो गया और क़ुरबाशी के मुस्कराते चेहरे की तरफ़ देखते हुए बोलाः

"न जाने क्यों मुझे ऐसा लग रहा है, सरकार!"

"बेकार की बात है!" क़ुरबाशी ने कहा, "तुझे मालूम है कि इलाज समाप्त होते ही मैं तेरा सिर धड़ से अलग करवा दूंगा .. इसीलिए तू इलाज को टाल रहा है .. यही बात है न?"

"नहीं, सरकार! इलाज मैं अभी शुरू कर सकता हूं। पर पहले मुझे पूरा यक़ीन होना चाहिए।"

"किस बात का?"

"इस बात का कि आप मेरी जान लेंगे।"

"मैं तो कह चुका हूं..."

"हां, मैं सुन चुका हूं..."

"फिर क्या चाहता है तू?"

"आपके जवानों से कुछ शब्द कहना चाहता हूं।"

"क्यों?"

"ताकि आपका गुस्सा भड़क उठे।"

"मैं यों भी गुस्से में हूं।"

"मैं चाहता हूं कि आप और अधिक क्रोधित हो जाएं।"

"और अगर मैं तुझे तेरी बेवक़ूफ़ी की बात कहने न दूं तो?"

"तो क्या आप मेरी बेवक़ूफ़ी की बातों से डरते हैं?" अहमद पहलवान ने मुस्कराते हुए ढिठाई के साथ कहा।

क़ुरबाशी आग-बबूला हो उठा और पहरेदारों की ओर संकेत करते हुए बड़बड़ाया:

"और यदि मै इनसे कहूं कि ये तेरे बेवक़ूफ़ सिर से अपनी तलवार की धार तेज़ करें तो?"

"और यदि आपकी आंख की रोशनी न लौटे तो?" अहमद बोला। क़ुरबाशी एकदम बिगड़ गया, गद्दे पर उछलकर क्रोध में बोला:

"हरामज़ादे! बता जो कुछ बताना है!"

"अच्छा, सरकार!" अपनी ढिठाई को नम्रता में बदलते हुए अहमद पहलवान ने कहा और आंखें झुका लीं।

"मुझे नहीं!" क़ुरबाशी चिल्ला उठा और हाथ से अपने जवानों की ओर संकेत किया, जो ग़ौर से सब कुछ देख रहे थे। अहमद पहलवान ज़मीन पर बैठे हुए जवानों की ओर पलटा और उन्होंने उसका ढलते सूरज से आलोकित चेहरा देखा।

"जवानो!" वह ऊंचे और तीखे स्वर में बोलने लगा। "मुझे देखकर आप लोग सोच रहे होंगे: कितना अजीब आदमी है कि अपने दुश्मन को अपनी उंगली दे दी और अब अपनी आंखों की रोशनी भी देने जा रहा

है। पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आख़िर मैं इसे अपनी उंगली और अपनी आंख ही तो दे रहा हूं जबकि आपने उसे अपने को ही नहीं, बल्कि अपने भाईयों, बाप, बाल-बच्चों को सौंप दिया है। आप अपने भाईयों को मौत के घाट उतार रहे हैं, अपने गांवों को जलाकर भस्म करते जा रहे हैं। आप यह न सोचिये कि भय से मेरी मत मारी गयी है। मुझ में और आप में इतना ही फ़र्क़ है कि मैं जानता हूं कि मैं यह क्यों कर रहा हूं पर आप नहीं जानते हैं। सच्चाई के दो शब्द आप तक पहुंचाने के लिए मैं अपना सब कुछ क़ुरबान करने के लिए तैयार हूं चाहे मेरी चमड़ी के जूते बनाये जाएं, चाहे मेरा गोश्त हड्डियों से खुरच दिया जाय। कुछ ही क्षण बाद मैं मर जाऊंगा ... पर मरने के पहले मेरी यह जानने की इच्छा है कि आप क्यों हथियार लेकर पहाड़ियों और दर्रों में भटकते-फिरते हैं, क्यों अपने जैसे ग़रीब लोगों को गोली मारते हैं? आख़िर क्यों आपने अपना हल छोड़कर ब्रिटिश बंदूक़ उठाई है?"

"बंद कर, बदमाश!" बिफरे स्वर में क़ुरबाशी चिल्ला उठा, पर अहमद पहलवान ने उसकी ओर पलटकर देखा तक नहीं, बल्कि ऊंची साहसपूर्ण आवाज़ में बोलता रहाः

"अमीरों और ज़मीनदारों को डर है कि जनता बसमाचियों का सफ़ाया कर देगी ... और आप तो कंगाल हैं ... आपको किस चीज़ का डर है?"

क़ुरबाशी की आंख से चिनगारियां छूटने लगीं। उसने जल्लाद को आदेश दिया कि वह अहमद को तलवार की चपटी तरफ़ से मारे। जल्लाद ने यंत्रवत् आदेश का पालन किया। अहमद पहलवान चोट से लड़खड़ाया, पर गिरा नहीं।

क़ुरबाशी ने एक झटके से अपने कंधों से तबीब और वृद्ध के हाथ हटा दिये और चबूतरे के पास खड़े अहमद पहलवान के बिल्कुल समीप आकर कर्कश स्वर में बोलना शुरू कर दियाः

"मैं तेरी बकवास बहुत सुन चुका हूं। अब तू भी मेरी बात सुन ले, मसख़रे। अब तू तलवार की मार से नहीं मरेगा बल्कि पहले तबीब तेरी

चमड़ी उतारेगा। मरने के पहले तू अपनी चमड़ी से मढ़ी ढोलक की आवाज़ सुनेगा। तभी तेरा गला छुरे से काटा जाएगा। बस ... अब काम शुरू कर। बकबक बन्द!"

अहमद पहलवान ने नम्रतापूर्वक सिर झुका लिया और इशारे से प्याला मांगा। प्याला मिल गया। उसने पत्थर पर फिर दवा का लेप किया। पर अहमद के अगले संकेतों को कोई समझ नहीं पाया।

क़ुरबाशी ने गाली देकर उसे बोलकर बताने को कहा।

अहमद पहलवान ने भूसा लाकर उसे जलाने और क़ुरबाशी को उसके धुएं के ऊपर झुकने को कहा।

"इससे इनकी अ़च्छी आंख को तो क्षति नहीं पहुंचेगी न?" वृद्ध ने पूछा।

"तो अच्छी आंख पर पट्टी बांध दो!" अहमद पहलवान ने आदेश दिया।

"अब मोमबत्ती भी जलाओ," उसने कहा। "बराबर ध्यान रखो कि वह बुझने न पाए।"

मोमबत्ती जलाई गई। उसकी धीमी रोशनी पर एक नज़र डालकर अहमद पहलवान ने तबीब को संबोधित कियाः

"आप पत्थर की नोक ख़राब आंख की ओर करके इसे ऐसे घुमाइये!..."

अहमद ने दिखाया कि कैसे घुमाना है, और तबीब ने पत्थर को क़ुरबाशी की ख़राब आंख के पास हिलाना और घुमाना शुरू कर दिया।

"धीरे-धीरे," अहमद पहलवान कहता रहा। "वैसे जैसे मां अपने बच्चे को झुलाती है।"

तबीब ने शायद ही कभी ध्यान से देखा होगा कि मां अपने बच्चे को कैसे झुलाती है। इसलिए उसने लाख कोशिशें कीं, पर वह सब अहमद पहलवान को पसंद नहीं आया।

इस बीच धुएं से क़ुरबाशी का दम घुट रहा था और उसने तबीब की नासमझी से गुस्से में आकर कहाः

"पत्थर उसी को दीजिये, तबीब! वह ख़ुद ठीक से करे।"

वृद्ध ज़मीनदार खुसर-फुसर करके क़ुरबाशी को कुछ बताने लगा। वह शायद चौकसी बरतने की सलाह दे रहा था, क्योंकि क़ुरबाशी ने झल्लाकर कहा:

"मैं क्यों डरूं इस कमबख़्त से?! आख़िर मेरे जवान इस पर अपनी तलवारें ताने खड़े हुए हैं, जल्लाद भी पास ही है।"

अहमद पहलवान घुटनों के बल क़ुरबाशी के सामने बैठ गया और बोला:

"सरकार! किसी को मुझ पर शक न रहे, इसलिए मेरी आंखों पर भी पट्टी बांध दी जाये!"

"पट्टी बांधो!" क़ुरबाशी ने धुएं के मारे खांसते हुए आदेश दिया। पट्टी बांधे जाने पर अहमद पहलवान बोला:

"अब पत्थर मुझे दे दीजिये!"

तबीब पत्थर उसके हाथ में रखकर ख़ुद परे हट गया।

"मोमबत्ती का ध्यान रखिये, हकीम जी!" अहमद ने कहा। "यह भी देखिये कि पत्थर की नोक सदा सरकार की ख़राब आंख की ओर रहे। सरकार, मैं शुरू कर रहा हूं।"

... अहमद पहलवान पत्थर को धीरे-धीरे हिलाता रहा, उसके झोंकों से धुआं बढ़ता, तेज़ होता गया। इस धुएं में अहमद पहलवान और क़ुरबाशी के सिर मुश्किल से नज़र आ रहे थे।

उधर अहमद पहलवान और तबीब की पीठ पीछे मोमबत्ती की लौ हवा के झोंकों के कारण फड़फड़ा रही थी। तबीब और सभी उपस्थित लोगों का ध्यान उसी पर लगा था।

साथ ही साथ वे अहमद पहलवान के हाथों की हरकत पर बराबर नज़र रखे हुए थे।

हालांकि अहमद पहलवान की आंखों पर पट्टी बंधी थी, फिर भी उसका हाथ ठीक से चल रहा था, पत्थर की नोक ख़राब आंख की ओर

रही। जब वह कुछ हट गई, तो तबीब इसके बारे में कुछ कह भी नहीं पाया, कि अहमद पहलवान चिल्ला उठाः "मोमबत्ती!"

तबीब समेत सभी लोगों ने पलटकर मोमबत्ती की तरफ़ देखा। उसी क्षण अहमद पहलवान ने पत्थर को ज़ोर से क़ुरबाशी के सिर पर मारा। पत्थर की नोक उसके सिर में गहरी धंस गई। अगले ही क्षण जल्लाद की तलवार की सनसनाहट सुनाई दी। अहमद पहलवान मुर्दा क़ुरबाशी पर मृत पड़ा था।

पर जल्लाद अपनी तलवार पोंछ भी नहीं पाया था कि एक जवान की गोली का शिकार हो गया। इसके बाद अंधाधुंध गोलीबारी शुरू हो गयी। मृत क़ुरबाशी के जवान एक दूसरे पर गोलियां चलाने लगे।

लड़ाई आधी रात तक जारी रही, और आधी रात को वृद्ध ज़मीनदार की हवेली जलने लगी।

आग की लपटें ऊंची उठ रही थीं और आस-पास के गांवों को "काना शेर" के नाम से कुख्यात क्रूर क़ुरबाशी के अंत की ख़बर दे रही थीं।

आयदिन (मंज़ूरा साबिरोवा)

(1906-1953)

आयदिन सुप्रसिद्ध कवियत्री, गद्यकार और नाटककार थीं। उन्होंने हाई स्कूल पास करने के बाद ताशक़न्द शिक्षा संस्थान में शिक्षा प्राप्त की थी। वह शिक्षाशास्त्री थीं। उनका प्रथम कविता-संग्रह "प्रभात गीत" सन् 1931 में प्रकाशित हुआ था। आयदिन ने गद्य लघु-कथाकार के रूप में अधिक ख्याति पायी है। अलग-अलग संस्करणों में उनके कई कहानी-संग्रह छप चुके हैं। प्रस्तुत कहानी "ख़ुशी के आंसू" उनके कहानी-संग्रह "ज़ुमराद" (सन् 1932) से ली गयी है।

ख़ुशी के आंसू

सभाध्यक्ष ने चश्मा पहना और चटकी चिमनीवाली लालटेन की तरफ़ झुककर सभापतिमंडल में चुने गए लोगों के नाम एक-एक करके सुनाए। क़न्दालत का भी नाम उन्होंने बोला। पर वह टस से मस नहीं हुई। नज़रें झुकाकर अपनी जगह यों बैठी रही मानो कोई जुर्म किया हो। उपस्थित लोग मुड़कर उसे नज़रों से ढूंढ़ने लगे। वह थी कि सिर झुकाकर बैठी थी। अध्यक्ष ने फिर उसका नाम पुकारा। मैंने हल्के से उसे कोहनी मारकर कहा:

"उठिये न, यह क्या हो गया आपको?! सभापतिमंडल में पहली बार तो चुनी नहीं गई हैं।"

"रहने दीजिये, नसीबाख़ोन," उसने दृढ़ स्वर में कहा।

"अरे उठिये, सबकी निगाहें आप पर लगी हैं," मैंने उसे फिर कुछ धकेला।

जैसे तेज़ हवा के झोंकों से झुका पेड़ बड़ी कठिनाई से अपना तना सीधा करता है, वैसे ही उसने भी धीरे से सिर उठाया और चारों और देखा। क्लब का विशाल हाल लोगों से खचाखच भरा था। पर बड़ी शांति थी। महिलाएं जब कहीं जाती थीं, तो बाल-बच्चों को संग ले जाती थीं। पर आज वे बच्चों को क्लब के पास के बाल-उद्यान में छोड़कर आई थीं। शायद ही कभी किसी सभा में इतनी महिलाएं जमा हुई हों।

सब लोग बड़े ध्यान के साथ लाल सेना के भूतपूर्व कमांडर पुलातोव के बारे में सभाध्यक्ष की बातें सुन रहे थे। बुख़ारा प्रांत के निवासियों ने पुलातोव को सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत में अपना उम्मीदवार खड़ा किया था। अब यहां वे अपने भावी निर्वाचकों से मिलने आए थे।

क़न्दालत को आशा थी कि उसके बारे में भूल जाएंगे, वह दिखावे के लिए अपने नये जूतों को निहारने लगी जो उसने पिछले महीने गांव की दुकान में ख़रीदे थे। उम्मीदवार के साथ आए प्रांतीय पार्टी समिति के सचिव साथी नियाज़ोव उसे इशारे से मंच पर बुला रहे थे। उसकी वजह से मैं भी शर्मा गई। पर उसकी जगह मैं तो जा नहीं सकती थी! मैंने क़न्दालत के सिर पर बंधा रूमाल ठीक किया और बाहर निकले बालों में कांटा लगा दिया और उसे उठा दिया। वह कुछ आगे बढ़ी, पर फ़ौरन अपने स्थान पर लौटकर बैठ गयी।

"अरे, मैं नहीं गई तो क्या हुआ, क्या फ़र्क़ पड़ता है कि कहां बैठूंगी? मेरा दिल दुख रहा है," उसने कहा और अपना सिर झुका लिया। उसकी पीठ पर हाथ रखकर मैंने अनुभव किया कि सचमुच उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। हाथ-पांव थरथरा रहे थे। मुझे उस पर दया आ गयी।

"क्या बात है? बुख़ार है क्या?"

"नहीं, ख़ुद नहीं जानती कि क्या हो गया मुझे?"

"अगर बीमार नहीं हैं, तो यह नाटक क्यों। इतनी उम्र में छोकरियों की-सी अदाएं कर रही हैं," मैंने झुंझलाहट के साथ कहा और मुंह फेर लिया।

क़न्दालत कुछ देर तक जड़ बैठी रही और फिर झटके से उठकर, मेरी तरफ़ नज़र डाले बिना क्लब के मंच की ओर चल दी, जहां सभापतिमंडल में चुने गए लोग बैठे थे।

क़न्दालत ग़नीयेवा हमारे इलाके की [illegible] [illegible] हैं। साथ ही वे हमारे सामूहिक फ़ार्म की पार्टी समिति की सचिव भी हैं। हमारा सामूहिक फ़ार्म इलाके में पहला है और सारे प्रांत भर में मशहूर है। क़न्दालत को सब लोग जानते हैं।

नियाज़ोव ने सिर हिलाकर उसका स्वागत किया। क़न्दालत पीछे जाकर बैठ गई। पगली कहीं की। अगर मैं होती तो किसी ऐसे स्थान पर बैठती कि सब देख लें कि एक महिला होकर भी मैं सभापतिमंडल में चुनी गई हूं।

मैं उसकी ओर न देखने की कोशिश कर रही थी। मगर आंखें अपने आप क़न्दालत पर ही जाकर रुक जातीं। आख़िर वह मेरी सहेली ही तो है। आज इसे क्या हुआ, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह तो बड़ी चुस्त और हाज़िरजवाब है। हंसोड़ भी है। अच्छे-अच्छे लड़कों को नचा देती है। और आज ... कहीं उसका दिल तो किसी पर नहीं आ गया.. . हां, यही बात है। मैं पहले क्यों नहीं समझी?! आज शाम को जब यह आदमी सामूहिक फ़ार्म के दफ़्तर के सामने कार से उतरा, तो वह खिड़की के पास खड़े होकर बाहर झांक रही थी और फिर एकदम हट गई। वह एकाएक उदास हो उठी थी और उसने फ़ौरन पर्दे बंद कर दिये थे। अच्छा, घर पहुंच लें, मैं मज़ा चखाऊंगी उसको। भला एक नज़र में ही कोई दिल दे देता है किसी को?

जब पुलातोव भाषण मंच पर चढ़े, तो हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। वह चमकीले बटनोंवाली फ़ौजी फ्रेंच पहने थे, जिसका रंग उड़ चुका था। वक्ष पर "लाल पताका" पदक था। काले-काले बाल, काली भौंहें। बड़ी-बड़ी बादामी आंखें और उन आंखों में विचित्र चमक। फ़ौजी वर्दी उनके सुडौल शरीर पर बड़ी फब रही थी। और शब्दों को तोल-तौलकर बोलने का अन्दाज ... उंह ... औरत जात का दिल भी क्या चीज़ है? कुछ ढील दी कि दीवाना बना सकता है।

"मेरा जन्म क़ोक़न्द शहर के नज़दीक क़ुमक़िश्लाक़ गांव में हुआ" — पुलातोव ने अपना भाषण शुरू करते हुए कहा। "मेरे पिता एक खेत-मज़दूर थे। सख़्त मेहनत से रोज़ी रोटी कमाते थे। जब अमीरों और ज़मीनदारों से लड़ाई शुरू हुई, तो बासमाचियों के सरदार ने अब्बाजान को उसके गिरोह में शामिल होने के लिए कहा। अब्बाजान राज़ी नहीं हुए," पुलातोव रुक गए। गिलास उठाकर थोड़ा पानी पिया, फिर बोलने लगे— "एक दिन कुछ बन्दूक़धारी हमारे घर आ धमके। मां ने मुझे जगाकर

कहाः 'ख़ालतायजान बेटे, दौड़कर जाओ और लाल सैनिकों को ख़बर करो!' मां के ये शब्द आज तक मेरे कानों में गूंज रहे हैं। मैं छलांग लगाकर खिड़की से बाहर कूदा। और जब लाल सैनिक पहुंचे तो हमारा घर ख़ाली था। इस तरह मेरे मां-बाप मुझसे बिछुड़ गए ... मैं लाल सैनिकों के साथ चला गया।"

मैं स्तब्ध बैठी उनकी बातें सुन रही थी। यहां तक कि तनाव से गर्दन अकड़ गयी। अकेले मैं ही नहीं, सब लोग बड़े ध्यान के साथ पुलातोव की हर बात सुन रहे थे। इसलिए जब वे एक क्षण के लिए रुक जाते, तो हाल में एक सरसराहट-सी सुनाई पड़ती थी। मैंने सिर उठाकर क़न्दालत पर नज़र डाली। वह बुत बनी बैठी थी। उसका रंग उड़ा हुआ था और मालूम हो रहा था कि यदि उसके सामने कुर्सी न होती तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ती।

पुलातोव ने अपनी जीवन-कथा जारी रखीः

"मैं लाल सैनिकों के साथ रहा। उनसे बन्दूक़ और तलवार चलाना, दुश्मनों का पीछा करके उन्हें पकड़ना सीखा। एक लड़ाई में मैं बुरी तरह घायल हुआ। मुझे ताशक़न्द के अस्पताल में भेजा गया। चार महीने तक इलाज होता रहा। ठीक होने पर दूर-दराज सूखी स्तेपी में स्थित अपने गांव गया। साथी-संबंधियों को देखने की इच्छा थी...

"पड़ोस के गांव में एक बुजुर्ग रहते थे। वह अंधे थे। वह सड़क के किनारे पर रहते थे और कुएं का पानी यात्रियों को पिलाकर गुज़ारा करते थे। मेरे लिए वह बाप जैसे बन गये थे। मेरा तो अपना कोई था नहीं। मैं उन्हें बहुत चाहता था। उन्हें अपने साथ ले जाने का विचार था। लेकिन जब मैं वहां गया, वह नहीं मिले। कुआं सूख गया था और उनका घर क़रीब-क़रीब ढह गया था। किसी को उनका अता-पता मालूम नहीं था। लोगों ने इतना ही बताया कि उसकी बेटी ग़ायब हो गई है, वह उसी की खोज में चले गये ... इस प्रकार मैंने दूसरी बार पिता को खो दिया।" आगे पुलातोव से कुछ बोला नहीं गया। उन्होंने कुछ पानी पिया और बाल सहलाये, और बोलने लगेः

"मैं वहां से चला गया। पढ़ा। बाद में मुझे सैनिक अकादमी में शिक्षा जारी रखने के लिए भेजा गया। शिक्षा समाप्त करने पर यहीं लौटकर आया हूं। ईमानदारी से मेहनत करने, अपनी जनता की यथाशक्ति सेवा करने की कोशिशें करता हूं, ताकि हमारा सूर्यस्नात जनतंत्र फलता-फूलता रहे, कुएं सूख न जाएं, मकान खंडहर न हो जाएं, बल्कि लोग अपने घरों में सुख-चैन से रहें। मुझे उम्मीदवार खड़ा करके आपने मेरा बड़ा सम्मान किया है। सर्वोच्च सोवियत में आपका प्रतिनिधि बनकर आपकी यथायोग्य सेवा करने की जी-जान से कोशिश करूंगा।"

पुलातोव कुछ देर मौन खड़े रहे, लगता था कि वे लोगों को अपने दिल की कोई और बात बताना चाहते हैं। पर घबरा गए और अपने स्थान की ओर बढ़े। नियाज़ोव ने अपने हाथ मिलाकर उन्हें बधाईयां दीं। तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। सब उठ गए। क़न्दालत भी उठी। अब उसके गाल दहक रहे थे।

सभा समाप्त हुई। सब चल दिए। मैं क़न्दालत के साथ हॉल से निकली। कुछ देर तक खड़े होकर हम कार को देखते रहे, जिस में नियाज़ोव और पुलातोव बैठे थे। कार आंखों से ओझल हो गई। मैं क़न्दालत से लिपट गई। हम घर की ओर चल पड़े। हम दोनों एक बालाख़ाने में रहते थे, जिस की खिड़कियां बड़ी सड़क की ओर खुलती थीं।

मैं बराबर बोले जा रही थी, पर क़न्दालत चुप थीं। मैंने उससे कुछ छेड़छाड़ करने की भी कोशिश की, मगर सब बेकार। मुझे लगा कि वह कुछ नाराज़-सी हो गयी है, इसलिए मैं भी चुप हो गई।

कमरे में प्रवेश करते ही क़न्दालत खाट पर गिर गई और मुंह तकिये में छिपा लिया।

"आख़िर क्या हुआ, कुछ बताइये न," मैंने कहा। फिर दिल्लगी में बोली: "इतनी जल्दी प्रेम में फंस गई। यह अच्छा नहीं है।"

आंसू-भरी आंखें उठाकर उसने मुझ पर एक नज़र डाली और चिल्लायी:

"अरी, कब तक बकबक करती रहेंगी?! आपको क्या मालूम कि मेरा दर्द क्या है?" वह रो पड़ी।

"क्या पति के देहान्त की याद आ गई?"

देहान्त की बात होती, तो बेहतर होता। अब छोड़िये बहन, मुझे और तंग न कीजिये।"

"तो बताइये, क्या बात है?"

वह देर तक मौन पड़ी रही। फिर सूनी दृष्टि से देखते हुए उसने कहाः

"ठीक है। मुझे अपना दर्द किसी को अवश्य बताना है। नहीं तो, मैं पागल हो जाऊंगी। पर आप तो किसी को न बताएगी?"

"नहीं, नहीं, मुझ पर गाज गिरे अगर मैं अपना मुंह खोलूं ... मगर कब से आपको मुझ पर संदेह होने लगा?"

"न ... न ... न ... मेरे सिवा यह किसी को मालूम नहीं होना चाहिए। हाय, इससे बेहतर है कि मैं मर जाऊं।" वह होंठ काटकर तकिये पर गिर गई और सिसकने लगी।

मैं उसके पास बैठ गई, उसे अपनी बाहों में भर लिया। धीरे-धीरे वह शांत हो गई। मैं भी उसके साथ लेट गयी। हम दोनों चुपचाप लेटी रहीं, पर नींद किसी को नहीं आ रही थी। क़न्दालत सिर के नीचे हाथ रखे, छत से लटके तेल के लैंप को टकटकी बांधे देख रही थी। लैंप कमरे में धुंधली पीली रोशनी बिखेर रहा था।

"अच्छा, तो सुनिये मेरा क़िस्सा," क़न्दालत ने कुछ देर बाद कहा। अगर मेरी भर्त्सना करेंगी भी, तो मुझे इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा। "वसंत ऋतु की बात है। ख़ूबानी के पेड़ पर छोटे-छोटे फल आ चुके थे। हमारे घर के छोटे-से आंगन में ख़ूबानी का एक बड़ा-सा पेड़ था। मैं इस पर फलों को कभी पकने नहीं देती थीः कच्चे ही सब खा जाती थी। एक दिन मैं उसी पेड़ पर चढ़कर उसकी चोटी पर बैठी थी। ख़ूबानी के कच्चे फल झोली में जमा कर रही थी। जब काफ़ी फल जमा कर लिये, तो एक मज़बूत डाल पर जा बैठी। कच्ची खट्टी ख़ूबानी खाते-खाते मैं चारों ओर दूर-दूर तक नज़र दौड़ा सकती थीं। दूर क्षितिज पर कई काले बिंदु नज़र

आये, जिनके पीछे धूल का गुबार उड़ रहा था। धीरे-धीरे धूल का यह बादल पास आता जा रहा था। सारा क्षितिज पीली धूल की चादर से ढक-सा गया था। धूल उड़ाते हुए घुड़सवारों के एक दस्ते ने गांव में प्रवेश किया और पिता जी के पास रुक गया। 'घोड़ों को पानी पिला, बुड्ढे!' उनमें से एक ने कड़ककर कहा। मैंने टहनियां हटाकर नीचे देखा। पिता जी ने कुएं के पास जाकर पत्थर की नांद को टटोलकर देखा। उसमें पानी भरा था। अच्छा हुआ कि मैं पहले ही कुएं से निकालकर उसमें पानी भर चुकी थी। इसीलिए आराम से पेड़ पर बैठी रही। घोड़े बड़ी देर तक पानी पीते रहे। पेट भर पानी पीकर घोड़े सिर हिलाने लगे। सवारों ने कुएं के पास रखे मिट्टी के प्याले में कुछ पैसे फेंके और अपने घोड़ों को बेरहमी से चाबुक मारते, सरपट दौड़ाते हुए चले गए। मैं बड़ी देर तक पेड़ पर छिपी रही। मेरी रक्षा तो पिता जी नहीं कर सकते थे – वे बूढ़े और असमर्थ थे। ऊपर से अंधे। ख़ुदा का शुक्र है कि हमारे घर के पास यह कुआं था। उसी से हमारा गुज़ारा होता था। मैं लंबी रस्सी से घड़ा बांधकर कुएं से पानी निकालकर भरती, पिता जी यात्रियों को पानी पिलाते, इस तरह कुछ पैसे मिल जाते थे।" यह कहकर क़न्दालत ने गहरी सांस ली।

"ठहरो, कहीं वह बुज़ुर्ग तुम्हारे अब्बा तो नहीं थे, जिनका ज़िक्र पुलातोव ने किया?! आप रिश्तेदार निकले तो..." मैं घबराकर बोल उठी।

"आप मेरी बात मत काटो!" क़न्दालत ने कहा। अब वह बिल्कुल शांत लग रही थी। कुछ याद करते हुए उसने आंखें मूंद लीं और फिर अपनी कहानी जारी रखी। "नांद में पानी ख़त्म हो गया था। मुझे पेड़ से उतरकर उसमें पानी भरना था। मगर जी नहीं चाह रहा था। न जाने उस दिन मुझ पर क्या बला चढ़ी, बड़ी सुस्ती आ गई थी। अपने छोटे-से घर और बरामदे में झाड़ू तक नहीं दी थी। सुबह से सिर्फ़ सिर धोया था और क़ुन्दुज़ चाची के पास जाकर चोटियां गुंथवाईं थीं, बस।

पेड़ की डाल पर बैठे-बैठे मुझे क़ुन्दुज़ चाची की बात याद आ गई। चोटियां गूंथकर और उनमें घुंघरू लगाकर उन्होंने कहा: 'अरी, तू तो बिलकुल सयानी हो चुकी है, क़न्दालत! तेरे हाथ पीले करने का वक़्त आ

गया है। तुझे ढंग के कपड़े पहनाए जाएं, तो कई युवक तेरे लिए झगड़ पड़ें।' क़ुन्दुज़ चाची ने आंख मूंदकर जीभ चटकारते हुए कहा – 'अरी! तेरे प्यार-दुलार से कोई भी मर्द सुख के समंदर में गोते लगाने लगेगा। हां, ठीक ही तो कहते हैं कि ग़रीब की जगह अंधेरे में है। इसलिए कोई भी हरामख़ोर तेरी तरफ़ नहीं देखता। अगर तेरा बाप अमीर होता, तो दूल्हों की बाढ़ आ जाती। कोई बात नहीं, तुझे भी अपने समान कोई ग़रीब मिल जाएगा। कहते हैं, अमीर की बेटी जायदाद से, ग़रीब की हुस्न से जानी जाती है। नागिन-से बाल, पतली कमर और चांद-सा मुखड़ा! जवान मर्द तुझ पर दीवाने न हों, तो किस पर?! मगर सावधान रह! कहीं बासमाची न उठा ले जायें। अपने बाप से भी कह, तेरा बराबर ख़याल रखे, विशेषकर रात को। ज़रूरी कहना! उम्र तो कितनी है तेरी?'

"सोलहवां लगा है। यों भी पिता जी मेरी बराबर देखरेख करते हैं कहीं जाने नहीं देते," मैंने जवाब में कहा।

वह और कुछ कहने लगी, पर मैं भाग गयी।

पेड़ पर बैठे-बैठे मैं सोचने लगी, वह ऐसी बातें क्यों कर रही थीं।

इतने में सड़क पर फिर धूल उड़ती नज़र आयी। ... 'फिर कोई मुँह उठाये आ रहा है,' मैंने मन-ही-मन सोचा और कुछ नीचे उतर आयी। कोई सत्रह-अठारह बरस का युवक घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ आ रहा था। हमारे कुएं के पास उसने इतने झटके से लगाम खींची कि उसका घोड़ा पिछली टांगों पर खड़ा हो गया। वह धारीदार चोग़ा पहने था, कमर पर कशीदाकारी से सजा कमरबंद कसा था। उसके बूट धूल से सने थे। हाथ से टोपी संभालते हुए वह घोड़े पर से कूद पड़ा।

'अस्सलाम अलैकुम, बाबा! आपकी इजाज़त हो, तो अपने घोड़े को कुछ पानी पिला लूं।'

'पिलाओ, बेटे! मगर कुछ इन्तज़ार करना पड़ेगा। मेरी लड़की न जाने कहां ग़ायब हो गई। सहेलियों के साथ खेलने चली गई होगी, पानी भरना भी भूल गई,' पिता जी ने कहा और मुझे आवाज़ देकर बुलाने लगे। मैं पेड़ से उतरकर कच्ची ख़ूबानी ताक में रख रही थी। सिर पर पिता जी

की जाकेट ओढ़कर कुएं की ओर गई। जब कोई अजनबी आता, तो मैं उसी को ओढ़ लेती और उसके पल्ले से अपना मुंह ढांप लेती थी। एक हाथ से आंखों तक मुंह को ढके मैंने कुएं से पानी खींचा और घड़ा पिता जी की ओर बढ़ा दिया। पानी खींचने के लिए झुकते समय मेरे हाथ और बाल खुल गए, मैं पल्ला करने की कोशिश करती, पर सब बेकार। मैं शर्म से ज़मीन में गड़ी जा रही थी। यह देखकर युवक ने प्यार के साथ अपने घोड़े को थपथपाते हुए अपना मुंह फेर लिया। पर जब मैंने अगली बार पानी-भरा घड़ा निकाला तो पिता जी को नांद में पानी उंडेलने में मदद देने के लिए झट से पलटा, पर वह फिसल गया। मैं हंस पड़ी। उसने पलटकर मेरी ओर देखा। हमारी आंखें चार हो गईं। वह भी मुस्करा उठा। मैंने हड़बड़ाकर अपना मुंह ढक लिया। पिता जी को कुछ मालूम नहीं हुआ। मदद के लिए उन्होंने युवक को धन्यवाद दिया। घड़े को लेकर मैंने और पानी निकालना चाहा, पर युवक ने कहाः 'काफ़ी है, बहन! मेरी और मेरे दोस्त की – दोनों की प्यास बुझ गयी।' उसने अपने घोड़े की अयाल पर हाथ फेरा। न जाने क्यों वह जाने में जल्दी नहीं कर रहा था। आहिस्ता-आहिस्ता उसने ज़ीन और रकाब कसे। फिर दुविधा में अपने घोड़े के पास खड़ा रहा। प्याले में कुछ सिक्के खनखनाए। पिता जी ने उसे दुआ दी। युवक घोड़े की लगाम पकड़कर पिता जी के पास जा बैठा। चारों ओर एक नज़र डालकर उसने कहाः

'बाबा, आपको एतराज़ न हो तो आपसे एक बात पूछूं?'

मेरा दिल ज़ोर से धड़कने लगा। मैं पलटकर कुएं के पीछे चली गई। पिता जी को मालूम नहीं हुआ कि मैं पास ही हूं, नहीं तो 'अन्दर जा!' कहकर मुझे डांटते।

''पूछो, बेटे! अगर मालूम होगा तो अवश्य बताऊंगा,' पिता जी ने कहा।

युवक ने फुसफुसाकर कहाः

'बाबा, हमें मालूम पड़ा है कि यह गांव बासमाचियों से पटा है। पता नहीं ये लोग कहां छिपे रहते हैं ... आपको इस बारे में कुछ मालूम तो नहीं?' युवक ने फिर चारों ओर देखा।

'क्या बताऊं, बेटे?! रात को गोलियों की आवाज़ें तो अवश्य सुनता हूं। पर आंखें ख़राब हैं, मैं कुछ नहीं देख पाता हूं। कुछ मालूम ही नहीं कौन आता-जाता है यहां,' पिता जी दाढ़ी पर हाथ फेरते सोच में डूब गए।

'पर अभी क़न्दालत कुछ कह रही थी...' उन्होंने आवाज़ देकर मुझे बुलाया। वे सोच रहे थे कि मैं कहीं दूर गई हूं। मैंने भी उन्हें ऐसे आवाज़ दी मानों दूर से आ रही हूं। पल्ला करके उनके पास आ गई।

'क़न्दालत बिटिया! तुम पूछ रही थीं कि वे लोग कौन हैं, जो चोग़े के अन्दर हथियार छिपाये घूमते हैं। क्या ये लोग यहीं से गुज़रते थे?" पिता जी ने मुझसे पूछा।

'जी हां' मैंने उत्तर दिया। यहां से ऐसे पांच-छः व्यक्ति गुज़रे हैं। अन्दर बन्दूक़, ऊपर से चोग़ा। ये लोग रोज़ यहां से गुज़रते हैं।"

'तो वे कहां जाते हैं, आपको मालूम नहीं?' युवक ने पूछा।

"आप चाहें तो मैं दिखा सकती हूं,' मैंने कहा। उसने अपना घोड़ा दरख़्त से बांध दिया और हम चल दिये। मैं आगे-आगे और वह कुछ पीछे। जब हम शहतूत के बग़ीचे में पहुंचे तो वह मेरे पास आ गया और कहने लगा:

'आपके सिर्फ़ अब्बा हैं?'

मैंने सिर हिलाया।

'कुएं से बंधी रहती हैं, क्या जी नहीं उचटता? आपकी मां कहां हैं?'

'अम्मी का देहांत हो चुका है। मैं उस समय सात साल की थी। तभी से पिता जी के साथ रहती हूं। ऊबने की क्या बात है? मैं बेकार तो नहीं बैठती हूं। पड़ोसियों का बड़ा-सा बाग़ है। मैं उन्हें ख़ूबानी, आड़ू, चेरी आदि चुनने में मदद देती हूं। फिर वे सर्दियों के लिए हमें कुछ सूखे फल देते हैं। जब फ़ुर्सत मिलती है तो टोपियां, रूमाल काढ़ती हूं।'

वह हंस पड़ा। कहा: 'आप भली लड़की हैं। पिता की मदद करती हैं। और मेरा न बाप है, न मां। क्या आपके पिता जी मुझे अपना बेटा नहीं बनाएंगे?'

मैं संकोच में पड़ गई।

'मुझे क्या मालूम, आप ख़ुद उनसे पूछिए।'

'अगर आप उनसे कहें तो। वे तो आपको बहुत चाहते हैं और आपकी बात अवश्य मान लेंगे।'

'छोड़िये, मैं कुछ कहनेवाली नहीं हूं ... वह रही मस्जिद, इस दीवार के पीछे!"

आगे हम दोनों चुपके-चुपके दबे पांव गए। मेरे फटे-पुराने जूते कमबख़्त झाड़ियों में उलझ जाते थे और मैं कई बार गिरते-गिरते बची। बहुत झेंप गई। सूखी नाली को पार करके हम ऊंची दीवार के पास पहुंचे जिस के पीछे गुंबदवाली पुरानी इमारत थी। मैंने अन्दर झांकने की कोशिश की, मगर मेरा क़द छोटा था। पास के शहतूत के पेड़ पर चढ़ने का निश्चय किया, जूते उतारे। मैंने अपनी कमर पर मज़बूत हाथों की पकड़ महसूस की और दूसरे क्षण ही मैं पेड़ पर चढ़ी बैठी थीं। मेरे बदन में झुरझरी-सी फैल गयी। बड़ा गुस्सा आया इस मनचले पर, मैं उस पर बरसनेवाली ही थी पर इस डर से चुप रहना पड़ा कि कहीं कोई सुन न ले। उस पर गुस्से-भरी नज़र डालकर रह गई। जाकेट एक टहनी से उलझ गयी और मैं उसे छुड़ा नहीं पा रही थीं। मैं मन-ही-मन जाकेट, पेड़ और लड़के को कोसने लगी। मैं शर्माकर लाल हो गई। और वह यों खींसे निपोर रहा था, मानो कुछ नहीं हुआ। हाथ बढ़ाकर उसने जाकेट को टहनी से छुड़ा दिया।

"कुछ दिखाई दे, तो बताना! मेरा नाम ख़ालताय है," उसने कहा और नीचे उतर गया।

मैं पेड़ के घने पत्तों के बीच छिप गयी और ख़ालताय अका दीवार के ऊपर से अन्दर झांकने लगे। कभी-कभी वह मेरी ओर नज़र डालकर इशारे से पूछ लेतेः 'क्या कुछ नज़र आया?' मैं कंधे भींचकर, सिर हिलाकर रह जाती। दोपहर की नमाज़ का वक़्त था। कुछ इन्तज़ार करना पड़ा। कोई आध घंटे बाद चरमराकर किवाड़ खुले और मस्जिद से अजनबी लोग निकलने लगेः अपने गांव के सभी लोगों को मैं पहचानती

थी। एक-एक, दो-दो करके निकल रहे थे। साफ़-साफ़ देखा जा सकता था कि सबके चोग़ों के नीचे कारतूसों की पेटियां छिपी हैं।

'ये लोग वहां नमाज़ अदा करने के लिए नहीं इकट्ठा होते हैं,' ख़ालताय अका ने दांत भींचकर कहा। उन्होंने इशारा किया कि मैं उतर जाऊं। मैं उतर गई और हम चुपके से घर लौट आए। ख़ालताय अका ने पिता जी से दो शब्द कहे और फिर अपने घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए चले गये।

अगले दिन ठीक दोपहर के समय लाल सैनिक आ गए। सब बासमाची पकड़ गए। उनके हथियार छीन लिये गए और उन सबको क़ैद करके ले जाया गया।

कई दिन बीत गए। हम धीरे-धीरे उस घटना को भूलने लगे जो हमारे गांव के नीरस जीवन में एक धमाके की तरह थी। हमारे तो सब दिन एक जैसे थे। मैं फिर रोज़ कुएँ से पानी निकालती थी और पिता जी यात्रियों की प्रतीक्षा करते रहते थे। पर मुझे अक्सर उस युवक की याद आती थी। मैं बहुत दिनों तक उसके हाथ के स्पर्श का अनुभव करती रही। और रात को मैं सपने में अपने को उसे पानी बढ़ाते अथवा हम दोनों को दबे पांव मस्जिद की ओर जाते देखती थी। और दिन को जब उसका ख़याल आता तो मैं डरकर ये विचार खदेड़ने की कोशिश करती थी। पर ये विचार फिर से आते और मुझे हार माननी पड़ती थी।

और एक दिन ख़ालताय अका आये। उस दिन मैं बहुत ख़ुश थी। मैं काम करते-करते अपने प्रिय गाने गुनगुना रही थी। ख़ालताय खाने-पीने की चीज़ें लेकर आये थे, कहने लगे कि उन्हें राशन मिला है, मैं खाना पकाने लगी। वह पिता जी के साथ बैठकर बातें करने लगे।

इसके बाद वह अक्सर आने लगे। एक दिन वह फ़ौजी वर्दी पहने आये। सिर पर लाल सैनिकों की नुकीली टोपी। ये सब उन्हें बहुत फबता था। मैं उनकी ओर चोरी-चोरी देख रही थी कि उन्होंने मेरी नज़र पकड़ ली। मैं शर्म के मारे कमरे से उठकर चली गयी।

एक दिन उन्होंने दरवाज़ा खटखटाया, पर पिता जी घर पर नहीं थे, मैं समझ नहीं पा रही थी कि दरवाजा खोलूं या पिता जी का इंतज़ार करूं। मेरे मन में एक विचित्र उथल-पुथल मच गई। उन्होंने अपना घोड़ा दरख़्त से बांधकर घर में प्रवेश किया। मेरा हाथ पकड़कर बरामदे में अपने सामने बिठाया। ख़ुद चाबुक से खेलते रहे। मैंने अपना रूमाल मुंह पर खींच लिया। उन्होंने मेरा चेहरा खोल दिया। ऐसी बातें करने लगे कि मेरे दिल की धड़कनें बेक़ाबू हो गयीं। मैं भागना चाहती थी, पर उन्होंने रोक लिया।

'क़न्दालत!' उन्होंने कहा, 'आओ, अब हम दोनों शादी कर लें। शायद यह अभी जल्दबाज़ी होगी। लेकिन जल्दी ही मैं ताशक़न्द जा रहा हूं। आप, आप के पिता जी और हम – तीनों जाएंगे। हम दोनों पढ़ेंगे।'

मैं चुप रही। सिर झुकाये बैठी रही। उन्होंने बहुत कुछ बताया और मैं चुप रही। फिर वह जाने लगे। टोपी पहन ली। उठ खड़े हुए। मैं भी उठी। विदा लेते समय उन्होंने मेरे होंठ चूम लिये। मेरी वही हालत थी, जो किसी लड़के के हाथ में चिड़िया की होती है। किसी तरह पल्ला छुड़ाकर कमरे में छिप गई। मुझे ऐसे लग रहा था कि घर की दीवारें भी मुझे धिक्कार रही हैं। कुछ संभल गई तो कमरे से निकली।

आंगन सुनसान था। मैं दौड़कर बाहर निकली। वहां भी कोई नहीं था। मुझे लगा कि सारी दुनिया में मैं अकेली रह गई। 'नाराज़ होकर चले गये' इसी उधेड़बुन में पड़ी रही। रात की नींद भी हराम हो गई। 'ताशक़न्द जाएंगे, पढ़ेंगे...' पर मैं कैसे पढ़ सकती हूं, जब मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। और पिता जी? अगर वे राज़ी नहीं हुए, तब प्यार करने पर भी शादी नहीं होगी हमारी। और पढ़ाई की कल्पना ही छोड़ देनी पड़ेगी। मेरी कोई सहेली पढ़ने की नहीं सोचती। अगर अब वह कभी न आए? ए, ख़ुदा,' – इसे प्रकार के विचारों से मेरा सिर चकरा गया। अगले दिन भी मेरा यही हाल रहा। इसलिए जब क़ुन्दुज़ चाची ने कपड़े धोने में मदद के लिए मुझे बुला भेजा, तो मैं ख़ुशी-ख़ुशी राज़ी हो गयी। सोचा कि कम-से-कम मन बहल जाएगा।

वस्तुतः जब काम से निबटकर उनके यहां से लौट रही थी, तो मन काफ़ी हल्का हो चुका था। घर के पास पहुंची, तो फिर वही आ धमके। मैंने झट से चेहरा ढक लिया। उन्होंने हंसकर मेरी आंखों से जाकेट हटा दी।

हमने आंगन में प्रवेश किया। आहट सुनकर पिताजी घर से निकले।

काफ़ी देर हो चुकी थी। ख़ालताय अका ने रात हमारे यहां बिताने का फ़ैसला किया। मैंने बरामदे में पिता जी के पास उनके लिए बिस्तर बिछाया। मैं कमरे में सोती थी, और पिता जी बरामदे में।

आधी रात को मेरी नींद खुल गई। कोई आकर मेरे पास लेट गया। मैं घबरा गई। मेरी चीख़ को उसने मेरा मुंह अपने हाथ से बन्द करके रोक दिया।

'शोर मत मचाइये! पिता जी की नींद खुल जाएगी', उसने फुसफुसाकर कहा और बड़े ज़ोर के साथ मुझे अपने साथ सटा लिया। मेरी सांस फूले जा रही थी।

'यह आप क्या कर रहे हैं? निकाह के बिना ... पिताजी के आशीर्वाद के बिना...' मैं इतने धीमे स्वर में बोल रही थी कि ख़ुद अपनी आवाज़ मुझे नहीं सुनाई दे रही थी। बाद में वह मेरे सिर पर हाथ फेरकर मुझे यों प्यार करने लगे मानो मैं कोई छोटी बच्ची हूँ। पर मुझे तो मालूम था कि मैं सयानी हो चुकी हूँ। आगे बहुत कुछ होना था, मैं बहुत प्रसन्न थी। लगता था कि यह सब मैं सपने में देख रही हूँ। मैं इस डर से हिलना भी नहीं चाहती थी कि कहीं मेरे सपने टूट न जाएँ। पर हम दोनों सो नहीं रहे थे और मुझे धीमी आवाज़ सुनाई दे रही थी।

'सुबह पिताजी का आशीर्वाद लेंगे, निकाह भी पढ़वाएंगे, बाद में जब इन डकैतों का सफ़ाया कर लेंगे, तो सारे गांव को दावत भी देंगे। पिताजी न मानेंगे तो हम कहेंगे कि हम एक दूसरे को वचन दे चुके हैं। काम आसान हो जाएगा।'

कमबख़्त जवानी ... हम दोनों ही जवान थे। मैं सिसककर उनकी छाती से सट गई।

सुबह ... जिस सुबह की हम कल्पना कर रहे थे, उसे देखना हमारे भाग्य में नहीं लिखा था।

पौ फट रही थी, आसमान का रंग पीले रेगिस्तान का-सा हो गया। हम नहीं सो रहे थे। उसी समय गोलियों की आवाज सुनाई दी। फिर बराबर गोलीबारी होने लगी। मैंने डर के मारे अपना सिर कम्बल से ढक लिया। वह उठ खड़े हुए। कपड़े पहनने लगे।

'मैं जा रहा हूं,' उन्होंने कहा। 'लगता है कि ये गीदड़ फिर आ गए हैं।'

मैं रोने लगीः 'मुझे छोड़कर न जाइये! ख़ालताय अका, मुझे न छोड़िये। मेरा क्या होगा?'

'मैं तुम्हें छोड़नेवाला नहीं हूं, पगली, मैं जल्दी ही लौटकर आऊंगा।'

वह चले गये। मैं उनके पीछे-पीछे दरवाज़े तक गई। पिताजी ने सिर उठायाः

'क़न्दालत, तुम हो क्या? क्या कर रही हो इस समय, बिटिया?'

'कुछ नहीं, पिता जी! अभी जाकर सो जाती हूं।''

'रात के समय बाहर मत जाओ! न जाने फिर क्या हो गया? फिर से गोलीबारी। अल्लाह भले लोगों की मदद करे,' यह कहकर उन्होंने सिर तकिये पर टिका दिया।

गांव में बड़ा शोर मच गया। कहीं से लोगों की चीख़-पुकार सुनाई दे रही थी, तो कहीं से घोड़ों की हिनहिनाहट। कहीं आग लग गई थी, उसकी लपटों की रोशनी हमारे आंगन में आ रही थी। मैं और पिताजी जागते रहे। छुट-पुट गोलीबारी सुबह तक होती रही।

दिन भर धड़कते दिल से उनकी राह देखती रही। वह नहीं आये। रात को शांति रही। गोलीबारी नहीं हुई। पर मुझे ऐसा लग रहा था कि कल की गोलीबारी की सभी गोलियों ने मेरे हृदय को छलनी कर दिया है। दूसरे दिन, तीसरे दिन भी मैं उनके इंतज़ार में तड़पती रही। 'ए ख़ुदा, अब मेरा क्या होगा?'

एक महीना बीत गया। दो महीने ... पर उनका कोई अता-पता नहीं। फिर भी मुझे उनके लौटने की आशा लगी रही। मैं उनकी राह देखती बैठी रही। ख़ुदा से दुआएं करती रही। कभी-कभी पिताजी बोल उठतेः

'उस युवक का क्या हुआ, उसने आना बिल्कुल बन्द कर दिया। हमें भूल गया होगा? कोई बात नहीं, बासमाचियों की गोली से बचकर रहे, बस!'

ऐसी बातें मेरे हृदय को विदीर्ण कर देती थीं। पर मैं अपने मन की बात किसे बताती, अपनी वेदना किस के साथ बांटती?! पिताजी को बताती, पर मुझमें इतनी हिम्मत कहां थी?

कभी सोचती कि क्या उन्होंने मुझे धोखा दे दिया? पर विश्वास नहीं आता। कभी सोचती कि कहीं बासमाचियों ने उन्हें मार तो नहीं डाला? यह सोचकर ही ख़ून जम जाता। जी चाहता कि बाल नोच-नोचकर रोऊं। इतना रोऊं, इतना रोऊं कि पूरी की पूरी अपने आंसुओं में घुलकर बह जाऊं। मैं पीली पड़ गई, सूखकर कांटा हो गई। तीसरा माह चल रहा था, और मैं पगली उन्हीं के इंतज़ार में तड़पती रहती थी। पर उनकी कोई ख़बर नहीं आई। मुझे चक्कर आने लगे, जी मिचलाने लगा। कुछ खा नहीं सकती थी। खाना पकाते समय नाक बन्द कर लेती। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है? खड़िया बहुत अच्छी लगने लगी। जब कोई व्यापारी आता तो ढेर सारी खड़िया ख़रीदकर रख लेती। धीरे-धीरे समझ गई कि मुझ में क्या परिवर्तन हो रहा है। अपना पेट कसकर बांधने लगी ताकि किसी को कुछ मालूम न हो। पेड़ों से कूदकर देखा, मगर सब बेकार। कोने में दुबककर रोती रहती। यों बहुत दिन बीत गए। आख़िर मैंने उन्हें ढूंढ़ने का फ़ैसला किया। पिता जी से क़ुन्दुज़ चाची के यहां जाने के लिए इजाज़त ली। कहा कि उनसे टोपियों पर कशीदाकारी करना सीखना चाहती हूं। सिर पर जाकेट ओढ़कर अपने ख़यालों में डूबी घर से रवाना हो गई। रेत के टीलों से होकर नाक की सीध में चल पड़ी। कुछ घंटे बाद एक छोटी-सी नदी को पार किया और दुरवर्ती गांव पहुंच गयी। सुना था कि यहीं लाल सैनिकों का अड्डा है।

एक लाल सैनिक ने दूर से ही मुझे देखकर मेरी अगवानी की। बड़ा तहज़ीबदार आदमी निकला।

'आइये, बहिन जी! क्या मैं आपकी कोई ख़िदमत कर सकता हूं?'

पहले मैं डर गई। फिर हिम्मत बटोरकर पूछाः

'क्या ख़ालताय? अका यहां है?'

कौन सा ख़ालताय? इसी गांव का?'

'जी हां!'

'आप उनकी...'

'बहिन हूं। उनसे मिलने आई हूं।'

'अरे हां, याद आया वह तो ताशक़न्द में है।'

ताशक़न्द ... तो क्या लौटकर नहीं आएंगे?'

'पता नहीं। वह घायल है, उसे इलाज के लिए अस्पताल भेजा गया है।'

मैं रो पड़ी और फूट-फूटकर रोते हुए उल्टे पैर चल पड़ी। सैनिक ने मुझे बुलाया। पूछा कि आप रहती कहां हैं? शायद वह मेरी मदद करना चाहता था। मैंने कुछ नहीं कहा। चली गई। शाम की नमाज़ के वक़्त घर पहुंची। रात भर जागती रही। रात भर यही दुआ करती रही कि ख़ुदा मेरी जान ले ले। कुछ नहीं हुआ।

सबकी नज़र से बचकर रहने लगी। पिता जी के साथ भी बातें करने की इच्छा नहीं होती थी। जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, यह विचार पक्का होने लगा कि घर छोड़कर कहीं दूर चले जाना चाहिए। सोचा कि इसी प्रकार मैं पिता जी को अपमान से बचा सकूंगी।

मेरी एक ख़ाला बुख़ारा में रहती थीं। जब मैं कोई नौ बरस की थी, तो वह मुझे अपने साथ ले गई थीं। मैं एक साल तक उनके यहां रही थी। मैंने उन्हीं के पास जाने का फ़ैसला किया। मेरे दो कुर्ते और एक वास्केट थी। मैंने इन चीज़ों और एक नान को गठरी में बांधा, पुराने जूते पहने और जाकेट ओढ़कर रोते-रोते घर से निकली।

कुछ आगे बढ़ने पर पीछे मुड़कर देखती जाती। बेचारे पिता जी सब कुछ से बेख़बर कुएं के पास बैठे थे। उकड़ू बैठकर ज़मीन को टटोल रहे थे। शायद गिरे सिक्कों को ढूंढ़ रहे थे।

मेरे पैर आगे चलने से इनकार कर रहे थे, लेकिन न जाऊं तो हम दोनों के सिर पर बड़ी आफ़त आएगी। नहीं, मुझे जाना ही चाहिए। अपनी सारी शक्ति बटोरकर मैं आगे चल पड़ी।

जूते पैरों को काट रहे थे और दर्द दिल को। बड़ी मुश्किल से क़ोक़न्द शहर पहुंची। वहां किसी न किसी तरह रेलगाड़ी में घुसकर बुख़ारा के लिए रवाना हो गई। रास्ते में हर तरह के लोगों से पाला पड़ा। कोई छेड़छाड़ करता, कोई हंसी उड़ाता, तो कोई रहम करता। कोई रोटी का टुकड़ा देता, तो कोई कुछ और खाने की चीज़। आधे महीने में मैं ख़ाला के घर पहुंच गई। 'पिता जी चल बसे, पति भी मारे गए' यह कहकर मैं रो पड़ी। ख़ाला ने मुझे अपने सीने से लगा लिया, मुझे तसल्ली दी और कहाः 'अब चिंता न करो, सब कुछ ठीक हो जायेगा। मेरी तीन बेटियां हैं, चौथी–तुम होगी।' इस तरह मैं अपनी ख़ाला के साथ रहने लगी। कुछ महीने बाद उरिनजान पैदा हुआ। ओह ... नहीं अब आगे नहीं बोल सकती!" सिसकियां भरते हुए क़न्दालत ने तकिये से अपना चेहरा ढाँप लिया। मेरी भी आंखें भर आईं। अपने आंसू रोककर मैंने पूछाः

"तो क्या, इसके बाद आपकी शादी नहीं हुई?"

मुश्किल से अपनी सिसकियां रोककर क़न्दालत ने कहाः

"यह हमारे सौभाग्य की बात है कि शीघ्र ही बुख़ारा में भी सोवियत सत्ता आ गई। नहीं तो हम – मां-बेटे दोनों भूख और ग़रीबी से मर गए होते। हमारे मुहल्ले में सिलाई सहकारिता खुली। मैंने वहीं काम करना शुरू कर दिया। निरक्षरता निवारण कोर्स में शिक्षा पाई। फिर अपने बुख़ारा में, बाद में ताशक़न्द में शिक्षा जारी रखी। इसी तरह शिक्षा और काम में जी रमाकर शादी-ब्याह की सोची तक नहीं। इस पर तो ... उन जैसा कोई मिला ही नहीं। पर मैं पगली हूं, पगली, मुझे धोखा हुआ। मेरा ख़याल था कि वह ज़िन्दा नहीं है। पर वह ... आज मैंने उन्हें देखा। वही थे, वही!" क़न्दालत ने कहा और अपना सिर कंबल से ढक लिया।

मैं अपने ठट्ठे-मज़ाक़ के लिए पछताने लगी। मैंने क़न्दालत के सिर पर हाथ फेरा, उसे तसल्ली देने की कोशिश की:

''छोड़िये! अब घबराने की कोई बात नहीं। अगर वह नीच है, तो वह आपके सामने पानी भरने लायक़ भी नहीं। अगर नेक इनसान है तो फिर आपकी उनसे मुलाक़ात होगी और सब कुछ ठीक हो जाएगा। बड़ी मौज़ में रहेंगी। सबसे बड़ी बात तो यह कि वह मिल गये।''

''नहीं, नहीं,'' उसने कहा। ''आप मेरी बात किसी को न बताना!''

''बस रट लगा ली, 'किसी को नहीं' 'किसी को नहीं,' पर आपके कमाण्डर को तो बताना चाहिए?''

''आप क्या बकबक कर रही हैं। वह शादीशुदा होंगे, उनके बाल-बच्चे भी होंगे।''

''अच्छा, तो सबसे पहले मैं यह पता लगाऊंगी कि वह विवाहित है कि नहीं। यदि विवाहित नहीं है, तो मैं उसे सब कुछ याद दिला दूंगी।''

अगले ही दिन दोपहर के बाद मैं प्रांतीय पार्टी समिति में गई। मैं तत्काल पार्टी समिति के सचिव नियाज़ोव से मिलना चाहती थी। पर उनके सेक्रेटरी की आंख बचाकर तो जाना असंभव था। मुझसे हाथ मिलाकर वह इधर-उधर की बातें करने लगा। वहां सब लोगों से मेरी जान-पहचान थी, क्योंकि इलाक़ाई कोमसोमोल समिति की सचिव होने के नाते मुझे अक्सर यहां आना पड़ता था।

''मुझे साथी नियाज़ोव से मिलना है, कहकर मैंने झट से उनके कमरे में प्रवेश किया।

साथी नियाज़ोव ने सदा की तरह इस बार भी मेरा हार्दिक स्वागत किया।

''ओ, नई पीढ़ी! बड़ी ख़ुशी की बात है!'' उन्होंने उठकर मुझसे हाथ मिलाया। उनका अभिवादन करके मैं बैठ गई। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि अपनी बात कैसे शुरू करूँ।

''अच्छा, तो बताओ क्या काम है, बिटिया!'' नियाज़ोव की इस बात से मेरा हौसला बढ़ा और संभलकर मैं कहने लगी:

"सभी मतदान केन्द्रों में होकर आई हूं। निर्वाचक इतने सक्रिय हैं कि कोई जवाब नहीं। उम्मीदवार के बारे में सब कुछ जानना चाहते हैं। यहां तक कि साथी पुलातोव के परिवार के बारे में प्रश्न पूछते हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात भी नहीं है। आख़िर वे अपना प्रतिनिधि चुनने जा रहे हैं और उन्हें उसके बारे में सब कुछ मालूम होना चाहिए। पर किसी भी कार्यकर्ता को मालूम नहीं कि उम्मीदवार की पत्नी कहां काम करती है, कितने बच्चे हैं उनके, आदि, आदि ..."

मैं चुप हो गई, झेंप गई, मेरे गाल दहकने लगे मानों उन पर मिर्च लगी हो।

नियाज़ोव ने मुस्कराते हुए टकटकी बांधे मेरी आंखों में देखा।

"अरे बेटी, यह बात है ... अच्छा, अभी मालूम कर लेते हैं।"

उन्होंने चोंगा उठायाः

"यह आप हैं, साथी पुलातोव? नमस्ते! कैसे हैं? आज आप से मुलाक़ात नहीं हुई। इस बीच मुझे बराबर फ़ोन आ रहे हैं। लोग आपके बारे में पूछते हैं, आपसे मुलाक़ात आयोजित करने का अनुरोध करते हैं ... हां, आपके निर्वाचक आपकी जीवनी के कुछ ब्योरे जानना चाहते हैं। पूछते हैं कि आपकी पत्नी क्या काम करती है, कितने बच्चे हैं? ... हां, यह भी महत्व की बातें हैं," नियाज़ोव ने मुझ पर एक नज़र डाली और हंस दिये – "कौन पूछ रहा है? यहां एक युवती बैठी है। हमारी सक्रिय कार्यकर्त्री है, वही पूछ रही है।"

"मैं नहीं, निर्वाचक लोग इसमें रुचि रखते हैं," मैंने बौखलाकर कहा।

नियाज़ोव ने चोंगा रख दिया। मुझे आंखें उठाकर उनकी ओर देखने का साहस नहीं हुआ। फिर भी मैं यह अनुभव कर रही थी कि उनकी नेक आंखें मुझ पर टिकी हैं।

"तो जाओ! बताओ अपने प्रचारकों कोः उनकी पत्नी मारी गई और बाल-बच्चे नहीं है।"

उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करके मैं दरवाज़े की ओर चल दी।

"तो और कोई काम नहीं है क्या?" आश्चर्य के साथ नियाज़ोव ने पूछा।

"नहीं।" कहकर मैं चली गई।

उस दिन शाम को क़न्दालत और मेरे बीच अच्छी-खासी झड़प हुई।

"हां, आपको सब कुछ उसे लिखना होगा, सब कुछ।" मैंने आग्रह किया।

"हाय, ख़ुदा मेरी जान ले ले! मैं भी कैसी पागल हूं कि यह सब आपको बता दिया। अब लिखकर क्या करूंगी। तब मैं एक लड़की थी। रूप, यौवन था ... और अब बत्तीस बरस की औरत का वह क्या करेगा?"

"वह भी बीस साल का युवक नहीं है।"

"नहीं, मैं कुछ नहीं लिख सकती..."

मैंने मेज़ पर बैठकर ख़ुद कमांडर के नाम पत्र लिखना शुरू कर दिया। क़न्दालत मौन रही। केवल जब मैंने पत्र समाप्त कर लिया, वह कोहनी का सहारा लेकर कुछ उठी और बोली :

"मेरा पूरा नाम उन्हें नहीं मालूम है, इसलिए क़न्दालत ही लिखें, तो बेहतर होगा।" मैंने वही किया और ख़त लिफ़ाफ़े में बंद कर दिया।

हम होटल की ओर चल पड़े। सिनेमाघर के पास से गुज़र रहे थे, तो हमें उरिनजान मिल गया। वह तकनीकी कालेज में पढ़ता था और वहीं छात्रावास में रहता था। वह भी हमारे साथ चल पड़ा। पूरे हफ़्ते वह अपनी मां से नहीं मिला था।

होटल में हमें बताया गया कि साथी पुलातोव पार्टी की प्रांतीय समिति में गए हुए हैं। क़न्दालत अब और कहीं नहीं जाना चाहती थी, पर मैंने उसे साथ चलने को मजबूर किया। जब हम पार्टी की प्रांतीय समिति की इमारत के पास पहुंचे, तो मैं स्वयं घबराने लगी। मेरी इन कोशिशों का न जाने क्या अंत होगा। सेक्रेटरी से मैंने पहले नियाज़ोव के बारे में पूछा। उत्तर मिला कि वह कहीं बाहर गये हुए हैं। तब मैंने पूछा

कि पुलातोव कहां है? नियाज़ोव के कमरे की ओर संकेत करते हुए सेक्रेटरी ने कहाः

"यही हैं। मगर काम में व्यस्त हैं। अख़बार के लिए लेख लिख रहे हैं।" मैंने चोंगा उठाया।

"यह आप क्या कर रही हैं?!" सेक्रेटरी ने ग़ुस्से में आकर कहा। क़न्दालत भी कहने लगी कि चलिये, बाद में आएंगे।

पर मैं राज़ी नहीं हुई।

"हैलो"! फ़ोन में सुनाई दिया।

"साथी पुलातोव?"

"हां।"

"यहां एक छात्र आपके नाम एक फ़ौरी पत्र लाया है। आप ही के हाथ में देना चाहता है।"

"कह दो अन्दर आ जाए।"

लिफ़ाफ़ा निकालकर मैंने उसे उरिनजान के हाथ में थमा दिया। हैरान होकर वह कभी लिफ़ाफ़े को, तो कभी अपनी मां को देखता रहा। मैंने किवाड़ खोलकर उसे कमरे में धकेल दिया।

क़न्दालत दौड़कर बाहर निकल गई। मैं भी उसके पीछे गई, ताकि वह कहीं चली न जाय। कुछ ही क्षण बाद में लौट आई। दरवाज़े की दरार से अन्दर झांकने लगी। उरिनजान दीवार के पास खड़ा था। पुलातोव पत्र पढ़ रहे थे। रह-रहकर वह उरिनजान पर नज़र डालते जा रहे थे। पूरा पत्र पढ़कर उन्होंने उसे एक तरफ़ रखा और बड़े ध्यान के साथ युवक को निहारने लगे।

मेरे मन में फिर यह ख़याल आया कि यदि वह सब कुछ नकारने लगे, कहने लगे कि उन्हें ब्लैकमेल किया जा रहा है, तब क्या होगा? तब तो क़न्दालत मर ही जाएगी।

मैं फिर कमरे के अन्दर झांकने लगी। यह वहां बैठे सेक्रेटरी की बरदाश्त से बाहर था। मेज़ पर पेंसिल पटककर क्रोधित होकर वह चला गया।

"काई बात नहीं," मैंने मन-ही-मन में सोचा। "कल ख़ुद सिनेमा

देखने के लिए बुलायेगा।"

इतने में पुलातोव ने पूछाः

"क्या तुम अकेले आए हो?"

"नहीं, माताजी और नसीबा आपा के साथ..."

आराम-कुर्सी को ज़ोर से सरकाकर पुलातोव उठ खड़े हुए। मैं दौड़कर बाहर निकली और ख़ुशी से क़न्दालत के गले लिपटकर बोलीः

"चलिये, जल्दी से चलिये!" क़न्दालत के चेहरे का रंग उड़ा हुआ था।

"चलिये, जल्दी चलिये। हाय, यह कैसा दिल है आपका?!" मैंने उसे दरवाज़े की ओर धकेला।

मैं अकेली सड़क पर टहलने लगी। घबराहट में अपने नाख़ून कुतर रही थी। मैं चुपके से खिड़की में झांकना चाहती थी, पर समझ में नहीं आ रहा था कैसे करूं। दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। "न जाने अब क्या होगा?! यदि अब वह रोती हुई निकली और यहां से भाग गयी तो ... तब तो वह आजीवन मेरा मुंह नहीं देखना चाहेगी ..." मुझे लगा कि जब उरिनजान बाहर आया, तब तक कम-से-कम एक साल तो बीत गया होगा। वह बहुत उत्तेजित था। मैं दौड़कर उसके पास पहुंचीः

"क्या हुआ?"

"आपा, मेरे अब्बा मिल गए," उसने कहा।

मेरी जान में जान आ गई। बड़े गर्व के साथ मैंने कमरे में प्रवेश किया।

क़न्दालत सोफ़े पर बैठी रूमाल से अपने आंसू पोंछ रही थीं। पुलातोव पानी का एक गिलास लेकर उसके पास खड़े थे। लाल कमांडर की आंखें भी लाल हो गई थीं। मुझे देखकर उन्होंने गिलास रख दिया।

"बहुत, बहुत शुक्रिया, बहन जी!" और उन्होंने मेरे माथे को पिता की तरह चूम लिया।

नज़ीर सफ़ारोव

(जन्म – 1905-1985)

नज़ीर सफ़ारोव फ़ीचर लेखक और गद्यकार हैं। सन् 20 के दशक के मध्य में उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया और "क़िज़िल उज़्बेकिस्तान" ("लाल उज़्बेकिस्तान") व "इश्ची" ("मज़दूर") नामक समाचारपत्रों में सम्पादक-मण्डल के प्रकाशन सचिव के पद पर कार्य किया। जर्मन फ़ासिस्टों के विरुद्ध सोवियत जनगण के महान् देशभक्तिपूर्ण युद्ध के आरम्भ से ही सोवियत सेना में राजनीतिक कार्यकर्ता तथा "सोवेत जंगचिसी" ("सोवियत सैनिक") समाचारपत्र के युद्ध-संवाददाता रहे। उनकी पहली पुस्तक सन् 1931 में प्रकाशित हुई। युद्धोत्तर काल में उन्होंने "पूरब का प्रभात", "ज़िंदगी का स्कूल", "किसी का दुःख, किसी का सुख", "बहादुर लुकाश" नामक नाटकों की रचना की, कृषि क्षेत्र के अग्रणी कामगारों के बारे में लेख-संग्रह प्रकाशित किये। नज़ीर सफ़ारोव सुप्रसिद्ध उपन्यासों – "लानतों का दिन और उम्मीदों का दिन" व "नौरोज़" के लेखक हैं। साहित्य के विकास में उनकी सेवाओं के लिए उन्हें उज़्बेकिस्तान के जन-लेखक की उपाधि प्रदान की गयी है।

सच्चा सुख

आठ साल बीत चुके थे और इतने लंबे अरसे में किसी ने भी अहमद अली के अचानक सामूहिक फ़ार्म से ग़ायब हो जाने और उसी तरह अचानक लौट आने का एक बार भी ज़िक्र नहीं किया था। वह ख़ुद कभी-कभी इस बात को याद करता – आदमी की याददाश्त इसीलिए तो होती है कि वह याद करे – उसके चेहरे पर शर्म की लाली फैल जाती।

बुजुर्गों का कहना है: दुनिया में कुछ भी अकारण नहीं होता। अहमद अली का भी ऐसा करने का कारण था। उसके घनिष्ठ मित्रों ने कुछ अंदाज़ लगा लिया था, लेकिन मुख्य कारण वे नहीं जानते थे। जबकि मुख्य कारण उस गीत में खोजना चाहिए था, जिसे वह अकसर गाया करता था और जिसका भावार्थ कुछ इस प्रकार था: "इश्क़ बला ऐसी, जिस पर न पड़ी, वह क्या समझेगा आशिक़ को..."

वह यह गीत क्यों गाता था? इसका भी एक कारण था। वह लड़की, जिससे अहमद अली को प्यार हो गया था, एक साल हुए अपने माँ-बाप के साथ सिर-दरिया जा चुकी थी। गयी वह अचानक नहीं थी। वहाँ परती ज़मीन को कृषि योग्य बनाया जा रहा था और बहुत से लोगों ने वहाँ जाकर बसने, बस्तियाँ बसाने और कपास की खेती करने की इच्छा प्रकट की थी। अहमद अली छकड़े पर सामान लादकर उन्हीं की तरह नयी जगह के लिए रवाना होने को तैयार था। लेकिन इस तरह का क़दम उठाने के लिए बस एक ही चीज़, बहुत ही मामूली-सी बात की कसर रह गयी थी – प्रिया की इच्छा।

अहमद अली अकेले में अपने साथ स्पष्टवादी रहता था। वह कहताः "शहरीनिसा ने आख़िरी दिन तक – वह शहरीनिसा को ही प्यार करता था – उसे अपने दिल की बात नहीं बतायी थी। उसके दिल में मेरे लिए ज़रा भी प्यार अगर होता, मैं सब कुछ करने के लिए तैयार हो जाता। कुदाल उठाता और उसके पीछे-पीछे सिर-दरिया तक पहुंच जाता। लेकिन वह चुप रही। मुस्कराती रही और चुप रही। उस मुस्कान का क्या मतलब था? क्या कोई सिर्फ़ लड़की की एक मुस्कान पर भरोसा करके सब छोड़कर दुनिया के दूसरे छोर पर जा सकता है? नहीं, वह इतना नासमझ नहीं है। लेकिन अगर मुस्कान में कुछ और – प्यार ही छिपा हो तब? तब तो मुझे तुरंत सिर-दरिया जाकर शहरीनिसा से मेरी जीवन-संगिनी बनने का प्रस्ताव करना चाहिए! लेकिन तभी शंका जाग उठीः ठीक है, मैं उससे प्यार का इज़हार करता हूँ, पर अगर वह उसे ठुकरा दें तब? तब मुझे यह दुनिया कैसी लगेगी? पिस्ते के छिलके जितनी छोटी। बेचारे अहमद अली को उसमें रहने लायक़ जगह नहीं मिलेगी। फिर मैं अपने गाँव लौटने पर क्या कहूँगा? कुछ नहीं। ख़राब से ख़राब लड़की भी मुझ पर हंसेगीः "एक मुस्कान की ख़ातिर सिर-दरिया जा पहुँचा!"

हाँ, अहमद अली के हालात काफ़ी उलझे हुए थेः वह शहरीनिसा को भुला भी नहीं सकता था और उसके पास जाने का फ़ैसला भी नहीं कर सकता था। लेकिन जीवन ऐसा होता है कि आदमी हमेशा कोई-न-कोई रास्ता खोज ही लेता है। अहमद अली ने भी रास्ता खोज लिया। उसने अपने आपसे कहाः "सारे गांव को मेरे प्यार के बारे में जानने की क्या ज़रूरत है? वैसे भी लोगों को सारी बातें जानने की क्या ज़रूरत है? अगर मेरी क़िस्मत अच्छी निकली – दोस्तों को शादी के बारे में बता दूंगा, नहीं निकली - कह दूँगा कि शादी हुई ही नहीं। कहूंगा – बड़े भाई से मिलने गया था। बुज़ुर्ग ठीक ही तो सीख देते हैं : घर की बात घर ही में रखनी चाहिए।"

यह सोचकर अहमद अली अपना गाँव छोड़कर अपनी क़िस्मत आज़माने सिर-दरिया के लिए रवाना हो गया।

उसको गये हुए कितना समय गुज़रा, थोड़ा या बहुत, किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसकी फ़ुरसत भी किसे होती, जब सब अपने-अपने कामों में व्यस्त रहते हों। लेकिन हम फिर भी उसके साथ न्याय करेंगे और युवा प्रेमी के सफ़र में लगे समय को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बतायेंगे। बालचंद्र आकाश में निकलने भी न पाया था कि अहमद अली अपने गांव लौट आया। लौटकर उसने फिर से अपना उदासी-भरा गीत गाना शुरू कर दिया: "इश्क़ बला ऐसी, जिस पर न पड़ी, वह क्या समझेगा आशिक़ को।" अब वह उसे पहले से भी ज़्यादा दुःखी स्वर में गाता और हर शब्द के बाद ठण्डी साँस लेता।

लौटकर आये अहमद अली को देखकर पड़ोसियों ने क्या सोचा, मालूम नहीं। हर हालत में उन्हें आश्चर्य अवश्य हुआ। और आश्चर्य कुतूहल को जन्म देता है। इसीलिए पहले ही रविवार को अहमद अली के हमउम्र ट्रैक्टर-चालक मन्नान सालियेव ने उसे पुलाव पर बुलाया। वह खाने के दौरान अपने दोस्त का राज़ मालूम करना चाहता था, ख़ुशी का कारण हो, तो ख़ुशी मनाना चाहता था, न हो, तो उसके साथ सहानुभूति दिखाना चाहता था।

कुतूहल का शिकार अकेला मन्नान ही नहीं हुआ था। उसके घर में चरवाहा उस्मानक़ुल, उपटोली-नायक अतामुराद और लेखाकार शीरीनबाय भी इकट्ठा हुए थे।

मेहमान को ख़ुशबूदार तेज़ चाय की प्याली देते हुए मेज़बान ने कहा:

"तुमने सिर-दरिया में क्या खाया, क्या पिया, यह बताने की ज़रूरत नहीं, अपने तक ही रखो। पर वहाँ तुमने क्या देखा, क्या महसूस किया हमें बताओ। हम बड़ी ख़ुशी से सुनेंगे।"

अच्छी बात सुनाने में आनंद आता है और बुरी सुनाते दिल दुखता है। अहमद अली के पास सुनाने के लिए कोई अच्छी बात नहीं थी। फिर भी उसने कहा:

"मैंने क्या देखा? अहा! सिर-दरिया जन्नत का टुकड़ा है। सामूहिक फ़ार्म भी अग्रणी है और लोग भी बढ़िया हैं ..." उसने ठण्डी सांस ली और

निराशापूर्ण स्वर में बोलाः "वहाँ तो अठारह बरस की लड़कियाँ उपटोली-नायक हैं और बढ़िया फ़सलें पैदा करती हैं ..."

"उहूँ!..." मन्नान ने अप्रसन्नता प्रकट की। "तुम कहीं सिर-दरिया के उस पार की हर चीज़ की बढ़ा-चढ़ाकर तारीफ़ तो नहीं कर रहे हो। हमारा सामूहिक फ़ार्म भी किसी से कम नहीं है। तुम्हारे दोस्तों में जाने-माने कपास-उत्पादक हैं।"

"हाँ," उपटोली-नायक अतामुराद ने मन्नान का समर्थन किया। "हम सोच सकते हैं कि तुम बड़े भाई से नहीं, छोटी बहन से मिलने गये थे।"

"जो उसके हैं ही नहीं..." चरवाहा उस्मानक़ुल व्यंग्यपूर्वक मुस्कराया। अहमद अली सकपका गयाः

"मैं वही बता रहा हूँ, जो मैंने देखा। सामूहिक फ़ार्म समृद्ध है और लड़कियाँ सचमुच होशियारी से काम करती हैं।"

"होशियारी आदमी की उम्र पर नहीं, दिमाग़ पर निर्भर करती है," उस्मानक़ुल ने टिप्पणी की।

लेखाकार शीरीनबाय ने अपने ही ढंग से तर्क कियाः

"सब कुछ लड़कियों पर निर्भर नहीं करता। सामूहिक फ़ार्म में अकेला आदमी सारी समस्याएँ हल नहीं कर सकता। इस तरह का काम तो ताक़तवर से ताक़तवर पहलवान के भी बस का नहीं होता। लोगों ने सामूहिक फ़ार्म को अपनी लगन से मज़बूत बनाया है। और इसमें मितव्ययिता की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं रही है।" शीरिनबाय ने उंगली उठाकर संकेत दिया कि सिर-दरियावालों की सफलता में लेखा विभाग का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। एक-एक कोपेक का हिसाब रखा जाता है, और यह भी काफ़ी मायने रखता है!"

"कुछ भी हो," अहमद अली ने सहमति व्यक्त की, "लेकिन उनका सामूहिक फ़ार्म समृद्ध है और फ़सलें ज़ोरदार होती हैं।"

"हाँ, हाँ" मन्नान ने हाथ हिलाया। "दूर के ढोल हमेशा सुहावने लगते हैं..."

एक वर्ष और बीत गया। अहमद अली अपना गीत गाता और हर बार "इश्क़ बला ऐसी ..." के बाद ठण्डी सांसें लेता। लेकिन वह केवल गीत ही नहीं गाता रहा, मेहनत भी करता रहा। वह उपटोली-नायक बन गया और उसने फ़सल भी अच्छी पैदा की। कम-से-कम उसके सामूहिक फ़ार्म में इतनी कपास विरले ही होती थी। फिर भी सफलता उसे उदासी से मुक्ति न दिला सकी। जब क़ैराग़च* की पत्तियाँ झड़ गयीं और पहाड़ों में पहला हिमपात हुआ, युवक का गीत अत्यधिक दुख-भरा हो उठा। उसके बाद अहमद अली ग़ायब हो गया, जाड़े के डर से उड़न-छू हुए लक़लक़ की तरह।

अहमद अली काफ़ी अरसे तक परदेस में भटकता रहा। बालचंद्र के निकलने के साथ वह फिर जिज़ाक लौट आया, होंठों पर अपना वही गीत लिये। लेकिन उसका गीत अब घातक रूप से घायल आदमी की कराहों जैसा लगता था। दोस्तों ने फिर अहमद अली को खाने पर बुलाया। इस बार पुलाव लेखाकार शीरीनबाय ने पकाया।

"हाँ, तो तुम्हारे दोस्त तुम्हारा क़िस्सा सुनने को बेताब हैं," शीरीनबाय ने कहा। "हमें बताओ, तुमने सिर-दरिया के उस पार क्या नयी बातें देखीं?"

"मैंने क्या देखा?" अहमद अली ने हिचकिचाकर पूछा। "कुछ नहीं देखा..."

"कैसे?!" मन्नान को आश्चर्य हुआ। "क्या तेज़ हवाओं से तुम्हारी आंखें मुंद गयी थीं?"

"लोग तो धूल की आंधी में भी कुछ-न-कुछ देख लेते हैं," चतुर उस्मानक़ुल ने टिप्पणी की। "जब कि तुम वहाँ शायद शांत मौसम में गये थे।"

सब अहमद अली की बात सुनने का इंतज़ार कर रहे थे, अंत में उसने कहा:

"लड़कियां..." युवक के होंठ कांप रहे थे। "वहाँ उन्नीस बरस की लड़कियाँ टोली-नायक हैं..."

---

* क़ैराग़च— सोवियत संघ के दक्षिणी इलाक़ों में पाये जानेवाले एल्म की एक क़िस्म।

"सुनो, सुनो!" अतामुराद ने उसे टोका। "पहले तुम कहते थे कि अठारह बरस की लड़कियां उपटोली-नायक हैं, और अब मालूम पड़ता है कि उन्नीस साल की भी हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठी रहती हैं। बीस साल की लड़कियों के लिए कौन सा काम बचा है?"

चतुर उस्मानक़ुल ने कटाक्ष किया:

"वे सामूहिक फ़ार्मों की अध्यक्ष चुन ली जायेंगी।"

अहमद अली को छोड़कर सब हंस पड़े। वह घबराकर बोला:

"हो सकता है ... वह समझदार लड़की है।"

"लड़की, लड़की," शीरीनबाय बड़बड़ा उठा और उसने तश्तरी में चर्बी में फूले चावल के सुनहले दाने डाल दिये। "लगता है जैसे सिर-दरिया के उस पार सिर्फ़ लड़कियाँ ही रहती हैं। और तुम्हारा भाई तुरसून कहाँ है?"

अहमद अली ने कंधे उचका दिये।

"तो क्या तुम अपने भाई से भी नहीं मिले?" अतामुराद आश्चर्यचकित रह गया। "अरे, इसकी तो आंखें ही जाती रहीं, दोस्तो!"

"नहीं," उस्मानक़ुल ने मेहमानों को आँख मारी। "आंखें तो सही-सलामत हैं, लेकिन शायद दिल यह सचमुच खो बैठा है।"

अहमद अली का सबसे निकट साथी मन्नान चिंतित हो उठा:

"अगर आदमी दिल अपने गांव में खो दे, तो उसे ढूंढ़ निकाला जा सकता है। लेकिन सिर-दरिया के उस पार खोये को कैसे ढूँढ़ा जा सकता है? वहाँ तक पहुँचने में ही एक हफ़्ता लग जाता है।"

मेहमान पुलाव खाते हुए शीरीनबाय की तारीफ़ करते रहे, तारीफ़ अहमद अली भी कर रहा था, हालांकि उसने मुट्ठी भर पुलाव भी नहीं खाया था।

"आदमी बिना दिल के नहीं जी सकता," मन्नान ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा! "आज यह खा नहीं रहा है, कल सांस लेना बंद कर देगा। दोस्त की मदद कैसे करें?"

"ओह, मेरी कोई मदद नहीं कर सकता," अहमद अली ने निराशापूर्ण स्वर में कहा। "उड़ती चिड़िया को पकड़ने के लिए आदमी के पंख होने

चाहिए। और मेरे वे निकले ही नहीं हैं। हाँ, अगर अध्यक्ष अभागे अहमद अली को टोली-नायक बना दे, तब..."

यह सुनते ही गले में पुलाव अटकने से सबको उच्छू आ गयी, जब कि शीरीनबाय ज़ोर से खांसने लगा।

"ख़ूब दूर की सोची!" उसने काफ़ी देर खांसने के बाद कहा। "तुम्हें तो सीधे अध्यक्ष बनने की सोचनी चाहिए। अगले साल तो बीस साल की लड़कियाँ ज़रूर ही सामूहिक फ़ार्मों की अध्यक्ष बन जायेंगी। फिर पीछे रह जाओगे..."

अहमद अली ने सिर झुका लिया।

"मेरी क़िस्मत ही ख़राब है..." उसे अपना सदा का गीत गाने की इच्छा हुई, पर दुतार पास में नहीं था, जिसके कोमल तार ही प्रेमी की भावनाओं की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य रखते हैं। "लेकिन मेरे पंख निकलेंगे, ज़रूर निकलेंगे," अहमद अली ने कहा। "मैं ज़रूर उड़ूंगा..."

एक साल और बीत गया। अहमद अली ने ज़िले में सबसे ज़ोरदार फ़सल के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर डाला। और कपास खलियान में पहुंच गयी – रोओं जैसी मुलायम, बर्फ़-सी सफ़ेद!

"अब तो तुम्हें ज़रूर टोली-नायक बना दिया जायेगा," अतामुराद ने कहा। तुम्हारे पंख निकल आये।"

"तुम्हें पूरा विश्वास है?" अहमद अली ने छिपी आशा के साथ पूछा।

"पूरा।"

सब ख़ुशियाँ मना रहे थे, अहमद अली को बधाइयाँ दे रहे थे। लेकिन वह अपनी विजय का पूरा आनंद नहीं ले पाया। जाड़े की हवाएँ चलनी शुरू हुई नहीं कि वह फिर कहीं चल पड़ा।

इस बार अहमद अली जल्दी लौट आया। एक हफ़्ता भी नहीं बीतने पाया। अगर हम कहें कि वह अपने गांव उदास लौटा, तो इसका मतलब होगा पाठक को तसल्ली दिलाना, उससे सच्चाई छिपाना ... वह निराशाग्रस्त था। उसका चेहरा काला पड़ गया था, आंखें सूज गयी थीं। अब वह अपना गीत नहीं गाता था। केवल ठण्डी सांसें लेता था और आँसू बहाता था।

"बाप रे!" मन्नान कह उठा। "लगता है वह घड़ी आ गयी है, जब अहमद अली सांस लेना बंद करनेवाला है। "क्या हुआ, दोस्त?"

"आह," अहमद अली ने आह भरी। "वहाँ बीस बरस की ..."

"जानता हूँ, जानता हूँ," मन्नान ने उसे टोक दिया। "बीस बरस की लड़कियों को अध्यक्ष चुन लिया गया है।"

"न ऽऽ हीं।"

"वे श्रम-वीर हो गयी हैं?"

"न ऽऽ हीं।"

"तो फिर?" मन्नान ने हाथ हिलाये।

"वे शादियाँ कर रही हैं ..."

मन्नान कितना ही कठोर क्यों न था, पर मित्र के उत्तर से वह भी विचलित हो उठाः

"शादियाँ कर रही हैं?! पर तुम्हारा क्या हुआ?"

"मैं ख़ुद भी अपने से यही सवाल करता हूँ – मेरा क्या होगा?"

"शादी की तारीख़ तय हो गयी है?" मन्नान ने जिज्ञासा दिखायी।

"अभी नहीं। वैसे लड़के ने पैग़ाम भिजवा दिया है।"

"वह कौन है?"

"ज़िले का कृषिशास्त्री।"

"सब समझ गया।"

"क्या समझ गये?" अहमद अली ने दुःखी स्वर में पूछा। "इश्क़ बला ऐसी, जिस पर न पड़ी, वह क्या समझेगा आशिक़ को..."

"हूँ! मैं सब समझ गया। सफ़र की तैयारी करो।"

जिज़ाक की पहाड़ियों में अभी मौसम का प्रथम हिमपात होने भी नहीं पाया था, क़ैराग़च भी हरित परिधान ओढ़े खड़े थे और अभी तक रुके हुए प्रवासी पक्षी भी गाँव के आंगनों में कलरव कर रहे थे कि ट्रैक्टरचालक मन्नान, चरवाहा उस्मानक़ुल, उपटोली-नायक अतामुराद और लेखाकार शीरीनबाय अभागे अहमद अली को अपने साथ लेकर सिर-दरिया रवाना हो गये ...

वे लौटे तो छः थे। छठी साथिन थी बीसवर्षीया शहरीनिसा – अहमद अली की पत्नी।

अब वह अपना गीत नहीं गाता था, बल्कि मुस्कराकर सबको दावत में शरीक होने को कहता था।

"अहमद अली को आख़िर सुख मिल ही गया," मन्नान ने कहा।

"वह भी एक नहीं," शीरीनबाय ने सदा की तरह तर्कपूर्वक कहा। "एक तो यह, कि उसने शादी उस लड़की से की जिससे वह प्यार करता था..." लेखाकार ने अंगूठा मोड़ा। "दूसरे, लड़की ख़ूबसूरत है ..." उसने तर्जनी मोड़ी। तीसरे – होशियार है," वह तीन उंगलियाँ हथेली की तरफ़ मोड़ चुका था। "चौथे – मेहनती है ..." अब अनामिका की बारी थी। पांचवे ..."

दोस्तों की नज़रें शीरीनबाय की कानी उंगली पर टिकी थीं। वे समझ नहीं पा रहे थे कि अहमद अली के सुख में और क्या जोड़ा जा सकता है जो वैसे ही बहुत अधिक था।

फिर भी मालूम पड़ा कि अभी सारे सुख नहीं गिनाये गये हैं। लेखाकार ने कानी उंगली भी मोड़ी:

"अहमद अली ख़ुद भी जिज़ाक का मेहनती और इज़्ज़तदार आदमी हो गया है ..."

इससे सहमत न हो पाना असंभव था और सबने स्वीकृति में सिर हिला दिये।

शीरीनबाय ने मुट्ठी कसकर विचारमग्न मुद्रा में कहा:

"और यह मालूम नहीं कि इनमें से कौन सा सुख इनसान के लिए सच्चा सुख है..."

और शीरीनबाय ने अपने सवाल का जवाब दिये बिना ही हाथ जेब में डाल लिया।

मित्र उसकी ओर देख रहे थे और मौन अपने-अपने हाथों की उंगलियों पर सुखों को गिन रहे थे, लेकिन निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि उनमें से किसे सच्चा सुख मानें। सभी सुख अच्छे थे। लेकिन शायद उनमें से एक – सच्चा सुख था।

शोहरत

(जन्म – 1918-1993)

शोहरत कवि व गद्यकार हैं। वह ताशक़न्द शिक्षण विद्यालय के साहित्य संकाय के स्नातक हैं। वह महान् देशभक्तिपूर्ण युद्ध में भाग ले चुके हैं। उनकी काव्य रचनाएं सन् 1935 से प्रकाशित हो रही है। शोहरत बीस से ऊपर कविता, गाथा, काव्य व कहानी-संग्रहों की रचना कर चुके हैं। पिछले कुछ अरसे से वह उपन्यास लिखने में सक्रिय हैं। उनके उपन्यासों – "सिपाहियों की ज़िंदगी", "सोने पर ज़ंग नहीं लगता", "जन्नत की तलाश में" का अनुवाद सोवियत संघ की अनेक भाषाओं में किया जा चुका है।

फटकार

खिन्न और बुरी तरह उत्तेजित हूरी चाची पति के दहलीज़ पार करते ही उस पर बरस पड़ीः

"आप क्या बिलकुल ही सठिया गये हैं? न शर्म है, न हया! आप क्या बेटी को सारी उम्र कुआंरी बिठाये रखना चाहते हैं? अधेड़ उम्र के आदमी का सारे गांव के सामने किसी के साथ तू-तू मैं-मैं करना अच्छा लगता है? हाय, अब लोग क्या कहेंगे?"

रुस्तम अता को सारा मामला तुरंत समझ में आ गया। उन्हें और किसी तरह की बात सुनने की उम्मीद ही न थी। शांति एवं धैर्यपूर्वक पत्नी की बात सुनकर वृद्ध ने धीरे से कहाः

"क्या कहेंगे? कहेंगे – रुस्तम अता ने बिलकुल ठीक किया। इसके अलावा और कुछ नहीं।"

"बिलकुल नहीं, देख लेना! कहेंगे – बाल पक गये, पर अक़्ल ज़रा भी नहीं आयी। मुंह पर तो कोई कुछ नहीं कहेगा, पर पीठ पीछे आपका मज़ाक़ उड़ायेंगे।"

"पीठ पीछे डरपोक बातें बनाते हैं, ईमानदार सच्ची बात मुंह पर मारता है। फिर किसी तरह की अफ़वाह नहीं है, तुम क्यों शोर मचा रही हो?"

"अफ़वाहें नहीं फैल रही है?! जो नहीं सुनना चाहता, उसे कुछ सुनाई नहीं देता है..."

"उफ!" वृद्ध ने खीझकर ठंडी सांस ली। "अपनी इज़्ज़त का ख़याल रखनेवाला आदमी कभी बदख़्वाहों की बकवास की परवाह नहीं करता। यह बात गांठ बांध लो!... मियां काम से थका-हारा, भूखा लौटा है। और बीवी है कि दस्तरख़ान लगाने के बजाय उस पर बरस पड़ी। कोई ऐसा करता है?"

रुस्तम अता ने काम के कपड़े उतारकर उनकी धूल झाड़ी और उन्हें ओसारे के खंभे में गड़ी कील पर टांग दिया।

"अहा, तो आपको भूख भी लगी है?" हूरी चाची ने व्यंग्य किया। "खेत में क्यों नहीं खा लिया? जिसने आपको झगड़ा करने के लिए भड़काया, वही आपको पुलाव भी खिला सकता था। मैं अच्छी तरह जानती हूं उन्हें! वे हमारे दुश्मन हैं। जो मीरसईदजान पर दांत गड़ाये बैठे थे, उनकी उम्मीदों पर पानी फिर गया। यह उन्हीं की करतूत है, मैं धोखा नहीं खा सकती! आप तो उनकी बातें मुँह फाड़कर सुनते रहते हैं? ऐसे शरीफ़ लड़के की बेइज़्ज़ती कर दी। वह तो बिलकुल गऊ है! हाय अल्लाह, अब मैं लोगों से आंख कैसे मिला सकूंगी? हाय, मैं क्यों ऐसी अभागन हूं? सारी दुनिया में बदनामी हो गयी, बेइज़्ज़ती हो गयी! अगर शादी नहीं हुई तो? आप कौन सा मुंह लेकर लोगों के सामने जायेंगे?"

वृद्धा का दुबला-पतला चेहरा क्रोध से विकृत हो रहा था, सूखे हाथ कांप रहे थे।

रुस्तम अता की भौहें सिकुड़ गयीं, उन्होंने कांखते हुए, घिस-पिटकर भूरा पड़ा, पैबंद लगा बूट पैर से उतार दिया।

"शादी नहीं होगी?!" उन्होंने गुस्से में कहा। "न हो। अगर यह लड़का मामूली-सी बात पर होनेवाली दुल्हन को ठुकरा सकता है, तो वह भाड़ में जाये। नहीं चाहिए मुझे ऐसा दामाद। मैं तो उसे संजीदा, समझदार नौजवान मानता था।"

"तो क्या आपके ख़याल में वह ऐसा नहीं है?"

"अगर इसका बुरा मान गया है, तो हरगिज़ ऐसा नहीं है!" रुस्तम अता ने तीखे स्वर में कहा। "अगर वह असली किसान है, ईमानदार मेहनतकश है, तो उसे मेरी सीख पर नाराज़ नहीं होना चाहिए। बल्कि

मेरा शुक्रिया अदा करना चाहिए।''

''शुक्रिया?!'' नाटी, फुर्तीली हूरी चाची अपने पति पर वैसे ही पिल पड़ी जैसे कोई मरखनी मुर्ग़ी सीधे-सादे कुत्ते पर झपट पड़ती है। ''आपने बुख़ारा के पुराने बटमार की तरह उसके छकड़े का पीछा करके उसका रास्ता रोक लिया, हाथ नचा-नचाकर बेचारे को गालीयां दीं, और इसके लिए वह आपका शुक्रिया अदा करे?! बड़े आये सीख देनेवाले!''

''और तुमने यह अपने कानों से सुना?'' रुस्तम अता से रहा न गया और वह हंस पड़े।

''हां, सुना!'' हूरी चाची चीख़ उठीं। ''और नहीं भी सुना, तो भी मैं जानती हूं आप कैसे हैं। गांव में सबसे ज़्यादा गला फाड़-फाड़कर चिल्लानेवाले बुड्ढे। और गला भी तो आपका तीन आदमियों के बराबर है। हाय! हाय! आप क्यों हर राह चलते में मीन-मेख निकालते रहते हैं? क्या सामूहिक फ़ार्म में ग़लती करनेवालों को सही राह दिखानेवाला आपके सिवा और कोई नहीं है? आपने ऐसे आदमी को फटकारा, जो एक-दो दिन में आपकी बेटी से शादी करने जा रहा है ... आपकी जगह मैं होती, तो शर्म से मर जाती! पर आपके चेहरे पर तो शिकन भी नहीं आयी।''

''शिकन क्यों आये? जिसने ओखली में सिर दिया, उसे मूसल से क्या डरना। जहां तक मीरसईद का सवाल है ... मैं उसे जबरन तो दामाद बनाने जा नहीं रहा हूं। नहीं चाहता, न सही। मेरी बला से।''

''लेकिन हमारी कमीला पर क्या गुज़रेगी? लड़का-लड़की एक दूसरे को प्यार करते हैं, हमेशा के लिए एक दूसरे के हो जाना चाहते हैं और आप अपनी बदतमीज़ी से उनकी उम्मीदों पर पानी फेर देना चाहते हैं। अपनी बेटी की क़िस्मत फोड़ देना चाहते हैं! आप बाप नहीं, जल्लाद हैं! आप...''

''बस करो! धीरज रखो। अपनी ताक़त बेकार मत ख़र्च करो। अगर ताक़त बहुत ज़्यादा है, तो एप्रन उठाओ और खेत में पहुंच जाओ। दो बोरी कपास भी चुन लोगी, तो उससे सामूहिक फ़ार्म को कुछ फ़ायदा ही होगा। फ़सल अच्छी हुई है, पर काम करनेवालों की कमी है। क्यों, चलें क्या?''

रुस्तम अता ने कृत्रिम दृढ़निश्चयता से एप्रन की तरफ़ हाथ बढ़ाया।

"क्या ऽऽ?!" हूरी चाची उफन पड़ी। "आप अब मुझे भी सीख देने लगे? मैं कर चुकी, जितना काम कर सकती थी। मैं नदी से पानी तक तो मुश्किल से आधी बाल्टी भरके ला पाती हूं।"

"तब फिर नौजवानों को चैन से मेहनत और आराम करने में ख़लल मत डालो।"

वृद्ध ने बैठकर आराम से दूसरा बूट भी उतार दिया।

"ये कौन हैं ख़ुद को नौजवान कहनेवाले?" वृद्धा हैरत में पड़ गयी। "क्या आप?"

रुस्तम अता ख़ुश हो उठे।

"और कौन होगा!"

"शीशे में अपनी सूरत अरसे से नहीं देखी क्या?"

"शीशे में सूरत देखने की मुझे क्या ज़रूरत है? दुनिया में ऐसे लोगों की कोई कमी है, जिनके बाल उम्र से पहले सफ़ेद हो जाते हैं। आदमी की उम्र न झुर्रियों से आंकी जाती है, न दाढ़ी से, बल्कि उसके काम से। बकरे के तो दाढ़ी जन्म से होती है, पर उससे क्या होता है?"

रुस्तम अता कुछ और भी चुभती कहना चाहते थे, पर रुक गये। कहीं बुढ़िया आपे से बाहर न हो जाये और खाट न पकड़ ले। फिर तीन दिन तक पड़ी रहेगी।

वृद्ध ने जूते एक तरफ़ रखकर हाथ धोने के लिए तांबे की चिलमची उठा ली।

"लाइये, मैं ख़ुद पानी डाल देती हूं," हूरी चाची बड़बड़ायी। उनका गुस्सा कुछ ठंडा पड़ गया था, पर बड़बड़ाना जारी था। "वह इतना संजीदा, नेक लड़का है। इसके बावजूद आपने उसे इतनी बुरी तरह फटकारा।"

"अच्छा, अब बस भी करो! चैन से बैठो। अच्छा, ज़रा कुछ खाने को तो लाओ। तुम्हारे चहेते का कुछ नहीं बिगड़ेगा। उसे पुख़्ता होने दो, जीना सीखने दो। मिट्टी को जितना रौंदोगे, बर्तन उतना ही अच्छा बनेगा। उसके

सिर के नीचे परों का मुलायम तकिया मत ठूंसना, वरना बिगड़ जायेगा, कामचोर हो जायेगा और बीवी की कमाई पर जिया करेगा।"

रुस्तम अता पत्नी को शान्त करने के तरीके भली-भांति जानते थे।

"दूल्हे को सचमुच सिर नहीं चढ़ाना चाहिए, वरना वह आलसी और निठल्ला हो जायेगा", हूरी चाची ने डरकर सोचा।

हुआ यह था।

वृद्ध सुबह चुक़ुरसाय नदी की तरफ़ गया था। आप पूछेंगे – क्यों? आख़िर उसकी टोली का खेत तो दूसरी तरफ़ है ...

बात यह थी कि चुक़ुरसाय के पास नरबूता-कारवां की टोली काम कर रही थीं, जिसके साथ रुस्तम अता की टोली ने समाजवादी प्रतियोगिता करने का समझौता किया था। लोगों का कहना था कि नरबूता की टोली ने फिर ढंग से काम नहीं किया था। टोली ने अपने कोटे से कई क्विंटल कपास कम दी थी। इसीलिए रुस्तम अता ने यह पता लगाने की सोची कि उनका दोस्त पिछड़ क्यों रहा है।

वृद्ध खेत के किनारे-किनारे छकड़ों के आने-जाने से बने रास्ते से आ रहा था।

बायीं ओर चुक़ुरसाय के आस-पास जलशाद्बल की संकरी पट्टी पर उगे बेदों के झुरमुटों में मैगपाइयां चहचहा रही थीं। दायीं ओर कपास के सफ़ेद चित्तियोंवाले भूरे-हरे खेत फैले हुए थे।

रुस्तम अता चलते-चलते गिनते जा रहे थे कि नरबूता-कारवां की टोली के कितने लोग कपास चुनने निकले हैं। अहा, आज तो सब मौजूद हैं। पर यह कौन है? अरे, यह तो सबसे बूढ़ा किसान सुलतान-सावुक़ है! लगता है इनसे रहा न जा सका, हालांकि बड़ी मुश्किल से पैर घिसटकर चल पाते हैं, फिर भी पिछड़ती टोली की मदद करने आ पहुंचे हैं। अब काम ढंग से होगा।

अचानक वृद्ध ऐसे जड़वत् रुक गया, जैसे कोई शिकारी तीतर को देख लेने पर रुक जाता है ...

रुस्तम अता ने सावधानीपूर्वक कुछ क़दम आगे बढ़कर झुककर देखा।

सड़क पर पूरी एक मुट्ठी भर कपास का मुसा गाला धूल में पड़ा था! वृद्ध ने उसे हौले से उठाकर धूल झाड़ी और धीरे-धीरे आगे बढ़ा। निकम्मे कहीं के! सबसे अहम बात का तो ध्यान ही नहीं रखते!

थोड़ा और आगे चलकर रुस्तम अता ने फिर एक मुट्ठी भर कपास उठायी... तभी उन्हें घाटी की तरफ जानेवाले रास्ते की ढलान पर किसी चीज़ की झलक दिखाई दी, जो तुरन्त आंखों से ओझल हो गयी। उन्होंने पहियों के निशान ध्यान से देखे और फिर ज़मीन से कान लगाकर सुनने लगे।

रुस्तम अता को दूर से चर्र-चूं की आवाज़ आती सुनाई दी।

हां, अभी-अभी यहां से छकड़ा गुज़रा है।

कपास को चोग़े के पल्ले में रखकर वह लंबे-लंबे डग भरते सड़क पर आगे चल पड़े। उन्हें रास्ते में और दो बार रुककर बिखरी हुई कपास उठानी पड़ी। उनका गुस्सा और भड़क उठा और उन्होंने अपनी रफ्तार तेज़ कर दी। ठसाठस-भरी कपास की बोरियों से ऊपर तक लदा छकड़ा घाटी में धीरे-धीरे जा रहा था।

"क्या हुआ? इसे कहां की जल्दी पड़ी है? कहीं इसके घर में कोई बीमार तो नहीं पड़ गया? कहीं रुस्तम अता डाक्टर को बुलाने तो नहीं भागे जा रहे हैं?" तेज़ी से जा रहे बूढ़े को देखकर रास्ते में मिला कोई भी ऐसा सोच सकता था, लेकिन खेतों के बीच से जाते उस कच्चे रास्ते पर कोई नहीं मिला।

रुस्तम अता हांफने लगे। उनके माथे पर पसीने की बूंदें चुहचुहा आयीं। छकड़ा कोई पचास मीटर दूर रह गया था कि वृद्ध से रहा न जा सका और उसने ज़ोर से आवाज़ दी:

"ऐ, छकड़ेवाले, रुकना!..."

लेकिन छकड़ा तो वैसे ही खड़ा था।

तभी ...

रुस्तम अता का मुंह खुला का खुला रह गया।

आदमी के क़द से ऊंचे दो विशाल पहियोंवाले छकड़े में जुते घोड़े पर बैठा था ... उनका भावी दामाद मीरसईद। एक सप्ताह पहले ही रुस्तम

अता ने अपनी बेटी कमीला की सगाई उससे की थी। अब सबको मालूम हो गया था कि वे मंगेतर हैं और फ़सल की कटाई के तुरंत बाद उनकी शादी हानेवाली है।

काठी पर कुल्हे पर हाथ रखे बैठा मीरसईद सड़क के किनारे खड़ी किसी लड़की से बात कर रहा था।

कमाल है!

जैसा कि होता है, सगाई के दिन से मीरसईद कमीला के घर की गली में क़दम रखते शर्माता था, कतराकर निकल जाता था।

आख़िर उनकी मुलाक़ात हो ही गयी ...

वृद्ध किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। क्या करे? सड़क से उठायी कपास से उसके हाथ जल रहे थे, मानो वह कपास नहीं, बल्कि दोपहर की धूप में तपता पत्थर हो।

लेकिन ... क्या कपास के कुछ गालों की ख़ातिर अपनी बेटी के भावी दूल्हे को भला-बुरा कहना ठीक होगा? आख़िर वह ग़ैर तो नहीं है, होनेवाला रिश्तेदार है ...

रुस्तम अता के दिल में टीस उठी। आह! आदमी के हाथों में दो अंगूठे होते हैं और दोनों ही अपने होते हैं। उनमें से किसी को भी काटिये, दर्द एक-सा महसूस होगा...

रुस्तम अता ने उस लड़की पर नज़र डाली, जिससे मीरसईद बात कर रहा था। गोरा चेहरा, काली आंखें ...

वृद्ध की चुभती नज़र महसूस कर युवती मीरसईद की तरफ़ देखकर मुस्करायी, कपास से भरे एप्रन को ठीक करके झटके से मुड़ी और मेड़ लांघकर कपास के घने पौधों में आंखों से ओझल हो गयी।

मीरसईद ने कनखियों से वृद्ध की तरफ़ देखा और सिर झुका लिया।

"अच्छा!" रुस्तम अता के जले पर जैसे किसी ने नमक छिड़क दिया। "मीरसईद इस लड़की से क्यों बात कर रहा है, वह भी ऐसे अकेले में?"

"आह, कैसा है यह!" वृद्ध ने गुस्से में सोचा। "अच्छा दामाद मिला है मुझे। काम करने का तो इसका मन नहीं करता, पर लड़कियों से

हंसी-ठिठोली करने में माहिर है। ठहर, अभी मज़ा चखाता हूँ।"

"यह आपके छकड़े से गिरी है, बेटे?" रुस्तम अता ने चोग़े के पल्ले से धूल-भरी कपास निकालते हुए संयत स्वर में बात छेड़ी। "काम करते वक़्त आप कौन से सपने देखते रहते हैं, क्यों? ... दूसरों की मेहनत की क़दर करनी चाहिए। असली किसान कभी ऐसा नहीं करते!"

हर शब्द के साथ वृद्ध का क्रोध बढ़ता गया, आवाज़ सख़्त होती गयी।

"लोगों ने चिलचिलाती धूप में एड़ी चोटी का पसीना एक करके कपास पैदा की है!" रुस्तम अता गरज उठे। "आख़िर आप क्यों अपनी और अपने दोस्तों की मेहनत की क़दर नहीं करते हैं? ... मज़े से धीरे-धीरे चले जा रहे हैं और कुछ नहीं देखते! छकड़े के पीछे-पीछे गायों और ऊंटों के झुंड लग जायें, गिरी हुई कपास चबाने लगें, तो भी आप नहीं देखेंगे? कहां गया आपका ज़मीर? और आप छकड़े पर सवार कैसे हैं? क्या आसान काम करने का दिल कर रहा था? क्या दूसरा कोई कमज़ोर आदमी इसे नहीं हांक सकता था। यह काम तो कोई भी छोकरा कर सकता है। ऐसा हट्टा-कट्टा नौजवान बेचारे घोड़े पर लद गया और लगा सैर करने और लड़कियों के साथ ..."

मीरसईद का सिर और नीचे झुक गया।

उसने जवाब में चूं भी नहीं की, बस चुपचाप सिर झुकाये रहा, मानो उसे सांप सूंघ गया हो। मेहनती, विनयशील मीरसईद हक्का-बक्का रह गया। आग-बबूला हुआ वृद्ध कब और किधर गया, उसे कुछ ध्यान न रहा। वह कभी का जा चुका था, पर बेचारा मीरसईद चाबुक की मूठ को छकड़े के बम पर टिकाये बुत-सा बैठा ही रहा।

मीरसईद ने उनींदी-सी खोयी-खोयी नज़रों से चारों तरफ़ देखा, धीरे-से पसीने से तर माथा पोंछा और अन्यमनस्कता से अलसाये ढंग से चाबुक फटकारा।

छकड़ा कुछक क़दम आगे बढ़ने के बाद उसे होश आया। कपास। मीरसईद ने घोड़े को फिर रोक दिया और उतरकर छकड़े के पीछे गया। कई बोरियों के मुंहों के टांके खुले हुए थे और उनमें से कपास-बाहर लटक

रही थी। लानत है! खेत के इस कच्चे ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर हचकोले लगने से एक चौथाई माल तो यूं ही गिर जाये।

मीरसईद ने गुस्से में मुक्के मार-मारकर कपास बोरियों में ठूंस दी और उनके मुंह डोरी से कसकर बांध दिये। घोड़े पर सवार होते समय उसने देखा कि उसका भावी ससुर घने क़ैराग़च के तले खड़ा सामूहिक फ़ार्म के अध्यक्ष से बात कर रहा है।

रुस्तम अता हाथ नचाते हुए बड़े जोश में नाटे, मोटे और अत्यंत शांत अकरम सफ़रोव को कुछ बता रहे थे।

"अध्यक्ष से मेरी शिकायत कर रहे हैं," मीरसईद का दिल धक से रह गया। "मैं भी कैसा बेवक़ूफ़ हूं! उस कुबड़े अशीरमात की बातों में आ गया। उसने मुझे बहका दिया, कहने लगा – बड़ा मज़ेदार काम है। और मैंने भी उस पर विश्वास कर लिया। इस मनहूस छकड़े पर एक बार सवारी करने से तो सुबह से शाम तक कपास चुनना कहीं ज्यादा बेहतर है। अब क्या होगा? जग-हंसाई हो जायेगी। रुस्तम अता ने अगर कह दियाः 'नहीं चाहिए मुझे ऐसा दामाद'! तब मैं कहां जाऊंगा?"

मीरसईद कपास के खलियान पहुंचने तक सारे रास्ते अपने को कोसता रहा। कपास का खलियान चौड़ा, कूट-कूटकर समतल किया ज़मीन का टुकड़ा था, जिस पर कच्ची कपास सुखाई जाती थी। कपास यहां खेत के सभी छोरों से ऐसे ही छकड़ों पर लादकर लायी जाती थी, जैसे को मीरसईद हांक रहा था।

"संभालो वापस इसे!" मीरसईद ने कुबड़े अशीरमात से आंखें चुराते हुए उसे चाबुक थमा दिया। "भाड़ में जाओ तुम और तुम्हारा छकड़ा! मेरा एप्रन कहां है?"

"बात क्या है?" अशीरमात को आश्चर्य हुआ। "क्या हचकोलों से पेट में गड़बड़ हो गयी?"

"पेट में नहीं, ज़मीर में!" मीरसईद चिल्लाया। "तुमने मुझे बच्चों का काम संभला दिया, लोगों के सामने शर्म आती है।"

"तुम चिल्ला क्यों रहे हो?" अशीरमात की संकरी आंखें अनखिली

कपास के डोड़े की तरह गोल हो गयी। उसने अपने सामान्यतः विनम्र रहनेवाले साथी को पहली बारे गुस्से में देखा। "मुझे तुम पर तरस आ गया था, सोचा, लड़का बहुत थक गया है, एक-दो दिन आराम कर लेगा और तुम हो कि शुक्रिया कहने के बजाय मुझे खाने दौड़ पड़े। अगर छकड़ा तक नहीं हांक सकते, तो दूसरों पर नाराज़ होने की कोई ज़रूरत नहीं। नाच न जाने आंगन टेढ़ा।"

बातूनी अशीरमत अनाड़ी गाड़ीवान का जी भरकर मज़ाक़ उड़ाना चाहता था और उसने अपने असीम कहावत कोश से पहली कहावत सुना भी दी थी, मगर मीरसईद ने उसे टोक दियाः

"बहुत हो गया! अपनी हाज़िरजवाबी चायख़ाने के लिए संभालकर रखो," अशीरमात से लगभग ख़ाली एप्रन छीनकर वह खेत की तरफ़ चल दिया।

उसकी मज़बूत उंगलियां बड़ी फुर्ती से खुले भूरे डोड़ों से धूप से गर्मायी कपास चुनने लगी। फिर भी इस काम से भी, जिसका वह आदी था, उसे शांति नहीं मिली। मीरसईद के कानों में रुस्तम अता की गुस्से-भरी आवाज गूंज रही थी।

"अच्छा ससुर मिला है!" मीरसईद निराशा से सोच रहा था। "मामूली-सी बात पर मुझे ऐसे फटकार दिया, जैसे कि कोई शरारती बच्चा होऊं।"

उसने अपने दिल में "गुस्सैल बूढ़े" पर गुस्सा होने, अपने को उसके ख़िलाफ़ भड़काने की कोशिश की, पर सब बेकार। गुस्सा होने के लिए कोई कारण ही न था। रुस्तम अता ने ठीक कहा था। उन्होंने मीरसईद को सज़ा निजी लाभ के लिए नहीं, बल्कि सामूहिक फ़ार्म के सार्वजनिक लाभ को ध्यान में रखकर दी थी और बिल्कुल ठीक किया!

शाम को क्लब के पास कमीला के साथ मुलाक़ात होने पर ही मीरसईद को कुछ राहत मिली।

"उफ़, कैसी फटकार सुननी पड़ी आज मुझे आपके अब्बा से!" उसने खिन्न मुस्कान के साथ कहा। "अशीरमात ने मुझे छकड़े पर कपास ढोने के लिए मना लिया था, शायद वह ख़ुद ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर हचकोले

खाता ऊब चुका था। मैंने खेत में छकड़े पर कपास की बोरियां लादीं और खलियान के लिए रवाना हो गया। देखा, रास्ते के किनारे आपकी सहेली नासिरा काम कर रही है। मैंने छकड़ा रोककर उससे कहाः 'आज क्लब में एक अच्छी फ़िल्म दिखाई जायेगी। आप कमीला को साथ लेकर आइये, उन्हें अकेले आते अखरता है।' उन्होंने यह बताया आपको?"

"जी, हां। नासिरा मुझे अभी मोड़ तक छोड़ गयी है और ख़ुद टिकट लेने गयी है।"

"मैंने उनसे इतना ही कहा था कि न जाने कहां से आपके अब्बा आ धमके! वह मुझ पर चील की तरह टूटकर चोंचें मारने लगे! तुम ऐसे हो, तुम वैसे हो। ऐसी फटकार लगायी मुझे कि मन किया कि ज़मीन मुझे निगल जाये, तो अच्छा हो। समझ में नहीं आया कि कहां मुंह छिपाऊं। मेरी जबान तालू से चिपक गयी, जवाब देते नहीं बना। सिर उठाने की तो क्या उंगली उठाने की भी ताक़त नहीं रही। काटो तो ख़ून नहीं ..."

"मुझे सब मालूम है..." कमीला ने चिंता से मंगेतर की आंखों में झांका। "आप ... अब्बा पर गुस्सा तो नहीं हुए?"

मीरसईद थोड़ी देर चुप रहा और फिर शर्माकर हाथ मलने लगाः

"इसमें गुस्सा करने की बात ही क्या है? ग़लती मेरी ही थी। आसान काम करना चाहता था ..."

"और मैंने ... मैंने सोचा ..." युवती को अपने दिल की बात कहने का साहस नहीं हुआ।

उसे दिन में ही रुस्तम अता की मीरसईद के साथ हुई अनिष्टकारी भेंट के बारे में मालूम हो गया था और वह भी अपने मंगेतर से कम दुखी नहीं थी।

"सारा काम बिगड़ गया!" कमीला सोच रही थी। "अब्बा ने मीरसईद की बेइज़्ज़ती कर दी और अब वह मुझसे कोई वास्ता नहीं रखेगा। उनकी यह मुलाक़ात कैसे हुई! कैसे हैं अब्बा भी! बेचारे पर ऐसे बरस पड़े जैसे वह कोई ग़ैर हो। और मीरसईद को भी ख़ूब सूझी छकड़े पर सैर करने की!..."

मीरसईद ने हौले से मंगेतर का हाथ छुआः

"आप क्या सोच रही हैं?"

कमीला की नज़रें झुक गयीं और वह अत्यंत धीमे स्वर में फुसफुसायीः

"आप क्या ... मुझसे फिर नहीं ..."

उसकी बात अधूरी रह गयी और उसने अपना चेहरा हाथों से ढांप लिया।

मीरसईद की ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी।

"मेरी अच्छी कमीला!" वह गर्मजोशी से फुसफुसाया। "भला मैं आपको इसलिए छोड़ सकता हूं कि आपके अब्बा ने मुझे फटकारा? अगर वह ग़लती पर भी होते, तो भी मैं आपकी ख़ातिर सब चुपचाप सुन लेता। आख़िर उन्होंने मुझे दामाद नहीं, आलसी कामगार समझकर डांटा-फटकारा था। दोनों अलग-अलग बातें हैं, हालांकि आलसी कामगार शायद ही अच्छा दामाद साबित हो सकता है, ख़ासकर रुस्तक अता जैसे आदमी के लिए। सच कहूं, तो मैं आपके अब्बा से ज़रा भी नाराज़ नहीं हूं। बस रुस्तम अता ही ..." मीरसईद ने बेचैनी में अपना गर्म माथा पोंछा; युवक के स्वर में संदेह झलक रहा था, "पता नहीं मुझे माफ़ करेंगे या नहीं?"

"ज़रूर करेंगे," कमीला मुस्करायी। "अब्बा तुनकमिज़ाज ज़रूर हैं, पर दिल के बहुत नर्म हैं।"

"सच!" मीरसईदे न इस तरह चैन की सांस ली, मानो उस मनहूस छकड़े का बोझ उसके सिर से उतर गया हो, जिसे मानो वह मीलों दूर से ढो रहा था।

"लेकिन आपने यह नहीं पूछा कि मैं आपको माफ़ करूंगी या नहीं?" कमीला ने चुटकी ली।

"किसलिए?" मीरसईद चौंक उठा।

"उसी छकड़े के लिए। ऐसे लंबे-चौड़े नौजवान हो और एकाएक.."

"मैं ज़िन्दगी में फिर कभी उस मनहूस छकड़े के पास फटकने तक की भी नहीं सोचूंगा!" मीरसईद कह उठा। फिर चारों तरफ़ देखकर हिम्मत जुटाकर फुसफुसायाः "उस दिन को छोड़कर जब शादी के दिन आपको विदा कराने आऊंगा..."

युवक ने सकुचाते हुए मंगेतर को अपनी ओर खींचने की कोशिश की, पर वह उचककर परे हट गयीः

"हाय, फ़िल्म शुरू हो चुकी है!"

...हूरी चाची सारी रात करवटें बदलती रहीं। वह आहें भरती रहीं, पर नींद नहीं आयी। सुबह वह उठीं, तो असाधारण रूप से शांत व विनम्र थीं। उन्होंने पति को एक तरफ़ बुलाया।

"सुनिये। कल खाना खाने के बाद जब आप सो गये थे, मैं क्लब गयी थी ..."

"शाबाश, बुढ़िया! तुम्हें मन बहलाने का तरीक़ा आता है। तो तुमने कौन सी फ़िल्म देखी?"

"बहुत ही बढ़िया फ़िल्म देखी। मैंने मीरसईद और कमीला को साथ देखा।"

"तो?"

"सब ठीक है।"

"ठीक है।"

"यानी..."

हूरी चाची कहना चाहती थीं: यानी आप मीरसईद को फटकार लगाते वक़्त जानते थे कि आप क्या कर रहे हैं। मैं बेकार ही आप पर बरस पड़ी। मुझ नासमझ बुढ़िया को माफ़ कर दीजिये।"

लेकिन तभी वृद्ध सहृदयतापूर्वक मुस्करा दियाः

"अच्छा, छोड़ो अब। मुझे सब मालूम है।"

लेकिन पति की कुशाग्र बुद्धि पर हूरी चाची उफन पड़ीं:

"आपको कुछ मालूम नहीं! मेरे प्यारे बेटे मीरसईद को डांटने-फटकारने की फिर कभी हिम्मत मत करना, सुन रहे हैं आप?"

रुस्तम अता गर्व से दाढ़ी पर हाथ फेरकर मुस्करायेः

"रहने दो। ज़रूरत पड़ी, तो एक बार नहीं सौ बार डांटूंगा-फटकारूंगा। समझीं?"

हमीद ग़ुलाम

(जन्म – 1919-2005)

हमीद ग़ुलाम कवि, गद्य-लेखक और नाटककार हैं। ताशक़न्द शिक्षण विद्यालय का स्नातक होने के बाद उन्होंने साहित्य का अध्ययन किया और पत्रिकाओं को सक्रिय सहयोग देते रहे। वह सन् 1934 से साहित्य-सृजन में रत हैं। कवि का राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत प्रथम कविता-संग्रह "मैं बदला लूंगा" सन् 1942 में प्रकाशित हुआ। अब तक उनके बीस से अधिक कविता-संग्रह छप चुके हैं। कहानी व फ़ीचर लेखन तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में वह अत्यन्त सक्रिय हैं। उन्होंने "भूखी स्तेपी" "ताशक़न्दवासी" और "बनफ़्शे की ख़ुशबू" नामक उपन्यासों की रचना की है। हमीद ग़ुलाम ने कई नाटक भी लिखे हैं, जिनमें "बेटे की शादी", "अजीब क़िस्से", "प्यार का दीवाना ताशबाल्ता" प्रमुख हैं। वे जनतंत्र के थियेटरों में सफलतापूर्वक मंचित किये जाते हैं। हमीद ग़ुलाम उज़्बेक सोवियत समाजवादी जनतंत्र के हमज़ा राजकीय पुरस्कार विजेता हैं।

सिपाही की माँ

हमारे बेटे को सेना में अनिवार्य सेवा के लिए बुलाया जा रहा है। कल की ही बात है। शाम को घंटी बजी। मैंने जाकर फाटक खोला, तो सड़क की बत्ती के धुंधले प्रकाश में एक अज्ञात युवक को खड़े देखा। वह फ़ौजी आदेशों का पुलिन्दा लिये खड़ा था। उसने ताहिर को पूछा। मैंने कहा कि वह घर पर नहीं है, शायद पास की नाई की दुकान में होगा। युवक ने एक आदेश मेरी तरफ़ बढ़ाकर हस्ताक्षर करने के लिए कहा।

मैंने आदेश पढ़ा। हमारे ताहिर को सेना में बुलाया गया था। अगले दिन उसे फ़ौजी कमिश्नर के दफ़्तर में जाना था।

मैं तो उसे अभी तक बच्चा समझता था। सिर्फ़ दो साल पहले उसने स्कूल की शिक्षा समाप्त की थी। उसके बाद स्कूली छात्रों के पायोनीयर संगठन का निर्देशन किया था। साथ ही विश्वविद्यालय के पत्रकारिता संकाय में भर्ती हो गया था। अब दूसरे वर्ष का छात्र है। मुझ से छिपाकर कविताएं भी लिखता है।

मैं अपने जीवन में बहुत कुछ देख चुका हूं और अपने बेटे की ज़िन्दगी मुझे उसके कुछ समवयस्कों के जीवन की अपेक्षा कुछ नीरस और बेरंग लगती थी। उन्नीस बरस की उम्र में कुछ युवक अपने काम के माहिर, सामूहिक फ़ार्मों की टोलियों के प्रधान, जाने-माने क्रेनचालक, धातुकर्मी बन जाते हैं। उन्नीस बरस की उम्र में कुछ कवियों के पहले कविता-संग्रह भी प्रकाशित हो जाते हैं। जब कि मेरा बेटा सामान्य छात्र, शहर का

सामान्य लड़का है। फ़ैशन के अनुसार बाल कटवाता है, फ़ैशन के कपड़े-जूते पहनता है। मगर आप यह न सोचिये कि ताहिर पूरा छैला है। उसे पहली बार देखकर आप यह सोच सकते हैं लेकिन वह बुद्धिमान और संजीदा युवक है। और नेकदिल भी। उसके दोस्त भी अच्छे हैं। ताहिर के पांच पक्के दोस्त हैं। उनमें से दो सेना में सेवा कर चुके हैं, अब उसके साथ पढ़ते हैं। तीसरा शहर के सबसे बड़े कारख़ाने में एप्रेंटिस है। दो और दोस्त उसी के समवयस्क छात्र हैं। ताहिर उन्हें अक्सर हमारे घर बुलाता है। वे आधी रात तक बहस करते रहते हैं, या शतरंज खेलते हैं और जब मौसम अच्छा होता है तो आंगन में टेबल टेनिस खेलते हैं। कभी-कभी वे बड़ा शोर मचाते हैं। मुझे शर्म आती है। सोचता हूं कि पास-पड़ोस के लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। तब मैं उन्हें बरामदे में बुलाकर चुपके-से झिड़की देता हूं।

और अब हमारा लड़का सेना में जा रहा था। मैंने ध्यान के साथ आदेश को कई बार पढ़ा।

नवंबर महीने की शुरूआत है। सूर्य कभी का डूब चुका है। आसमान पर तारे टिमटिमाने लगे थे। तेज़ हवा चल पड़ी थीं। फाटक के पास के ख़ूबानी के पेड़ के आख़िरी सुनहले पत्ते भी टहनियों से झड़कर उड़ गये। हवा में तैरते सुनहरे पत्तों पर निगाह डाले मैं अपने बेटे के बारे में सोच रहा था। हां, अब वह बच्चा नहीं रहा। वतन उसे अपनी सेवा के लिए बुला रहा है, इसका मतलब – वह सयाना है। वह कहां जाएगा, सेना के किस अंग में सेवा करेगा, यह अभी मालूम नहीं था इतना ही मालूम था कि वह एक सैनिक बन जाएगा। फ़ौजी वर्दी पहनेगा, सिर पर सितारेवाली टोपी होगी और पैरों में फ़ौजी बूट।

मैंने बहुत से युवकों को सेना में नौकरी के लिए जाते समय और नौकरी के बाद देखा था। ज़मीन-आसमान का फ़र्क होता है। सेना में सेवा के लिए जानेवाले युवक अधिकतर दुबले-पतले होते हैं, और जब लौटते हैं तो हृष्ट-पुष्ट होते हैं, माँसल, सुर्ख़ गाल। और सदा कोई-न-कोई व्यवसाय सीखकर आते हैं।

सच बताऊं तो मुझे बड़ा गर्व था कि मेरा बेटा सेना में सेवा करने जा रहा है।

इन्हीं विचारों में डूबा मैं दरवाज़े के पास खड़ा था कि मुझे अपनी घरवाली मलिका की आवाज़ सुनाई दीः

"अजी, आप कहां चले गए थे? कौन आया है?"

इस आवाज़ ने मेरे विचारों को छिन्न-भिन्न कर दिया। मैं बेटे के बारे में सोच रहा था और पत्नी का मुझे ख़्याल ही नहीं आया। वह क्या कहेगी? बेटे के चले जाने पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? आसानी से राज़ी होगी अथवा ... मां तो मां ही होती है। शायद ही दुनिया में ऐसी कोई मां हो, जो अपने बेटे से बिछुड़ जाने को आसानी से राज़ी हो जाय।

"कोई आया है, तो घर में बुलाइये!" मलिका ने शांत स्वर में कहा।

बरामदे में प्रवेश करके मैंने बत्ती जलाई शायद मलिका कुछ भांप गयी है।

"कौन आया था?"

"एक लड़का ख़ुशख़बरी लेकर आया था।"

"क्या कोई ख़त है? तो पढ़कर सुनाइये!"

मैंने आदेश को अपनी जेब में छुपा लिया। अन्दर जाकर स्विच ऑन किया। कमरा रोशनी से जगमगा उठा। हम मेज़ के दोनों ओर आमने-सामने बैठ गए। मैंने सावधानी से बात छेड़ी।

"ताहिर सयाना हो चुका है। शादी करने लायक़ हो गया है।"

मलिका मुस्करा उठी।

"इतनी जल्दी क्यों?"

"जब हमारी शादी हुई, तब मैं भी उन्नीस बरस का था।"

"वह दूसरा ज़माना था। अब इतनी जल्दी कोई शादी नहीं करता। उसे अभी विश्वविद्यालय में शिक्षा समाप्त करनी है, अभी सेना में भी सेवा करनी है।"

मेरी पत्नी ने मेरा काम आसान कर दिया।

"हां, सेना में सेवा करनी है। मैंने जिस ख़ुशख़बरी का जिक्र किया, वह यही हैः हमारे ताहिर को सेना में सेवा के लिए बुलाया जा रहा है।"

मुझे आशा थी कि वह फ़ौरन सब समझ जायेगी, पर उसने हाय-तोबा मचा दीः

"हाय! क्यों जाये वह सेना में? उसे अभी पढ़ना है। उसके हमउम्र अभी सेना में नहीं गये।"

ऐसी हालत में मलिका से कुछ सख़्ती से काम लेना पड़ता है। इस लिए मैंने अपनी आवाज़ ऊंची कर लीः

"यह तुम क्या कह रही हो? क्या तुम अपने बेटे की सेना में सेवा के ख़िलाफ़ हो?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।" मलिका ने कुछ शांत होते हुए कहा। "मगर वह तो अभी छोटा है। सेना में उसे घर की याद बहुत सतायेगी। फिर ... उसकी शिक्षा भी अधूरी रह जायेगी।"

"सुनो, मलिका! मैं भी अपने बेटे को बहुत चाहता हूं। आख़िर वह हमारा इकलौता है। कौन चाहेगा कि उसका बेटा अपना घर छोड़कर चला जाये? पर यहां बात अपने वतन की सेवा की, सेना में नौकरी की है। उसे जाना ही होगा। और शिक्षा वह दो-तीन साल बाद सेना में सेवा के बाद समाप्त कर लेगा।"

"आप बड़े संगदिल हैं," मलिका रो पड़ी। अपने बेटे को घर से निकाल रहे हैं, जब कि उसके साथी अभी यहीं पर हैं।"

"अरे, यह क्या कह रही हो?"

मैंने उसके पास आकर उसके रेशम जैसे बालों पर हाथ फेराः

"एक न एक दिन सब युवकों को सेना में जाना है। इस साल नहीं, तो अगले साल। इसलिए, आओ, ताहिर के जाने के लिए तैयारियां करें, उसकी सफल यात्रा की कामना करें।"

मलिका चुपके से उठी और सोने के कमरे में चली गई।

मैंने अल्मारी से पुस्तक निकाली। मगर पढ़ने में जी नहीं लगा। मेरी निगाह सोने के कमरे के किवाड़ पर टिकी रही।

ताहिर आ गया। काफ़ी ठंड थी, पर उसने न कोट पहना था और न ही टोपी। सर्दी से उसके कान तक नीले पड़ गए थे।

"कुछ उदास लग रहे हैं, अब्बाजान, ख़ैरियत तो है? अम्मी कहां हैं?"

मैंने उसे फ़ौजी आदेश थमाया। आदेश पढ़कर वह मेरे पास आ गया।

"मेरे दोस्तों को भी ऐसे ही आदेश मिले हैं," उसने धीमे-से कहा और मुस्करा उठा। मैंने उसे गले लगा लिया।

मां की सिसकियां सुनकर वह उदास हो गया।

"क्या बात है?"

"जाओ! ज़रा मां को मनाओ!" मैंने कहा और बाहर आंगन में निकला।

अंधेरा छा गया था और सितारे पहले से अधिक चमकीले लग रहे थे। हवा के झोंके पेड़ों के पत्तों को बराबर उड़ा रहे थे। रसोई में जाकर मैंने गैस जलाकर चाय का पानी चढ़ा दिया। पता नहीं कितना वक़्त बीत गया। इतने में ताहिर की आवाज़ आईः

"आज खाने को कुछ मिलेगा कि नहीं? मेरे पेट में चूहे दौड़ रहे हैं।"

मैं समझ गया कि ताहिर ने अपनी मां से बात कर ली है।

"मां कैसी है?"

"बिल्कुल ठीक है। कल मेरे साथ सैनिक कार्यालय में जाएंगी।" यह सुनकर मैं घबरा गया।

"अब्बाजान!" ताहिर हंस पड़ा। "पच्चीस साल साथ रहकर भी आप उनका स्वभाव नहीं जानते हैं।"

पुलाव गर्म करके मैंने उसे सुनहरे बेलबूटोंवाली तश्तरी में डाला। ताहिर ने चाय बनाई। ये सब उठाकर हमने कमरे में प्रवेश किया। मलिका मूली काट रही थी। ताहिर को संबोधित करते हुए उसने शांत स्वर में पूछाः

"बहुत भूख लगी है क्या, बेटे?"

"ख़ुदा का शुक्र है। शांत हो गई," मैंने मन-ही-मन में सोचा।

अगले दिन सुबह सवेरे वे सैनिक कार्यालय चले गए। जाते समय ताहिर ने कहा कि वहां उसका काम समाप्त होते ही वह मुझे फ़ोन करेगा। दिन भर मैं उसके फ़ोन की प्रतीक्षा करता रहा, काम में मन नहीं लग रहा था। पता नहीं उसे कहां, किस सेना में भेजा जाएगा। कोई फ़ोन नहीं आया, इसलिए काम के बाद मैं भी सैनिक कार्यालय गया। वहां मैंने

मलिका को कुछ महिलाओं के साथ बैंच पर बैठे पाया। वह बातचीत में लगी थी। मैं उनके पास गया।

"उसे अभी-अभी अन्दर बुलाया गया है," मलिका ने कहा।

मैंने महिलाओं की बातचीत पर कान लगाए। एक महिला कह रही थी कि उसके बेटे को कीव सैनिक क्षेत्र में भेजा जा रहा है।

"शायद दूसरों को भी वहीं भेजा जाएगा," उसने कहा।

इतने में ताहिर आ गया। वह बहुत ख़ुश था। उसे तुर्किस्तान सैनिक क्षेत्र के रेडियो संचार से संबद्ध दस्ते में भर्ती किया गया था। उसे रेडियो यंत्रों का शौक़ था। कल ही जाना है। मैंने उसे बधाई दी। मलिका बेटे को सीने से लगाकर रो पड़ी। एक तरह से ये ख़ुशी के आंसू थे। उसका बेटा बड़ा हो चुका है। सेना में जा रहा है। दूसरी ओर से उसे इस बात का दुख था कि वह घर छोड़कर जा रहा है। कल से वह कितना बदल गई है। अब उसे बेटे के जाने की तैयारियां करने की ही फ़िक्र थी।

हम सैनिक कार्यालय के आंगन से निकले ही थे कि उसने हड़बड़ाकर कहा:

"जल्दी ही जाकर ताहिर के लिए कोई गर्म जाकेट, ऊनी मोज़े और दस्ताने खरीद लाइये!"

मैं दुकान पर गया। जब सब कुछ खरीदकर घर लौटा, तो सारा घर बत्तियों से जगमगा रहा था। बैठकख़ाने में ताहिर अपने दोस्तों के साथ बैठा था।

बड़ी दौड़धूप थी। पड़ोसिनें मलिका की दावत के लिए विविध व्यंजन तैयार करने में मदद कर रही थी। एक नान बना रही थी, तो दूसरी समोसे। मलिका पुलाव बनाने में व्यस्त थी। पर मुझे देखते ही वह दौड़कर मेरे पास आ गई। जाकेट और दस्ताने खोलकर देखे और कहा :

"ठीक है।"

पर उसकी आंखों में बड़ी उदासी झलक रही थी। "बेचारे बेटे को कभी घर से इतना दूर नहीं जाना पड़ा था।"

मैं चुप रहा।

आधी रात गए तक मलिका दौड़धूप करती रही। कभी वह रसोई में खाना पकाती, कभी कमरे में जाकर देखती कि ताहिर और उसके साथियों के पास सब है कि नहीं, तो कभी वृद्धों के लिए चाय आदि बनाती।

उसकी आंखें अन्दर को धंस गई थीं और माथे पर कुछ गहरी झुर्रियां पड़ गयी थीं, जो पहले नज़र नहीं आती थीं।

वह ताहिर के हरेक साथी का जी-जान से स्वागत-सत्कार कर रही थी, पर उन युवकों के प्रति वह विशेष ममता दर्शा रही थी, जिन्हें अब सेना में सेवा के लिए जाना था।

आधी रात को ताहिर की सफलताओं और सलामती की कामना करके मेहमान चले गए।

पर मलिका ने तब भी चैन नहीं लिया। उसने ताहिर के लिए ख़ुद बिस्तर बिछाया और फिर उसके कपड़ों पर इस्तरी करने में लग गई। मानो बेटे के कपड़ों पर इस्तरी नहीं बल्कि अपने दिल की गर्मी, अपनी ममता लगा रही हो।

ताहिर के लिए फल, नान और समोसे भी उसने ख़ुद काग़ज़ों में लपेट-लपेटकर थैले में रखे।

मैंने उसे जाकर थोड़ी देर सोने के लिए कहा, तो वह जाकर ताहिर के पलंग के पास सोफ़े पर कपड़े बदले बिना यों ही लेट गई, मानो ताहिर सेना में नौकरी के लिए जानेवाला युवक नहीं बल्कि गोद का बच्चा हो।

सुबह उठा तो बर्फ़ पड़ रही थी। मैंने घर को गर्म करने के लिए अंगीठी जलायी, चाय का पानी चढ़ाया और बाहर निकला। रास्ते से बर्फ़ साफ़ की। जब मैं कमरे में घुसा, तो मलिका ताहिर के पलंग पर बैठी थी। गहरी नींद में डूबे बेटे को निहारते हुए वह रो रही थी।

मैंने कहा:

"जगाओ उसे। नाश्ता करेंगे।"

"थोड़ा और सोने दीजिये।"

मलिका धीरे-से बाहर गई। मैंने ताहिर को जगाया।

"क्या वक़्त हो गया?" उसने हड़बड़ाकर पूछा। "अम्मी कहां हैं?"

"या ख़ुदा!" मैंने मन-ही-मन सोचा। "मां रात भर इसके पास बैठी रही और यह बेख़बर है।"

नाश्ते के समय मलिका चुप रही।

फिर से ताहिर के दोस्त आ गए। हम सब मिलकर उस स्थान पर गए, जहां सेना में भर्ती होनेवाले जमा होते हैं। एक विशाल अहाता लोगों से खचा-खच भरा था। एक ओर लेमोनेड बिक रहा था, तो दूसरी ओर कबाबची कबाब बना रहे थे। भुने हुए गोश्त और मिर्च-मसाले की सुगंध नाक को गुदगुदा रही थी। ताहिर कुछ अन्य युवकों के साथ इमारत के अन्दर गया। हम शेष लोगों के साथ अपने बेटों की प्रतीक्षा में आंगन में खड़े रहे। नया-नया सैनिक कार्ड लेकर ताहिर बाहर निकला और बोला कि जनरल सब माता-पिताओं को हॉल में आमंत्रित कर रहे हैं। यहां सभा होनेवाली है।

हॉल बहुत बड़ा था। सभापतिमंडल में ऊंचे क़द के काफ़ी जवान जनरल, सफ़ेद बालोंवाले कर्नल और एक मेजर बैठे थे, जिन के वक्ष पर गार्डसमैन का बैज चमक रहा था। हाल के अंदर बैचों पर सेना में भर्ती होनेवाले युवक और उनके माता-पिता बैठे थे।

सभा का उद्‌घाटन जनरल ने किया। उन्होंने युवकों को सोवियत सेना के सैनिक बनने पर बधाइयां दीं। इसके बाद जनरल ने रंगरूटों के माता-पिताओं को संबोधित करते हुए कहाः

"क्या आपमें से कोई बोलना चाहेगा?" लोग एक दूसरे से कहने लगे कि 'आप जाइये! आप बोलिये!'

अचानक मलिका ने मुझसे कहाः

"आप क्यों नहीं जाते?"

"मैं क्यों जाऊं? बोलने में तुम ही अधिक माहिर हो। तुम्हीं जाओ!"

बड़े आश्चर्य की बात थी कि मलिका उठ गई। भाषण-मंच पर तनकर सीधी खड़ी हो गयी, सिर पर बंधा रूमाल ठीक करके बोलने लगीः

"प्रिय बेटे! आज तुम अपने वतन की सेवा करने जा रहे हो। तुम से विदा लेते हुए मैं तुमसे यही कहना चाहूंगीः अपने कमांडरों का कहना मानना! वहां तुम्हें जो कुछ सिखाया जाए उसे अच्छी तरह से सीखना! जो

आदेश मिले, उसका पालन करना! हां, अपने स्वास्थ्य का भी ख़याल रखना! अब मुझी को नहीं, बल्कि सेना को भी तुम्हारी सेहत-सलामती की ज़रूरत है। जल्दी-जल्दी ख़त लिखा करना। सही-सलामत लौटकर आना! बस, मैं यही कहना चाहती थी।''

बड़ी देर तक तालियों की गड़गड़ाहट सुनायी देती रही। शाम को जवानों को विदा करने के लिए हम रेलवे स्टेशन पर पहुंचे। बेटे को देखकर मलिका की आंखें भर आईं। आंसू पोंछकर उसने कहा:

''सच्चा सैनिक बन गया है।''

तीसरी घंटी बेजी और गाड़ी चल दी। हम गाड़ी के साथ चलते-चलते चिल्लाते रहे:

''पहुंचते ही ख़त लिखना!''

''रास्ते में सावधानी बरतना!''

''नंगे सिर न घूमना!''

''ऊनी मोज़े पहनना न भूलना!''

''जल्दी-जल्दी ख़त लिखना!''

गाड़ी आंखों से ओझल हो गई और प्लेटफ़ार्म पर शांति छा गयी।

जब हम घर लौटे, रात हो चुकी थी। बड़ी मेज़ पर बैठकर हम दोनों ने खाना खाया। फिर ताहिर की बात शुरू हो गयी। हम अन्दाज़ा लगाने लगे कि अब उसकी गाड़ी किस स्टेशन पर होगी, वह क्या कर रहा होगा।

दो दिन बीत गए। मलिका को आशा थी कि अपने दस्ते में पहुंचने पर ताहिर तार भेजेगा। पर कोई तार नहीं आया। ''उसने ख़त लिखा होगा, कुछ ही दिनों में आ जाएगा,'' मैंने उसे तसल्ली देते हुए कहा।

मलिका ख़त की प्रतीक्षा करने लगी। पर ख़त दस दिन बाद ही आया। उसमें ताहिर का फ़ोटो भी था: वह हरे रंग की फ़ौजी वर्दी, फ़ौजी बूट और सितारेवाली टोपी पहने था। कमर पर चौड़ी पेटी कसी थी। ताहिर ने लिखा था कि वह अपने दस्ते में पहुंच गया है, सब ठीक है, उसका सार्जेंट बहुत अच्छा साइबेरियाई युवक है। मलिका देर तक फ़ोटो को निहारती रही। उसे लगा कि उसका बेटा दुबला हो गया है।

''हम कब जाएंगे ताहिर को देखने?'' उसने पूछा।

"अभी अच्छा नहीं लगता। दो-तीन महीने बाद जाएंगे।"

मलिका दिन गिनने लगी।

पतझड़ बीत गया। सर्दियां शुरू हुईं।

हर हफ़्ते हमें ताहिर का ख़त मिलता रहा। वह लिखा करता था कि वह सकुशल है। सब कुछ ठीक है मगर बहुत व्यस्त रहता है। हमारी सेहत-सलामती की कामनाओं के साथ वह अपना ख़त समाप्त करता था।

मलिका बेटे को अधिकाधिक याद करने लगी। रात को उसे नींद नहीं आती थी। ये सब देखकर मैं एक दिन टिकट लेकर आया। मलिका जाने की तैयारियों में लग गई। नान, समोसे, मिठाइयां, तरह-तरह के व्यंजन तैयार करने लगी, मानो सेना में जवानों को भूखा रखा जाता हो। ढेर सारी चीज़ें बन गईं। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैं ये सब कैसे उठाऊंगा।

जाते समय हमने ताहिर को तार भेजा।

रास्ते भर मलिका इस चिंता में डूबी रही कि ताहिर हमें लेने आएगा कि नहीं।

हम अगले दिन सुबह सवेरे उस स्टेशन पर पहुंचे जिस के पास ताहिर का दस्ता तैनात था। काफ़ी ठंड थी। बर्फ़ पड़ रही थी। प्लेटफ़ार्म पर खड़े ताहिर को देखकर मलिका चिल्ला उठीः "बेटे!"

वह अपने बेटे से लिपट गई, उसे चूमने लगी। कुछ ही दूरी पर एक कार के पास ताहिर के कमांडर खड़े थे। मुझे डिब्बे से एक के बाद एक थैले-पोटलियां निकालते देखकर वे मुस्करा उठे।

"लगता है, आप ताशक़न्द का कोई बाज़ार उठा लाये हैं," कमांडर ने मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा।

"ये सब ताहिर की मां..." ताहिर के साथ खड़ी मलिका की ओर संकेत करते हुए मैंने अपनी सफ़ाई देने की कोशिश की।

"सब माताएं एक-सी होती हैं," कमांडर बोले। और मलिका... वह उस समय देखने योग्य थी। ताहिर के कमांडरों का अभिवादन करके वह फिर उससे लिपट गई। ताहिर काफ़ी हृष्ट-पुष्ट हो गया था, सर्दी में उसके गाल सुर्ख़ थे। कंधे अधिक चौड़े हो गए थे। मलिका ने उससे पूछाः

"बेटे, तुम क्या मोटे हो गये या सूज गए हो?"

सब खिलखिलाकर हंस पड़े।

मोटर में मलिका अपने बेटे से चिपककर बैठी रही।

मारे ख़ुशी के वह फूले नहीं समा रही थी। स्तेपी में बर्फ़ीली आंधी चल रही थी। जल्दी ही हम उस बस्ती में पहुंच गए, जहां ताहिर का दस्ता तैनात था। मालूम हुआ कि जवान अच्छे-खासे मकानों में रहते हैं, पर कमांडर ने कहा कि पहले यहां कुछ नहीं था। इसलिए जब सैनिक दस्ता यहां आया, तो कुछ अर्से तक सबको तंबुओं में रहना पड़ा था।

ताहिर को हमारे साथ रहने की इज़ाज़त मिल गई। मलिका की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। हमें एक अलग कमरा मिला। हमारी ख़ूब आवभगत की गई। कमांडर ने अपने घर में दावत दी।

हमने बस्ती की सैर की, संगीत प्रोग्राम देखा और जवानों को बर्फ़ से ढकी सुहानी वादी में स्कीइंग करते देखा। मलिका को विश्वास हो गया कि हमारा बेटा ठीक से रहता है, उसके खाने-पीने, कपड़ों का ठीक प्रबंध है। वह भले, अक़्लमन्द लोगों के बीच रहता है। हमें घर लौटना था। हमें फिर कार से स्टेशन पहुंचाया गया।

मलिका फिर ताहिर की ओर ताकती और नसीहतें देती जा रही थी:

"यहां सर्दी है, बेटे, कपड़े ठीक से पहना करो, ऊनी मोज़े पहनना न भूलना, नहीं तो सर्दी लग जायेगी।"

"सलामत रहो, बेटे!" कहकर मैंने ताहिर से विदा ली। और मलिका फिर उससे लिपट गई। नन्हे बच्चे की तरह उसे चूमती रही।

गाड़ी चल दी। अब हम घर जा रहे थे और ताहिर अपने साथियों के साथ प्लेटफ़ार्म पर खड़ा हमें विदा कर रहा था। मलिका खिड़की से उन्हें निहार रही थी।

"कितने अच्छे लोग हैं," उसने धीमे-से कहा।

मैंने उस पर नज़र डाली। वह शांतचित्त खड़ी मुस्करा रही थी और हाथ हिलाकर उन लोगों को विदा दे रही थी, जिन्हें उसने अपने बेटे को अब निश्चिंत होकर सौंप दिया था।

रहमत फ़ैजी

(जन्म – 1918-1988)

रहमत फ़ैजी गद्यकार हैं। हाई स्कूल पास करने के बाद उन्होंने ताशक़न्द इलेक्ट्रोमैकेनिकल पोलीटेक्नीक में शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् कुछ समाचारपत्रों व पत्रिकाओं के सम्पादक-मण्डलों में कार्य किया। युद्धोत्तर काल में उन्होंने अनेक लेख व कहानियाँ लिखीं, जो "शादी का तोहफ़ा" नामक संग्रह में सन् 1951 में प्रकाशित हुए। सन् 1969 में रहमत फ़ैजी का उपन्यास "हज़रत-ए-इनसान" प्रकाशित हुआ, जिसे सोवियत श्रम संघों की अखिल सोवियत परिषद तथा सोवियत संघ के लेखक संघ द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में समकालीन श्रमिक वर्ग के बारे में सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृति होने पर पुरस्कृत किया गया था।

सास

सवरी ख़ाला खेत से लौटते समय सबसे पहले किंडरगार्टन जाती थीं। हरे-भरे पौधों व वृक्षों से घिरे किंडरगार्टन में बच्चों की आवाज़ें और गाने गूँजते रहते थे। एक बालिका ज़ोर-ज़ोर से लोरी गाती हुई अपनी प्यारी गुड़िया को सुला रही थी। एक गोल-मटोल हंसमुख बालक अपने काठ के घोड़े पर सवारी करता उसे टिटकार रहा था। दूसरा गोल-मटोल बालक घुड़सवार को पीछे छोड़ता, ज़ोर से छुक-छुक करता चटकीले रंग के इंजन से जुड़े कई माल व सवारी डिब्बों को खींच रहा था। गेंद की धप-धप, झूलों पर ज़ोर की मचकियाँ लेती लड़कियों की हर्ष व भय मिश्रित चीख़ें – सब उस आह्लादक शोर में घुलमिल गया था, जो किंडरगार्टन के बाहर दूर-दूर तक गूंज रहा था।

सवरी ख़ाला रोज़ाना काम के बाद किंडरगार्टन में अपने पोते को लेने जाती थीं और हर बार बच्चों की आवाज़ें सुनते ही उनकी सारी थकान ग़ायब हो जाती थी। स्नेह की कोमल भावना उसका स्थान ले लेती थी। इन सुखद क्षणों की ख़ातिर सवरी ख़ाला अपने बुढ़ापे के बारे में भूल जाती थीं और अपनी पुत्रवधू का हाथ बंटाने के लिए वह ख़ुद पोते को किंडरगार्टन छोड़ने और लेने जाया करती थीं। रोज़ाना किंडरगार्टन जाना-आना उनका सबसे प्रिय कार्य हो गया।

"सलाम-अलैकुम, सवरी ख़ाला! दिन भर काम करने के बाद आपको यहाँ आना मुश्किल नहीं लगता? थक जाती होंगी," परिचारिकाएं वृद्धा से कहतीं।

"अरे, नहीं, कैसी थकान!" सवरी ख़ाला जवाब में कहतीं। "मेरी बहू गुलजहाँ भी, ख़ुदा उसे ख़ुश रखे, हमेशा मेरे बारे में परेशान होती रहती है। मैं उससे कहती हूँ: 'ऐसी बातों से मेरा दिल मत दुखाओ। मैं पोते को किंडरगार्टन छोड़ने जाती रही हूँ और जाती रहूंगी' सच कहूँ, मेरी प्यारी, सुबह तो मुझे इतना महसूस नहीं होता, पर शाम को इन हंसमुख शैतानों को देखते ही ख़ुशी के मारे फूली नहीं समाती हूँ। मैं अपने को कुछ जवान महसूस करने लगती हूँ, बदन में ताक़त आ जाती है।"

सवरी ख़ाला की इस तरह की बातें परिचारिकाओं को बहुत अच्छी लगती थीं। उन्हें वृद्धा के साथ बातचीत करने में बड़ा आनंद आता था और वे घंटों उनकी ज़िंदगी के क़िस्से सुनने को तैयार रहती थीं। उस बार भी यही हुआ।

... सवरी ख़ाला किंडरगार्टन के जालीदार फाटक में घुसीं, पर खेल में मस्त बच्चों के बीच उन्हें अपना क़ाबिलजान तुरंत नज़र नहीं आया। वृद्धा को प्यास लगी और वह नल के पास गयी। तभी युवा परिचारिका मुबारकख़ोन ने सवरी ख़ाला को देख लिया। उसने शीशे की सुराही से ठंडा उबला पानी प्याली में डालकर चुपचाप वृद्धा की तरफ़ बढ़ा दिया। "कितना ख़याल रखती है, कितना प्यार करती है!" सवरी ख़ाला ने युवा परिचारिका की मन में सराहना की और पानी पीकर उसका धन्यवाद किया:

"बहुत-बहुत शुक्रिया, मेरी बेटी! तुम्हारी ज़िंदगी भी पानी-सी साफ़ और ख़ुशियों से छलकती रहे।"

"बैठिये, थोड़ा सुस्ता लीजिये," मुबारकख़ोन ने वृद्धा को कुर्सी पर बिठाते हुए कहा।

सवरी ख़ाला बैठ तो गयीं, पर उनकी आंखें खेल रहे बच्चों में पोते को खोजती रहीं।

"कितनी ख़ुशी होती है मुझे बच्चों को सुखी देखकर," वह मुस्कराती हुई बोलीं। "चश्मे बद दूर! ... कहीं नज़र न लग जाये। मुबारकख़ोन, बताओ, वह लड़की सलतनतख़ोन की बेटी तो नहीं है?"

"हाँ, ख़ालाजान। यह उन्हीं की बेटी है," परिचारिका ने जवाब दिया।

"कितनी प्यारी है! गोल-मटोल, गोरी, एकदम गुड़िया लगती है, गुड़िया!"

"हमारे यहाँ, ख़ालाजान, सभी बच्चे ऐसे हैं," मुबारकख़ोन बोली। "सुंदर हैं, हंसमुख हैं, पर हैं शरारती..."

"करने दो उन्हें शरारतें! बड़े होते रहें, फूल-से खिलते रहें।"

"आप भी फ़ौरन इन शरारतियों की तरफ़दारी करने लगीं," मुबारकख़ोन मुस्करायी। "बचपन में क्या आप भी किसी का कहना नहीं मानती थीं?"

"वह भी कोई बचपन था," सवरी ख़ाला ने उदासी से सिर हिलाया। "हमारा कोई बचपन नहीं रहा। क्या देखा हमने अपने ज़माने में? हाँ, हम एक खेल खेला करते थे –'आक़ीज़ाक'। माँ जब बच्चे को पत्थर-सी सख़्त सूखी रोटी देती, वह उसे धागे से बाँधकर नहर के पानी में लटका देता। नहर के बहते पानी में रोटी घुमती रहती, बस इसे ही खेल मानते। खेल ख़तम होने पर बच्चा रोटी को पानी से निकालकर खा लेता। भीगने से रोटी ज़रा स्वादिष्ट हो जाती। मेरे और मेरी नन्ही सहेलियों के पास भी सरकंडों से बनी गुड़ियाँ हुआ करती थीं। रूई या चिथड़ों से बना गेंद भी किसी बच्चे को विरले ही नसीब हो पाता था। ऐसे ख़ुशनसीब बच्चों से हमें डाह होती थीं।"

"हाँ, बहुत कम ख़ुशियाँ नसीब हो पायीं आप लोगों को बचपन में," मुबारकख़ोन ने सहानुभूति प्रकट करते हुए ठंडी सांस ली।

"और कितने आँसू बहाने पड़ते थे औरतों को अपने बच्चा होने का इंतज़ार करते वक़्त! यह तो आजकल बच्चे को घर की रौनक़ माना जाता है, उस ज़माने में तो वह एक और फ़ालतू पेट था, जिसे भरना ज़रूरी होता था। बदक़िस्मत औरतें रो-रोकर अल्लाह से दुआ करती थीं कि वह बच्चों को ख़ुशक़िस्मत बनाये, उन्हें पेट भर रोटी दे। ऐसे में भला वे कैसे ख़ुशक़िस्मत हो सकते थे, कैसे उन्हें पेट भर रोटी मिल सकती थी! आह! ... तुम ज़रा सुनो, मेरा पहला बच्चा कैसे हुआ था। मैं अब पैंसठ की हो

चली हूँ, लेकिन वह दिन याद आते ही मेरा गला रुंध जाता है। मैं दर्द के मारे सारी रात छटपटाती रही और बच्चा सुबह की होन में जाकर पैदा हुआ। मेरी माँ सारी रात मेरे पास बैठी रहीं और दाई का काम उन्हीं ने किया। सफ़ाई कर भी न पायीं कि दिन निकल आया। उन दिन भी आज की जैसी गर्मी पड़ रही थी। मुझे बहुत ज़ोर की प्यास लगी, पर सास सोयी हुई थीं और उनकी इजाज़त के बिना हम कुछ नहीं ले सकती थीं। सूरज निकल आया, तब सास की नींद खुली और उन्होंने समोवार सुलगाया। तब जाकर मुझे दो प्याली गर्म चाय पीने को मिली। क़िस्मत से मेरी माँ की जेब में चीनी के तीन डले थे और उन्होंने वे मेरी चाय में डाल दिये।

इस तरह उन्होंने कम-से-कम मेरी जाती ताक़त को कुछ संभालने की कोशिश की। पर इसके अलावा उनके पास और कुछ नहीं था। सास ने एक दिन पहले बचे-खुचे आटे से बनी मक्का की सूखी बासी रोटी लाकर रखी। घर के लोग नाश्ता करने बैठे और पलक झपकते रोटी का कुछ न बचा। मेरी माँ हमदर्दी से मुझे और मेरे पति को देखती रह गयीं। सास से कुछ कहने की उन्हें हिम्मत नहीं हुई। पति की समझ में नहीं आ रहा था कि वह मेरी मदद कैसे करें। उनको किसी तरह चैन नहीं आ रहा था, कभी अहाते में चले जाते, तो कभी कमरे में वापस लौट आते। घर में बर्तन के पेंदे में पड़े कुछ चम्मच तिल के तेल के सिवा कुछ न बचा था। दोपहर होते-होते मेरा कमज़ोरी के मारे बुरा हाल हो गया। अगर मेरा मायका पास होता, तो माँ घर जाकर मेरे लिए कुछ बना लातीं, पर उनका घर बहुत दूर था।

फिर मैंने देखा कि मेरे पति, जो नाश्ते के फ़ौरन बाद कहीं चले गये थे, आटे के ख़ाली थैले में कुछ लेकर आये हैं। उन्होंने सीधे बरामदे में जाकर थैला सास को दे दिया। सास ऐसे उचककर उठीं, जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो, और पति को अपने कमरे में ले गयीं। 'उफ़, कहीं वह हल्ला न मचा दें!' मैं डर के मारे सोचने लगी। वही हुआ। सास ने ऐसा शोर मचाया कि सारे घर को सिर पर उठा लिया। मैंने सास को चिल्लाते सुनाः 'बड़ा आया है! बीवी की तो इतनी फ़िक्र करता है, और कल मुझे

झाड़-फूंक करनेवाली के लिए भी पैसे नहीं देते बने!' और वह लगीं मेरे अभागे पति को कोसने। मैं और मेरी माँ सहमी हुई बस एक दूसरे को देखती रहीं। पति भड़ाक से दरवाज़ा बंद करके चुपचाप चले गये। मैंने देखा, सास नाक-भौं सिकोड़े थैला उठाकर बावर्चीख़ाने में चली गयीं। थोड़ी देर बाद वह मेरे पास आधा प्याला आटे की लापसी लेकर आयीं। वह तब मेरे गले के नीचे न उतरी। बाद में मुझे मालूम पड़ा कि मेरे पति सिर्फ़ आधा सेर आटा ही ला पाये थे..." सवरी ख़ाला ने ठंडी सांस ली। "पहले ऐसा ही हुआ करता था।"

"आपकी सास कितनी गुस्सैल और बेरहम थी," मुबारकख़ोन ने सहानुभूति प्रकट की।

"बस, पूछो मत, बेटी! एक भी दिन ऐसा नहीं निकलता था, जब घर में कलह न होता। कभी सास मुझे इसलिए फटकारतीं कि मेरा पति मुझे कभी-कभी उनसे छिपाकर कुछ दे जाता है, तो कभी ताने मारतीं कि मैं अपने पति को उनके ख़िलाफ़ भड़काती हूँ। ओह! जीना हराम था। सास मरीं मेरे तीसरा बच्चा होने के बाद। इतने साल हो चुके हैं उन बातों को, मैं अपने सारे बेटों की शादियाँ कर चुकी हूँ, ख़ुद सास बन चुकी हूँ, पर मुसीबत के वे दिन आज तक नहीं भूल पाती हूँ। बेशक अब मैं समझती हूँ कि इसमें सास का इतना क़सूर नहीं था। आख़िर गुस्सा उन्हें ग़रीबी के कारण ही तो आता था, जाहिली और नासमझी के कारण। मेरी अब एक नहीं, तीन बहुऐं हैं। छोटी मेरे साथ रहती है। मुझे उनमें से किसी से कोई शिकायत नहीं है, मैं सबकी शुक्रगुज़ार हूँ, ख़ुदा उन्हें ख़ुश रखे।"

"आप जैसी सास हो, तो बहुएं हमेशा सुखी रहेंगी," मुबारकख़ोन ने कहा।

"इतनी देर बैठ गयी मैं आपके यहाँ," सवरी ख़ाला उठ खड़ी हुई। "मुझे घर जाना चाहिए।"

वृद्धा मुबारकख़ोन के साथ क़ाबिलजान को खोजती हुई बग़ीचे के अंदर गयी। सवरी ख़ाला की नज़र पोते पर पहले पड़ी। क़ाबिलजान एक बड़े पेड़ के तले खिलौना-ट्रक में छोटे-से बेलचे से रेत डाल रहा था। दादी को देखते ही वह भागकर उसके पास आ गया।

"दादी, आप मुझे लेने आयी हैं? घर चलेंगे?"

"जल्दी से हाथ धो ले, मुन्ने। फिर चलते हैं।"

"ओहो, दादी, मुझे एक ट्रक रेत और ले जानी है।"

"बाद में ले जाना, लाड़ले, अभी मैं बहुत जल्दी में हूँ।"

दादी और पोता किंडरगार्टन से अपने घर की ओर चल पड़े। उन्हें देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि वे दादी और पोता है। सवरी ख़ाला अपनी उम्र से काफ़ी कम की नज़र आती थीं। वह दरमियाने क़द की थीं, उनके गाल लाल थे, मोटापे के बावजूद वह काफ़ी फुर्तीली थीं, तेज़ी से मज़बूत क़दम रखती चलती थीं और उनकी कमर बिलकुल नहीं झुकती थीं।

विशाल लाल सूरज क्षितिज के पीछे ओझल होता जा रहा था। सड़क के किनारे-किनारे उगे पोपलारों की छायाएँ लंबी होकर सारी सड़क को ढकती चली जा रही थी। सफ़ेदी किये हुए, हरियाली में डूबे घरों में से रेडियो की आवाज़ें आ रही थीं। कुछ घरों से धुएँ की पतली लकीरें वृक्षों की पत्तियों में से छन-छनकर शाम की हवा के ऊपर वैसे ही तैर रही थीं, जैसे पानी के ऊपर तेल।

सवरी ख़ाला अपने से दो-तीन क़दम आगे दृढ़, धीमे क़दमों से चल रहे पोते को मन-ही-मन सराहती जा रही थीं। वह क़ाबिलजान की बातों को ध्यान से सुन भी नहीं रही थीं। वह जो भी कहता या पूछता, उसके जवाब में वह केवल स्वीकृति में सिर हिला देतीं। वृद्धा का अपने छोटे बेटे का बचपन याद आ रहा था। साबिर जब चार साल का था, वह हू-बहू क़ाबिलजान जैसा लगता था। वैसी ही धीमी चाल, वैसी ही विश्वसनीयता—यह सब क़ाबिलजान को अपने पिता से मिला था। यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता था कि बड़ा होने पर क़ाबिलजान हू-बहू अपने पिता साबिर जैसा हो जायेगा।

सवरी ख़ाला को वह दिन याद हो आया, जब वह चार बरस के साबिर को गोदी में लिये इसी रास्ते से मीटिंग में गयी थीं। तब यह सड़क कहाँ थी, सिर्फ़ कीचड़ से भरी पगडंडी थी। लेकिन वह पगडंडी चायख़ाने की तरफ़ जाती थी, जिसमें उस शाम हाल ही में स्थापित "अक्तूबर का

सूरज" सामूहिक फ़ार्म के सदस्यों की प्रथम सभा हो रही थी। सभा रात देर गये समाप्त हुई। सवरी ख़ाला ने बेटे को पीठ पर बिठा लिया और कीचड़ पर फिसलती, ठोकरें खातीं धीरे-धीरे चलती रहीं। साबिरजान माँ के कंधे पर सिर रखकर सो गया। घुप अंधेरा था। अगर इक्के-दुक्के राहगीरों की लालटेनों की रोशनी सड़क पर न पड़ती रहती, तो सवरी ख़ाला शायद ही अपने घर पहुँच पातीं। आधा रास्ता पार करते-करते बारिश होने लगी। सवरी ख़ाला ने अपनी चाल तेज़ कर दी, पर तभी ऊबड़-खाबड़ फिसलन-भरी पगडंडी पर ठोकर खाकर फिसल गयीं और गाढ़े, ठंडे कीचड़ में जा गिरीं। भयभीत साबिरजान कर्णभेदी आवाज़ में चीख़ उठा।

बच्चे को उठाकर सवरी ख़ाला ने जल्दी-जल्दी उसका बदन टटोला। "शुक्र है कि इसे कुछ नहीं हुआ, कहीं चोट नहीं लगी", उन्होंने चैन की सांस ली। बेटे को किसी तरह चुप कराके सवरी ख़ाला उसके कपड़ों से कीचड़ पोंछने लगीं, तब उन्होंने देखा कि साबिरजान का रबड़ का एक जूता कहीं गिर गया है। सवरी ख़ाला ने अंधेरे में काफ़ी देर तक ठंडे कीचड़ में हाथ से टटोला, पर जूता नहीं मिला। देर आधी रात गये भीगी, ठिठुरती सवरी ख़ाला घिसटती-घिसटती किसी तरह घर पहुँची।

लेकिन उस बारिशवाली ठंडी रात को सवरी ख़ाला पर जो गुज़री वह उसके सामने कुछ भी नहीं थी जो उन्हें घर लौटने पर सहना पड़ा। साबिरजान के खोये रबड़ के जूते को लेकर उनकी सास ने आसमान सिर पर उठा लिया। उसने सुबह तक बहू को एक मिनट भी चैन नहीं लेने दिया।

"तेरे बेटे के जूते तेरी कमाई से थोड़े ही खरीदे गये थे," क्रोधोन्मत्त बुढ़िया फुफकार उठी। "मियाँ को दफ़नाये देर भी नहीं हुई कि घूमने निकल पड़ी..."

इस अन्यायपूर्ण व अनुचित अपमान से सवरी ख़ाला के दिल को गहरी ठेस लगी। अपने दिल के दर्द को वह सिर्फ़ आँसू बहाकर ही कम कर सकीं।

अतीत के दृश्य सवरी ख़ाला की आँखों के आगे घूम रहे थे। वह दुखी दिल से अपनी जवानी को याद कर रही थीं, जिसमें उनकी ग़ुस्सैल और कंजूस सास ने विष घोल दिया था, इसके बावजूद उन्हें मूर्ख, झगड़ालू बुढ़िया पर दया आयी।

"वह अभावों से भरी ज़िंदगी और दुख के कारण ऐसी हो गयी थीं," सवरी ख़ाला ने सोचा। "उन्हें ग़रीबी और भूख ने ऐसा बना दिया था। उनकी मौत भी जल्दी हो गयी, उन्हें देखना नसीब न हो सका कि हम सामूहिक फ़ार्म में कैसी ज़िंदगी जी रहे हैं। और अगर देख लेतीं, तो विश्वास नहीं होता। कहतीं: 'यह तो मैं सपने में देख रही हूँ!"

क़ाबिलजान दौड़कर नहर के पास गया। वह पानी में बहते सेब को पकड़ना चाहता था। लेकिन सवरी ख़ाला पोते का हाथ पकड़कर उसे नहर से दूर ले गयीं। उन्हें एक दिन पहले मिला बेटे का पत्र याद आ गया। साबिरजान ने लिखा था कि वह तीनेक सप्ताह में छुट्टी पर घर पहुंच जायेगा और कपास चुनने में उनकी मदद करेगा। उसने उनसे यह लिखने को भी कहा था कि उन्हें मास्को से क्या-क्या चाहिए।

पोते का ध्यान नहर में बहते सेब से हटाने के इरादे से सवरी ख़ाला ने उससे पूछा:

"अच्छा, क़ाबिलजान, बताओ, तुम्हारे अब्बा मास्को से तुम्हारे लिए क्या लायेंगे?"

"साईकिल," लड़के ने बिना सोचे जवाब दिया। "और हवाई जहाज़ भी," उसने पल भर बाद कहा।

सवरी ख़ाला घर पर पोते के कपड़े बदलकर उसे पाजामा पहना ही पायी थी कि कमरे में उनकी देवरानी रिसालत ख़ाला आ गयीं।

"आइये, आइये, प्यारी रिसालतख़ोन," सवरी ख़ाला ने मेहमानिन से कहा। "तशरीफ़ लाइये। आज यह ईद का चाँद किधर से निकल आया? कब से नहीं मिलना हुआ है आपसे?"

"हाँ, कुछ बीमार रहती हूँ," रिसालत ख़ाला ने नर्म स्वर में कहा।

"डाक्टर को नहीं दिखाया?"

“डाक्टर के पास गयी तो थी, पर उसे ख़ाक समझ में नहीं आया। कहता है कि मुझे कोई बीमारी नहीं है। जब कि मुझे लगता है, मुझे नज़र लग गयी है। नज़र ही लगी है ...” रिसालत ख़ाला कराहते और मुंह बनाते हुए बोली।

“भाड़ में जाये यह नज़र-वज़र! आये हफ़्ते आप पर इसका असर हो जाता है,” सवरी ख़ाला ने उपेक्षापूर्वक कहा।

“हाय, आप ऐसा क्यों कहती हैं!”

“छोड़िये यह सब! मुझे सारी ज़िंदगी नहीं मालूम पड़ा कि यह नज़र-वज़र होती क्या है,” सवरी ख़ाला ने क़ाबिलजान को संवारते हुए जवाब दिया। “सास भी, जब कभी उनकी नींद पूरी नहीं हो पाती, जंभाइयाँ लेतीं, कराहतीं और सारा घर सिर पर उठा लेती थीं: ‘हाय, मुझे नज़र लग गयी!’ कभी मैं कह देती: ‘भाड़ में जाये यह नज़र-वज़र!’ तो मेरी ही शामत आ जाती।”

रिसालत ख़ाला ने यह महसूस करके कि उनकी कल्पित बीमारियों की बातों से बुढ़िया की सहानुभूति नहीं मिलेगी, तो उन्होंने बात का रुख़ बदल दिया:

“अरे, अब बस भी कीजिये, बहुत सजा-संवार लिया अपने पोते को,” उन्होंने कटाक्ष किया। “यह क्या आपके लिए संगमरमर की यादगार बनवायेगा?”

“बनवाये या नहीं, बस यह लंबी उम्र पाये और सुखी रहे। मेरे बेटे का बेटा मेरे लिए भी सगे बेटे जैसा है, प्यारी बहन। मैं इसकी संभाल किये बग़ैर नहीं रह सकती। अरे, मैं भी क्या,” सवरी ख़ाला को अचानक ध्यान आया। “बैठिये, बहन, इस तख़्त पर बैठिये, मैं अभी आयी ...”

रिसालत ख़ाला अहाते के बीचोंबीच रखे तख़्त पर बैठ गयीं। तख़्त पर क़ालीन और गद्दे बिछे थे हालांकि वह काफ़ी मज़बूत था, पर रिसालत ख़ाला के वज़न के कारण उसी क्षण चरमरा उठा। सवरी ख़ाला पोते को खेलने के लिऐ बाहर छोड़कर समोवार सुलगाने लगीं।

रिसालत ख़ाला अनायास ही कोहनी घुटने पर टिकाकर रूमाल से हवा करने लगीं। उनकी अतलस की पोशाक की चौड़ी आस्तीन नीचे खिसक आयी और हाथ दिखाई देने लगा। अब कोई भी देख सकता था कि रिसालत ख़ाला के दायें हाथ में सोने के दो मोटे कड़े पड़े हैं। वह रह-रहकर रूमाल की तह करके उसके कोने से माथा भी पोंछती जा रही थीं, ताकि सवरी ख़ाला का ध्यान अपनी ओस्मा* लगी भौंहों की तरफ़ खींच लें।

देवरानी की हरकतों से सवरी ख़ाला को चिढ़ हो रही थी, पर वह बूढ़ी छैल-छबीली की तरफ़ ध्यान न देने की कोशिश कर रही थीं। उन्होंने चूल्हा सुलगाया और देग में तेल डालकर उस पर चढ़ा दिया, फिर एक थाल में मिठाइयाँ रखकर रिसालत ख़ाला के सामने बिछाये दस्तरख़ान पर रख दिया।

"लीजिये, प्यारी बहन, खाइये," उन्होंने मेहमानिन से कहा और पुलाव के लिए गाजर छीलने लगीं।

"सवरी बहन," रिसालत ख़ाला ने नान का टुकड़ा मुरब्बे में डुबाते हुए पूछा, "क्या तुम्हारी बहू गुलजहाँ हमेशा देर से घर लौटती है?"

"नहीं, वह कभी देर से नहीं आती, बशर्ते कि कार्यालय में बैठक न हो। ऐसे में भी वह घर आकर खाना खाती है और बता जाती है कि वह बैठक में जा रही है। पर हाल ही में उसे भी काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी थी – जब कपास-उत्पादक इस बात की जाँच करने आये थे कि हम समाजवादी प्रतियोगिता में किये गये वादों को किस तरह पूरा कर रहे हैं। फिर वह परेशान होती भी कैसे नहीं: आख़िर लोग हवाई जहाज़ से आकर हमारी कपास देखनेवाले थे, जबकि गुलजहाँ की कपास की बाढ़ रुक गयी थी। उसे टोली के साथ कड़ी मेहनत करके अतिरिक्त खाद डालनी पड़ी, ताकि प्यारे मेहमान कपास की बुरी हालत देखकर मायूस न हों। कुछ नहीं हुआ, उसने काम पूरा कर लिया, कपास की हालत सुधार ली और दूसरों से इस मामले में पीछे नहीं रही।"

* ओस्मा – एक प्रकार की बूटी जिसके रस से भौंहों को रंगा जाता है।

"वह पीछे ही नहीं रही, बल्कि दूसरों से आगे भी निकल गयी। बड़ी क़िस्मतवाली है आपकी बहू।"

"बिना मेहनत किये कामयाबी नहीं मिलती, प्यारी बहन। फिर मेहनत अकेली गुलजहाँ ने ही तो नहीं की थी। सबसे ज़्यादा काम ट्रैक्टर-चालकों ने किया, ख़ुदा उन्हें ख़ुश रखे। उन्होंने मदद की। और आजकल तो गुलजहाँ का काफ़ी वक़्त इम्तिहानों की तैयारी में लग जाता है।"

"इम्तिहान?" रिसालत ख़ाला को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, इम्तिहान, क्या आपको सचमुच मालूम नहीं?" सवरी ख़ाला ने असंतोष के साथ कहा। "आप भी अजीब हैं। यह अच्छा है कि आपका और हमारा सामूहिक फ़ार्म पड़ोस में है। वरना अगर आप थोड़ी दूर रहती होतीं, तो आपको कुछ भी मालूम नहीं पड़ता।"

"हाँ, वैसे मैंने कुछ सुना तो था, पर सोचा ... कोई मामूली कोर्स होगा।"

"यह कोई कोर्स नहीं है, गुलजहाँ तो दसवीं का इम्तिहान देने जा रही है। हाँ, हाँ, दसवीं का। उसे दो साल के लिए पढ़ाई छोड़नी पड़ गयी थी। इम्तिहान काफ़ी मुश्किल थे, पर अब कुछेक ही बाक़ी रह गये हैं। हमारा अध्यक्ष अच्छा है, समझदार है, उसने उसे दूसरे कामों से छुट्टी दे रखी है। बोलाः 'अभी तो बस टोली पर नज़र रखो'।"

"अच्छा," रिसालत ख़ाला चौंक पड़ी। "यानी अब उसे टोली-नायक के काम से हटा दिया गया है।"

"टोली-नायक के काम से नहीं, दूसरे कामों से छुट्टी दी गयी है उसे," सवरी ख़ाला ने जवाब दिया और देग के पास चली गयीं, जिसमें पुलाव पक रहा था। बात अपने आप टूट गयी, रिसालत ख़ाला कुछ मिनट सोच में डूबी बैठी रहीं।

रिसालत ख़ाला की उम्र पचास से काफ़ी ऊपर थी, पर वह अपनी बीती जवानी की आदतों को किसी तरह छोड़ना नहीं चाहती थी। उन्हें सजना-संवरना, भड़कीले कपड़े, सोने के ज़ेवर पहनना, ओस्मा से भौंहें

रंगना और पाउडर लगाना बड़ा अच्छा लगता था। अपनी किसी सहेली के बेटे या बेटी की शादी में जाते समय वह कभी हथेलियों और नाख़ूनों पर मेहदी रचाना या आंखों में सुरमा डालना नहीं भूलती थीं। पर इन सारी तरकीबों के बावजूद वह जवान नहीं, बल्कि और ज़्यादा बूढ़ी लगती थीं। पाउडर से उनकी त्वचा का पिलपिलापन और चेहरे की झुर्रियाँ और अधिक स्पष्ट हो उठती थीं। कोई भी रिश्तेदार या परिचित रिसालत .खाला से इस बारे में कभी कुछ नहीं कहता था, बस अकेली सवरी ख़ाला ही थीं, जो उन्हें चैन से नहीं रहने देती थी। वह रिसालत खाला को हिदायतें देती हुई कहती थीं: "औरत की क़ुदरती ख़ूबसूरती को चार चांद सोने के ज़ेवरों से नहीं, बल्कि मेहनत और सादगी से लगते हैं।" एक बार उन्होंने दूसरी औरतों के सामने रिसालत ख़ाला के मुंह पर कह दिया था: "अगर कोई वह सारा पाउडर, सुरमा और मेहंदी, जो मेरी प्यारी बहन इस्तेमाल करती हैं, उतारकर किसी व्यापारी को दे दे, तो वह एक पूरी दुकान खोल ले।"

हँसते-हँसते औरतों के पेटों में बल पड़ गये। रिसालत ख़ाला का चेहरा तमतमा उठा, पर वह जवाब में कुछ न कह सकी। तब से यही होता रहा। देवरानी जब कभी कुछ ऐसी-वैसी बात कहती या कुछ बुरा करती, सवरी ख़ाला सीधे उसके मुंह पर सच्ची बात कह देतीं। रिसालत ख़ाला बुरा मानतीं, अपनी जेठानी से न मिलने की मन-ही-मन क़समें खातीं, पर उनसे रहा न जाता और वह फिर सवरी ख़ाला के पास पहुंच जातीं। इस बार भी रिसालत ख़ाला अपनी क़िस्मत का रोना रोने आयी थीं, पर उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि बात कैसे शुरू की जाये। उनके लिए सबसे अहम था अपने को अकारण कष्ट भोगनेवाली सिद्ध करना।

इस बीच सवरी ख़ाला ने चाय बना ली और समोवार को तख़्त के किनारे पर रख दिया, फिर प्याली में चाय डालकर रिसालत ख़ाला को दी:

"लीजिये, प्यारी बहन!"

उसी क्षण टेलीफ़ोन की घंटी बजी और वृद्धा "हां, हां, सुन रही हूँ, अभी आयी," कहती जल्दी से कमरे में गयी। रिसालत ख़ाला चाय की चुस्कियाँ लेती हुई टेलीफ़ोन पर हो रही बातचीत को ध्यान से सुनने लगीं।

"हाँ, हाँ," सवरी ख़ाला की आवाज़ सुनाई दी। "सब तैयार है। अभी चावल डाल रही हूँ। तुम खाना खाये बिना कैसे ... कौन-से आड़ू?! अरे, तुम क्यों परेशान होती हो, तुम्हें भला आड़ूओं के लिए फ़ुरसत है आजकल? कोई बात नहीं, मत घबराओ! हिम्मत से काम लो, बिटिया! सबसे मुश्किल इम्तिहान तो तुम दे चुकी हो, यह तो आख़िरी है! फ़िक्र मत करो, सब दे लोगी! तुम कामयाब हो, मेरी प्यारी बिटिया!"

वृद्धा चोंगा रखने भी न पायी कि रिसालत ख़ाला ने चिल्लाकर पूछ लियाः

"क्या हुआ, बहन? सब ख़ैरियत तो है?"

सवरी ख़ाला बिना कुछ बोले कमरे से निकलकर मेहमानिन के सामने बैठ गयी और धीरे से बोलीं:

"गुलजहाँ ने फ़ोन किया था। आज वह आख़िरी इम्तिहान दे रही हैं। बोली, शाम को खाना खाने नहीं आयेगी। देखिये, मेरी हालत कैसी हो रही है," सवरी ख़ाला ने सकुचाते हुए दिल पर हाथ रखकर कहा। "इम्तिहान बहू दे रही है और दिल मेरा धक-धक कर रहा है ... कहती थी, यह आख़िरी और सबसे मुश्किल इम्तिहान है। मैंने उसका हौसला बढ़ाया, पर ख़ुद ... याद है, जब बहुत दिन हुए सामूहिक फ़ार्म में हमारे लिए स्कूल खोला गया था। एक बार मैं बिना पाठ तैयार किये स्कूल गयी थी। उफ़, कितनी शर्म आयी थी मुझे उस दिन ... इससे बुरा कभी नहीं हो सकता। ख़ुदा करे, मेरी बहू अच्छे नंबरों से पास हो। अरे, यह क्या, प्यारी बहन, आप तो कुछ भी नहीं खा रही हैं। मुरब्बा और हलवा तो चखिये," सवरी ख़ाला को अचानक ध्यान आया और वह खिली मुस्कान के साथ फिर जवान बहू के बारे में बात करने लगीः "ख़ुद इम्तिहान के मारे परेशान रहती है, पर मेरा ख़याल रखती है। न जाने क्यों मुझे आड़ू बहुत पसंद हैं। कभी-कभी सोचती हूं कि कहीं माँ ने मुझे आड़ू के पेड़ तले तो पैदा नहीं किया था। गर्मी शुरू होती नहीं कि मेरे लिए आड़ू सबसे पहले चाहिए। हमारे अपने आड़ू तो ख़तम हुए तीन दिन हो चुके हैं। गुलजहाँ फ़ोन पर कह रही थी कि उसने सामूहिक फ़ार्म के बाग़ से एक

बालटी आड़ू मंगाये हैं, पर अभी घर नहीं आ सकी, इसलिए बालटी उठाये स्कूल चली गयी। क्या ज़रूरत है उसे इतना परेशान होने की!"

बयार के ताज़े झोके से वृक्षों की पत्तियाँ सरसरा उठी। अहाते में झुटपुटा घिर आया। बाहर से बच्चों की आवाज़ें आनी बंद हो गयी। सायंकालीन नीरवता व्याप्त हो गयी। केवल सड़क से गुज़रती इक्की-दुक्की मोटरों का शोर जब-तब सुनाई दे जाता था।

सवरी ख़ाला बिजली जलाकर पोते को घर में लाने के लिए फाटक की तरफ़ गयीं। पर क़ाबिलजान ख़ुद ही हाथों में खिलौना हवाई जहाज़ लिये भागा-भागा घर में आ गया। सवरी ख़ाला ने पोते के हाथ-मुँह धुलाकर उसे तख़्त पर बिठा दिया।

"क़िस्मत से आपको बहू अच्छी मिली है," रिसालत ख़ाला क़ाबिलजान पर नज़र डालकर बोली। "लेकिन मुझे यह सुख नसीब नहीं हुआ। मैंने दो बार बेटे की शादी की ... न पहली बहू अच्छी निकली, न दूसरी..."

"ऐसा क्यों?" सवरी ख़ाला ने विरोध किया। "आपकी यह बहू अच्छी है, होशियार है, ख़ूबसूरत है, सबको प्यार करती है। आपको इतनी तुनुकमिज़ाजी नहीं दिखानी चाहिए, प्यारी।"

"सच कहा है किसी ने – कोई क्या जाने पीर परायी। आप ज़रा एक बार सुनकर देखिये उसकी बातें, सवरी बहन। कैसी ज़बान है उसकी! बाप रे बाप! मेरी तो नाक में दम आ गया है!"

सवरी ख़ाला पुलाव को अच्छी तरह पकने देने के लिए देग पर ढक्कन रखकर पोते के पास आ बैठी। दिन भर खेल-कूदकर थका क़ाबिलजान ठुनकने लगा। पोते को मिठाई से चुप कराके सवरी ख़ाला ने रिसालत ख़ाला की बात का विरोध किया:

"परायी पीर जान पाना मुश्किल होता है, यह सच है। लेकिन एक तो मैं आपके लिए पराई नहीं, अपनी हूँ। हम कभी-कभार ही सही, पर मिलते रहते हैं। और आपकी बहू को मैं उसकी पैदाइश के दिन से जानती हूँ। दूसरे आपके मुंह से अपनी बहू की बुराई मैं पहली बार नहीं सुन रही

हूँ। मेरी प्यारी, हर जगह हर किसी के सामने कहना कि मेरी बहू ऐसी है, वैसी है, अच्छा नहीं होता।"

"आप तो मुझे बुरा ही बुरा कहती हैं," रिसालत ख़ाला नाराज़ हो गयीं। "जब कि मैं कड़वे आँसू पी-पीकर ऊब चुकी हूँ। मरी जगह कोई और होती तो कभी की सब छोड़-छाड़कर चली गयी होती, पर मैं ही हूँ, जो सब सहन करती रहती हूँ..."

सवरी ख़ाला रिसालत ख़ाला का झगड़ालू स्वभाव भली-भांति जानने के कारण उनकी शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं देती थीं। लेकिन रिसालत ख़ाला के अंतिम शब्द सुनकर वृद्धा ने सोचा कि ज़रूर कोई ग़ैरमामूली बात हो गयी है।

"आख़िर क्या हुआ ऐसा?" सवरी ख़ाला ने पूछा।

"तो लो सुनो, बहन। आप तो ख़ुद जानती हैं कि रिश्तेदारों से जितना ज़्यादा मिलना-जुलना होता है, उतना ही उनसे प्यार बढ़ता जाता है। मैं आख़िर रिश्तेदारों के पास जाये बिना कैसे रह सकती हूँ। मैंने सुना कि मेरी छोटी बहन हलीमा की बहू बेटे की शादी करने जा रही है। मैं उनके यहाँ जाकर, भले ही जल्दी-जल्दी में सही, बधाई दिये बग़ैर कैसे रह सकती थी? अच्छा नहीं लगता। हाँ, तो मैं परसों सुबह शहर के लिए रवाना हो गयी। पहले बहन के यहाँ गयी, फिर उसकी बहू के पास, उसने मुझे किसी तरह जाने ही नहीं दिया, रात को वहीं रहना पड़ा। कल सुबह उसकी पड़ोसन ने मुझे बुला लिया। सभी लोग बड़े मेहमाननवाज़ हैं, आप ख़ुद ही जानती हैं, इनकार करना अच्छा नहीं लगता। मैं कल शाम को ही घर लौट पायी। इससे पहले एक हफ़्ते तक मेरी तबीयत कुछ ख़राब रही थी, तिस पर मोटर में हचकोले खाने पड़े। थकी-हारी कमरे में पहुँची, तब मेरी बहू को खाना पकाने की सूझी। उसने मेरी तरफ़ तिरछी नज़रों से देखकर कहा: 'माँ, आप इतनी देर रुक कैसे गयी?' और ख़ुद पलटकर बावर्चीख़ाने में चली गयी।"

"फिर ... क्या हुआ? आपने क्या जवाब दिया?" सवरी ख़ाला ने उनकी बात काट दी।

"वही, जो आप भी मेरी जगह दे सकती थी। मैं मटरगश्ती करने थोड़े ही गयी थी, ज़रूरी काम से गयी थी। थक गयी थी।"

"आख़िर आपने बहू से कहा क्या?"

"वही, जो कहना चाहिए था। मैंने कहाः 'मैं क्या आपसे इजाज़त लेकर जाया करूं?' फिर मैं दिल को ठेस लगने से रो पड़ी और तभी बेटा कमरे में आया। मैंने उसे सारी बात सच-सच बता दी। बेटे ने बहू को मेरे सामने लाकर हममें सुलह करवा दी। किसी तरह सब ठीक हो गया, पर मैं कमरे में जाकर आराम करने के लिए लेटनेवाली ही थी कि बेटा अपनी छोटी बेटी को लिये मेरे कमरे में आ पहुँचा। देखिये उसे, वह चाहता था कि उसे खेलाऊं। 'जाओं, जाओ,' मैंने उससे कहा। 'मुझे परेशान मत करो। अपनी बीवी से कहो, ज़बान चलाने के बजाय बच्चे की संभाल किया करे।" आप ख़ुद ही सोचिये, मुझे क्या बुरा नहीं लगेगा। बस फिर कहा-सुनी शुरू हो गयी। मैंने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया। दिल की सारी भड़ास निकाल ली। मैंने कहाः 'मैं तेरी नौकरानी नहीं हूँ' कहने का मतलब है, पड़ोसी जमा हो गये ... यह सब मेरी बहू की करतूत है। ख़ुद तो मुझसे कुछ नहीं कह सकती, पर अपने मियाँ के कान भर्ती रहती है, मेरे ख़िलाफ भड़काती रहती है, उसे गुमराह करती है। और पड़ोसी भी कहने लगेः 'रिसालत ख़ाला, ग़लती आपकी है!' हाँ, तो आपको यह सब सुनकर कैसा लगता है, मेरी प्यारी!"

"हाँ, बेशक, ग़लती आप ही की थी," सवरी ख़ाला को क्रोध आ गया। "जब आपने कहा कि आप आँसू पीते-पीते उकता चुकी हैं, तो मुझे सचमुच यक़ीन आ गया था कि आप पर भारी मुसीबत आ पड़ी है, पर मालूम पड़ा, यह तो वही पुराना घिसा-पिटा क़िस्सा है।"

"हाय, हाय, आप भी क्या, प्यारी बहन! मुझे पूरी बात तो कहने दीजिये ..."

"अरे, छोड़िये भी, मैं ऐसी बातें पहली बार तो सुन नहीं रही हूँ। आपके मुंह पर कहती हूँ। आप बाबा-आदम के ज़माने की सास की तरह पेश आती हैं। आप अपनी ज़बान पर बहू की नौकरानी होने की बात

लायीं कैसे? आपको शर्म नहीं आतीं?! 'नौकरानी' जैसा लफ़्ज़ आपको सूझा कैसे? आपके बेटा और बहू दिन भर काम करते रहते हैं, और आप हैं कि उनकी मदद ही नहीं करना चाहतीं – न खाना पकाना चाहती हैं, न बच्चों को खेलाना चाहती हैं। काम करना नहीं चाहतीं और चिल्लाती रहती है कि आपको नज़र लग गयी है, झाड़-फूंक करनेवालियों के चक्कर लगाती रहती है, पर लोगों के यहाँ दावत पर जाते वक़्त हट्टी-कट्टी रहती हैं। कहने को तो अपने को बीमार बुढ़िया कहती हैं, पर सजती-संवरती ऐसे हैं जैसे अठारह बरस की लड़की हों।"

"हाय, आप भी मुझ पर पिल पड़ी," घबराहट में आंखें मिचमिचाती रिसालत ख़ाला ने शिकायत-भरे स्वर में कहा।

"ज़रा ठहरिये, अभी मेंने अपनी बात पूरी नहीं की है," सवरी ख़ाला ज़रा ऊंचे स्वर में बोली। "अगर आप हमारे सामूहिक फ़ार्म में होतीं, तो मैं आपकी नाक में दम कर देती। अच्छा, बताइये, आप मुझसे कितने साल छोटी हैं? आठ-दस साल! ... तो फिर आप काम क्यों नहीं करती हैं? मैं क्यों काम करती हूं? क्या मेरा गुज़ारा नहीं होता है? बदज़बान ऐसा भी कहते हैं। कहते रहें। पर आपको तो अच्छी तरह मालूम है मुझे कपास की खेती से हटाकर बावर्ची बना दिया गया। मैं नहीं चाहती थी। पर अध्यक्ष ने कहाः 'नहीं हो सकता। आपका बुढ़ापा आ गया है।' बहू भी नहीं चाहती कि मैं काम करूँ। लेकिन आख़िर मैं क्यों काम करती हूँ? मेरी हमउम्र क्यों काम करती हैं? आप यही तो नहीं समझती हैं। जब लोग कहते हैंः 'वह काम करता है,' आप सोचती हैंः 'वह कमाता है।' बात कमाने की नहीं है। असली बात तो यह है, अगर आप जानना चाहती हैं, यह मेहनत ही है जो आदमी को सच्चा इनसान बनाती है। मेहनत आदमी को सोचने, सारी बातों पर विचार करने, सब कुछ समझने के लिए मजबूर करती है। मेहनत और अक़्ल मिलकर एक और एक ग्यारह हो जाते हैं। यही बात तो आप नहीं समझती हैं। आप अपने सामूहिक फ़ार्म में कहीं कोई काम नहीं करना चाहती हैं। लेकिन यह गांठ बांध लीजिये कि एक हाथ से ताली नहीं बजती है। आपकी क़िस्मत से आपकी बहू सीधी-सादी, तमीज़दार है। दूसरी कोई होती, तो ... आप

अपनी पोती तक को नहीं खेलाना चाहती, यह कोई अच्छी बात है? सारा सामूहिक फ़ार्म, आपका सारा ख़ानदान काम पर होता है, जब कि आप लोगों की मेहमान बनी फिरती रहती हैं। ऐसी बातें कानों को खटकती ही हैं। मुझे तो उन लोगों पर गुस्सा आता है, जो किताबें लिखते हैं। उन्हें आप सरीखे लोगों के बारे में लिखना चाहिए, उनका पर्दाफ़ाश करना चाहिए। अफ़सोस, मुझे लिखना ज़्यादा नहीं आता, वरना ख़ुद ही सबसे पहले आपके बारे में लिख डालती," सवरी ख़ाला ने अपनी बात कुछ परिहासमिश्रित कड़े शब्दों में पूरी की और प्याली रखकर जल्दी से चूल्हे के पास गयीं।

रिसालत ख़ाला ज़मीन में आंखें गड़ाये चुपचाप बैठी रहीं। उन्हें देखकर कोई सोच सकता था कि वह अपनी उन कमियों के बारे में ध्यान से सोच रही हैं, जिनके लिए सवरी ख़ाला ने अभी-अभी उनहें झिड़का था। अचानक रिसालत ख़ाला ने चौंककर सिर उठाया। उन्हें लगा जैसे फिर सवरी ख़ाला के शब्द गूंज उठे हैं: "अगर आप हमारे सामूहिक फ़ार्म में होतीं, तो मैं आपकी नाक में दम कर देती।' उन्हें यह सोचकर डर लगा कि सवरी ख़ाला उनके सामूहिक फ़ार्म में आकर उन्हें सबके सामने शर्मिंदा कर सकती हैं। उन्होंने पुलाव के देग के पास काम में जुटी सवरी ख़ाला की तरफ़ डरते-डरते कनखियों से देखा, फिर फाटक पर नज़र डाली, मानो सोच रही हों कि क्या वह आंख चुराकर खिसक सकती हैं, पर उन्हें पुलाव का थाल लिये आते देख फिर नज़रें झुका लीं।

सवरी ख़ाला ने एक रकाबी में थोड़ा पुलाव क़ाबिलजान के लिए निकालकर रख दिया और गोश्त के टुकड़े काटने लगीं। काफ़ी लंबी कष्टकारी चुप्पी छा गयी। बात किसी तरह बन नहीं पा रही थी। सवरी ख़ाला ने मेहमानिन की उदासी दूर करने के इरादे से कुछ नरमी से बात छेड़ी:

"मेरी तो जन्म से ही ऐसी आदत है, प्यारी बहन। मैं बात सीधे मुँह पर कहती हूं, बिना यह सोचे कि कोई उसका बुरा मान सकता है। लेकिन मेरे ख़याल से यही बेहतर है। यूं ही तो नहीं कहते हैं: दोस्त कड़वी बात

मुंह पर कहता है, जबकि दुश्मन पीठ पीछे खिल्ली उड़ाता है। जब दूसरे लोग आप पर हँसते हैं, तो मेरा भी तो दिल दुखता है।"

"आपकी बात बेशक काफ़ी हद तक सही है," रिसालत ख़ाला झिझकती हुई बोली।

"काफ़ी हद तक नहीं, बल्कि सोलह आने," सवरी ख़ाला को फिर गुस्सा आ गया। "आपने बहू से कल से बात नहीं की है न?"

"हाँ! पर आपको यह कैसे मालूम हुआ?" रिसालत ख़ाला को आश्चर्य हुआ।

"मैं आपको और आपकी आदतों को कोई आज से थोड़े ही जानती हूँ।"

"ऐ! बस आदतों के बारे में कुछ मत कहिये..."

किसी ने फाटक खटखटाया। सवरी ख़ाला जल्दी से फाटक खोलने गयी। गुलजहाँ सुर्ख, ताज़े आड़ुओं से भरी बालटी उठाये अंदर आयी। उसने फाटक के पास ही बालटी रखकर सवरी ख़ाला को बांहों में भर लिया।

"माँ, प्यारी माँ। कितनी ख़ुश हूँ मैं!..."

"पास हो गयीं? इतनी जल्दी निबट गयीं? कैसे हुए इम्तिहान?"

"मैंने सबसे पहले इम्तिहान दिया। अच्छे नंबरों से पास हो गयी।"

रिसालत ख़ाला पुलाव का कौर मुंह में डालना भूलकर तख़्त पर बुत-सी बैठी रह गयी। वह सास और बहू के मधुर मिलन को ध्यानपूर्वक देख रही थी। उनके चेहरे पर आश्चर्य एवं ईर्ष्या के भाव अत्यंत स्पष्ट रूप से उभरते जा रहे थे।

सईद अहमद

(जन्म – 1920-2007)

सईद अहमद गद्यकार हैं। उनका प्रथम कहानी-संग्रह सन् 1940 में प्रकाशित हुआ था। युद्धोत्तर काल में उन्होंने गद्य की विधा में काफ़ी सक्रिय योगदान दिया, अनेक कहानियों, लघु-उपन्यासों और उपन्यासों की रचना की। सन् 1974 में उन्होंने अपनी उपन्यास-त्रयी "क्षितिज" का लेखन संपन्न किया, जिसे उज़्बेक सोवियत समाजवादी जनतंत्र का हमज़ा राजकीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

सुम्बुल*

समय से पहले देनाऊ आ पहुंचने पर वहाबजान ने टेलीफ़ोन बूथ से कई जगह फ़ोन किया, पर कोई घर पर नहीं मिलाः उनका कोई इंतज़ार नहीं कर रहा था और रात भी काफ़ी हो चुकी थी। सोच-विचार कर वहाबजान इसी निर्णय पर पहुंचे कि उनके लिए रात को सामूहिक फ़ार्म के होटल में ही ठहरना बेहतर होगा।

वहाबजान को होटल जल्दी ही मिल गयाः जब वह इस इलाक़े में काम करते थे यहाँ इस तरह का ख़ूबसूरत दोमंज़िला होटल नहीं था; इतना घना बाग़ भी यहाँ नहीं था। "ओह, कितना बदल गया है!" बहाबजान के दिल में टीस-सी उठी।

चौकीदार कारिडोर में रूई-भरे गरम चोग़े में लिपटा सो रहा था। दस्तक सुनकर वह बड़बड़ाता हुआ अनिच्छापूर्वक उठा। उसने देर से आये मेहमान को उस पर नज़र डाले बिना अंदर आने दिया और चक्करदार सीढ़ी से ऊपर ले गया। वहाँ उसने बत्ती जलायी और तब जाकर उन्होंने एक दूसरे को देखा।

"आपको देखकर मुझे किसी की याद आती है, भाई ..." चौकीदार कह उठा। लगता है मैंने आपको कहीं देखा है ..."

कड़ाके की गर्मी के दिनों में गाँव के युवक टेकरी पर चढ़कर घाटी

---

* सुम्बुल – बालछड़, जटामासी।

में उतरकर सुम्बुलसाय के किनारे पहुँच जाते। वे घंटों सुम्बुलसाय की धारा की कलकल को सुनते विचारमग्न बैठे रहते। गुफा में जगह-जगह लटके काले सुम्बुल के रेशों से, जो नारी के केश जैसे लगते हैं, ओस की-सी बूंदें टपकती रहती हैं। समय के साथ-साथ वे बूंदें जमकर ठोस हो जाती हैं। सुम्बुल के रेशे मोटे होकर मूंगों या अंगूर की बेल-से लगने लगते हैं। वहाबजान सुम्बुल के रेशों से कलाई घड़ी की-सी टिक-टिक करती टपकती बूंदों की गूँज को सुनते घंटों बैठे रहते थे। वहाँ वह उस युवती की प्रतीक्षा करते थे, जिससे उन्हें प्रेम था।

गुलसुम गाँव की काफ़ी पढ़ी-लिखी लड़कियों में से थी। उसने अपने माता-पिता की मनाही के बावजूद समरक़ंद जाकर नर्सिंग का कोर्स किया था। वह डिसपेंसरी में वहाबजान के साथ काम करती थी और कभी-कभी उनके सहायक का काम भी करती थीः उस ज़माने में गाँव की औरतें पुरुष डाक्टर से जाँच नहीं करवाती थीं। वहाबजान के लिए गुलसुम सहायक के रूप में अमूल्य और ऐसा आवश्यक व्यक्ति थी, जिसके बिना उनका वहाँ रहना असंभव था।

वहाबजान और गुमसुम आये दिन सुम्बुलसाय के किनारे मिलते थे। वे एक दूसरे को काफ़ी देर तक निहारते अपने दिलों की प्यास बुझाते थे और अपने को दुनिया के सबसे सुखी लोग मानते थे।

लेकिन जैसा कि लोग कहते हैं कभी न कभी तो राज़ खुलता ही है। नौजवान अपने प्रेम को गुप्त न रख सकेः किसी ने एक बार उन्हें सुम्बुलसाय के किनारे मिलते देख लिया। उनकी एक मुलाक़ात के दौरान गाँव के मर्दों ने उन्हें पकड़ लिया। उन्होंने लड़की को तो छोड़ दिया और वहाबजान को गाँव लाकर, चेहरे पर कालिख पोतकर गधे पर उल्टे मुंह बिठाकर काठी से बाँध दिया और सुम्बुलसाय से निकाल दिया।

स्तेपी में उन्हें एक चरवाहा मिला, जो वहाबजान की हालत देखकर फ़ौरन समझ गया कि आदमी मुसीबत में फंस गया है। उसने वहाबजान को गधे से उतारकर अपने घोड़े पर बिठाया और देनाऊ जानेवाली सड़क तक छोड़ दिया।

वहाबजान भोर से पहले देनाऊ पहुँच गये। शहर बिलकुल मधुमक्खी के छत्ते जैसा लग रहा था। सड़कों पर लाउडस्पीकर लगे हुए थे, जिनके चारों ओर लोगों की भीड़ जमा थी। मालूम पड़ा, युद्ध छिड़ गया है।

वहाबजान जानते थे कि जवान डाक्टर के मुँह पर कालिख पोतकर गधे पर उल्टे मुँह बिठाकर गाँव से निकाले जाने की ख़बर अगले दिन सारे इलाक़े में फैल जायेगी। और शीघ्र ही देनाऊ तक भी पहुँच जायेगी। उन्हें शर्मिंदगी से बचकर जल्दी-जल्दी वह जगह छोड़कर चला जाना चाहिए था। युद्ध छिड़ चुका था। यानी उनके लिए तुरन्त मोर्चे के लिए रवाना हो जाना सबसे बेहतर होगा। अब उनके लिए जगह वहीं है, केवल वहीं। वह सीधे सैनिक भर्ती दफ़्तर पहुँचे और अगले ही दिन सैनिक रेलगाड़ी रंगरूटों को लेकर दूरस्थ मोर्चे के लिए रवाना हो गयी।

लोग ठीक ही कहते हैं कि मार-काट चाहे चालीस बरस तक होती रहे, पर उसमें मारा वही जाता है, जिसके भाग्य में ऐसा बदा होता है। वहाबजान पूरे चार साल अग्रिम मोर्चे पर मौजूद रहे। जहाँ सबसे ज़्यादा घमासान लड़ाइयाँ हुईं, उन्होंने न जाने कितने सैनिकों की मरहम-पट्टी की, न जाने कितनों को ख़ून दिया और प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों में न जाने कितने आपरेशन किये। लेकिन एक भी गोली या किरच ने उनके बदन को छुआ तक नहीं। कितनी सच्चाई होती है बड़े-बूढ़ों की बातों में!

युद्ध के पश्चात् वहाबजान अपने चिनाज़ लौट आये, जो उस समय ताशक़न्द के निकटस्थ एक छोटा क़स्बा था। लेकिन शीघ्र ही उनकी समझ में आ गया कि लगभग आधी दुनिया छान मारनेवाला आदमी एक जगह पर नहीं बैठा रह सकता। वह ताशक़न्द आये और पीएच.डी. में प्रवेश ले लिया और फिर से उनकी लबालब, हलचल-भरी ज़िंदगी शुरू हो गयी। वह मोर्चे से ही कई बार सुम्बुलसाये पत्र लिख चुके थे, लेकिन हर बार उन्हें कुछ इस तरह का उत्तर मिला थाः

"तू बेहया है, जिसके चेहरे पर पुती कालिख अभी तक वैसी ही है। अगर तू यह भूल गया है, तो यहाँ आ, हम तुझे अच्छी तरह याद दिला देंगे।" यह कहने की ज़रूरत नहीं कि ये पत्र गुलसुम नहीं लिखती थी।

बहुत से असफल प्रयासों के बाद उन्होंने लिखना बंद कर दिया। और उन्होंने अपने को गुलसुम और सुम्बुलसाय को पूरी तरह भुला देने के लिए मजबूर कर दिया।

लेकिन इस समय हाथों में सुम्बुल के टुकड़े पकड़े उन्हें वे बहुत पुराने दिन याद हो आये। उनका दिल फिर से खिल उठा, पर साथ ही दुख भी हुआ...

क़ासिम अका कंधे पर तौलिया रखे और हाथ में केतली लिये कमरे में वापस आये।

"अरे डाक्टर उका,* मैंने तो कभी सोचा भी नहीं था कि हमारी तक़दीर में एक बार फिर मिलना बदा है ... आपको उस रात की याद है, जब आप सुम्बुलसाय से लौटे थे और सुबह मैं आपको भर्ती-दफ़्तर छोड़कर आया था?"

क़ासिम अका उन दिनों देनाऊ में रहते थे, पर अकसर सुम्बुलसाय आते रहते थे; जाड़े के लिए लकड़ी जमा करने। एक बार जब वह अख़रोट के झुरमुट में सूखी डालें काट रहे थे, अचानक उनके पेट में बहुत तेज़ दर्द उठा, उन्होंने कुछ भी क्यों न किया, पर दर्द कम नहीं हुआ बल्कि बढ़ता ही गया। वह पेट को दबाये ज़मीन पर लौटने लगे – क़ासिम अका सोच रहे थे कि उनका अंत आ गया है। पास ही में लकड़ी काट रहे दो लड़कों ने जल्दी से ठोक-ठाककर स्ट्रेचर बनाया और दर्द के मारे ऐंठ रहे क़ासिम अका को उठाकर डिसपेंसरी भागे। बहाबजान जाँच करके तुरन्त इस निर्णय पर पहुंचे कि रोगी को एपेंडिसाइटिस का तेज़ दौरा उठा है और इस बात की पूरी संभावना है कि वह ज़िला अस्पताल पहुँचने तक नहीं बच पायेगा। फ़ौरन आपरेशन करना ज़रूरी था, लेकिन वहाबजान ने कभी इस तरह का आपरेशन नहीं किया था, इसके अलावा ग्राम डिसपेंसरी में आपरेशन के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थी। लेकिन एक आदमी की ज़िंदगी दाँव पर लगी थी, इसलिए बहाबजान ने जोखिम उठाने

* उका – छोटा भाई।

का फ़ैसला कर लिया। आपरेशन करने में गुलसुम ने उनकी सहायता की। सब ठीक-ठाक हो गया, क़ासिम अका की जान बच गयी। स्वस्थ हो जाने के बाद क़ासिम अका कई बार सुम्बुलसाय आये, डाक्टर से मिले और हर बार कहते रहे कि अब वह उनके लिए अपने सगे बेटे से भी बढ़कर है। तब अपने जीवन के दुखदतम क्षणों में वहाबजान को देनाऊ में क़ासिम अका की याद आयी और वह उनके घर पहुँचे। और अब क़िस्मत ने उनको फिर मिला दिया था।

"मैं मरते दम तक आपका एहसानमंद रहूँगा," वृद्ध आगे बोला। "आपने मुझे एक तरह से दूसरी ज़िंदगी दी, क्योंकि पेट में दर्द ने मुझे काफ़ी अरसे से परेशान कर रखा था। और आपके आपरेशन करने के बाद मैं अपने को बिलकुल जवान महसूस करने लगा: यहाँ तक कि मोर्चे पर भी लड़ चुका हूँ। मुझे दो पदकों और तीन मैडलों से भी सम्मानित किया जा चुका है ... तो यह बात है, भाई वहाबजान ... और आप कैसे हैं? हमारी तरफ कैसे आना हुआ?"

"मेरी बेटी को काम करने आपके इलाक़े में भेजा गया है। लगभग दो महीने हो चुके हैं। दुशांवे से आ रहा था, सोचा देखता चलूँ बेटी कैसी है?"

"बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा! अच्छा तो, प्यारे मेहमान, चाय पीजिये। ख़ुरमे खाइये, बहुत बढ़िया है। उस ज़माने में, जब आप यहाँ काम करते थे, यहाँ ख़ुरमे, नहीं होते थे। और अब तो हमारे यहां जिधर नज़र डालिये, उधर ख़ुरमे, नीबू नज़र आते हैं। आप सुम्बुलसाय नहीं गये? मुझे लगता है अब आप गाँव को पहचान ही नहीं पायेंगे, चारों ओर सब इतना बदल गया है।"

टेलीफ़ोन घनघना उठा। क़ासिम अका ने चोंगा उठाकर केवल "नहीं" कहा और उसे वापस रख दिया।

"अध्यक्ष को ढूँढ़ रहे हैं। जब कि वह आयबरक गये हुए हैं," उन्होंने बताया।

वहाबजान ने थोड़ी देर पहले ही खाना खाया था, लेकिन वृद्ध को अपने इनकार से ठेस न पहुँचाने के इरादे से उन्होंने नान का एक टुकड़ा तोड़ लिया, दो प्याली चाय पी और मेज़ से उठकर खिड़की के पास आ खड़े हुए। नहर से आनेवाली सीमेंट की नालियों में शीशे-सा साफ़ पानी कलकल करता बह रहा था, कहीं बुलबुल अपना मधुर तराना छेड़े हुई थी। तारे छिटके आकाश में बहुत ऊंचाई पर एक हवाई जहाज़ उड़ रहा था, जिसकी रंगबिरंगी बत्तियाँ जल-बुझ रही थीं: असंख्य शीतल टिमटिमाते तारों के बीच दो जलते बिंदु। वायुयान का शोर बिलकुल भी सुनाई नहीं दे रहा था।

उसी समय छत से लटका बिजली का बल्ब कई बार जला-बुझा, फिर उसका प्रकाश धुंधला पड़ने लगा और शीघ्र ही कमरे के अंधकार में उसका स्पाइरल लाल धागे के वृत्त जैसा लगने लगा। मिनट भर बाद वह भी अंधेरे में लुप्त हो गया। होटल का कमरा अंधकार में डूब गया।

"हमारे यहाँ बिजली जेनरेटर से आती है, जो बारह बजे तक चलता है," क़ासिम अका ने स्पष्ट किया। "ख़ुदा ने चाहा तो एक-दो हफ़्ते में हमारे गाँव को नूरेक से आनेवाली हाई वोल्टेज लाइन से जोड़ दिया जायेगा। तब हमारे यहाँ दिन-रात बिजली आती रहेगी। कहें तो लैंप जलाऊं?"

"नहीं, कोई ज़रूरत नहीं, परेशान मत होइये। वैसे भी मैं सोने ही जा रहा हूं। सफ़र में थक चुका हूँ।"

क़ासिम अका ने अंधेरे में टटोल-टटोलकर बिस्तर खोला और मेहमान को शब-ब़ख़ैर कहकर चक्करदार सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे। वह दियासलाई की जलती तीली की रोशनी में रास्ता देखते उतर रहे थे।

वहाबजान लेट गये और काफ़ी देर तक आंखें खोले लेटे रहे। इस इलाक़े में बीते उनके जीवन की घटनाऐं फिर उनकी आँखों के आगे घूमने लगीं, फिर गुलसुम का चेहरा उभर आया ... स्मृति की तरंगों में इसी तरह उतराते उन्हें न जाने कब नींद आ गयी।

सुबह उन्होंने ज़िला स्वास्थ्य विभाग में यह मालूम करने के लिए फ़ोन किया कि उनकी बेटी कहाँ काम कर रही है। बेटी ने अपने अन्तिम पत्र में लिखा था कि अभी उसे मालूम नहीं है कि उसे किस गाँव में भेजा जायेगा। वहाबजान को बताया गया कि ज़राफ़त को सुम्बुलसाय की डिसपेंसरी में काम करने भेजा गया है। कमाल है न! वहाबजान की बेटी को भी उसी गांव में भेजा गया है, जहाँ उनका अपना जीवन-पथ आरंभ हुआ था। वहाबजान ने बिना किसी हिचकिचाहट के सुम्बुलसाय जाने का फ़ैसला कर लिया।

क़ासिम अका से विदा लेकर वह गाँव की तरफ़ जानेवाली किसी गाड़ी को पकड़ने के लिए चौराहे पर गये। उन्हें ज़्यादा देर इंतज़ार नहीं करना पड़ाः कुछ ही मिनट बाद उनके पास एक नीली बंद गाड़ी आकर रूकी, जिसकी साइडों पर बड़े-बड़े अक्षरों में "पुस्तकें" लिखा था।

"सिर्फ़ सुम्बुलसाय तक!" केबिन की खिड़की में से सिर निकालकर ड्राइवर चिल्लाया।

"मुझे वहीं जाना है," वहाबजान ने जवाब दिया और मन-ही-मन सोचाः "कितनी अच्छी सुबह है!"

और वह गाड़ी में उसी रास्ते से जा रहे थे, जिससे एक दिन उन्हें गधे पर उल्टे मुँह बैठकर जाना पड़ा था। ड्राइवर उन्हें तरह-तरह के क़िस्से सुनाता जा रहा था और बार-बार कंधे उचकाता हँस रहा था; बहावजान के होंठों पर कभी क्षीण मुस्कान खेल जाती थी और कभी भौंहें सिकुड़ जाती थीं – वह ख़यालों में कहीं बहुत दूर थे।

इस सड़क की उस सड़क से कोई तुलना नहीं की जा सकती थी, जिससे वहाबजान को कभी अपना लज्जाजनक पलायन करना पड़ा था। अस्फाल्ट बिछी सड़क। कहीं-कहीं कंक्रीट की पटियाएं, केवल तीन जगह अचानक आये सैल और पहाड़ियों की ढालों से लुढ़के गोल पत्थरों से उसे थोड़ा नुक़सान पहुँचा था। सड़क के दोनों ओर पक्की ईंटों के बने एस्बेस्टस की छतोंवाले घर घनी हरियाली में चमक जाते थे। और दूर,

सबसे ऊपर शाश्वत शिखरों की मुक्ताभ दीवार खड़ी थी, जिनकी गोद में बहुत कम लोगों को ज्ञात गाँव सुम्बुलसाय बसा था।

बंद गाड़ी पहाड़ी सर्पिल सड़क से निरंतर ऊपर चढ़ती जा रही थी। कैंची-मोड़ आने लगे, खड़ी उतराइयाँ और वह लो—सामने सुम्बुलसाय गाँव नज़र आने लगा।

पहली नज़र में गाँव वैसा ही लगा, जैसा कि वहाबजान ने उसे उस ज़माने में देखा था। वही विशाल चट्टानें। वही चश्मे। श्वेत बादल पर्वत-शिखरों को छूते मंथर गति से तैर रहे थे, और उनकी ढालों पर पर्वतीय एल्म – आर्चा के वृक्षों की आकृतियाँ अस्पष्ट दिखाई दे रही थीं। बस्ती के पीछे धुंधली नज़र आ रही टेकरी के उस ओर क़िज़क़ोरग़ान की चोटी आकाश की ओर उन्मुख हो रही थी। उसका हिमधवल शीर्ष धुँध में लिपटा था।

वहाबजान गाड़ी के केबिन में बैठे मंत्रमुग्ध-से अपने चिर-परिचित दृश्यों को देख रहे थे, उनके जवानी के बीते वर्ष जैसे फिर से लौट रहे थे। उन्हें लग रहा था कि लंबी टांगोंवाली लड़की बस झाड़ियों की ओट से निकलकर अपने बाल बिखराती खड़ी ढाल से नीचे भागने ही वाली है ... गुलसुम ...

वहाबजान ने मानो सपने में गाड़ी से उतरकर ड्राइवर से विदा ली और गली में नीचे की तरफ़ चल पड़े। शीघ्र ही सफ़ेदी किया हुआ छोटा-सा मकान नज़र आ गया, जिसके दरवाज़े पर लटकी तख़्ती पर लिखा था: डिसपेंसरी।

जब वहाबजान दरवाज़े के पास पहुंचे, उन्होंने एक बहुत ही मोटी औरत को पोर्टिको में बिछे गीले टाट पर बड़ी सावधानी से पैर रगड़ते देखा। वहाबजान को देखते ही उसने पैर रगड़ना बंद कर दिया और उन्हें अपलक देखने लगी (वह तुरंत पहचान गयी कि आदमी पहली बार आया है)। वहाबजान ने उसका अभिवादन करके पूछा:

"आप क्या डिसपेंसरी में ही जा रही हैं? आपको अगर तकलीफ़ न हो तो ज़रा ज़राफ़त वहाबोवा को एक मिनट के लिए यहां भेज देंगी?"

स्त्री ने उत्तर देने के बजाय सिर हिलाया और दरवाज़े के पीछे ओझल हो गयी। एक मिनट बाद ही दरवाज़े में ज़राफ़त दिखाई दी। उसे अपने पिता के यहाँ मिलने की ज़रा भी आशा नहीं थी, और जैसे ही उसने देखा कि उसके सामने मुस्कराता कौन खड़ा है, वह चिल्लाकर उससे लिपट गयी। उसके बाद वे दोनों काफ़ी देर मौन खड़े एक दूसरे को देखते रहे, फिर ज़राफ़त को होश आया और उसने पिता को अपने काम की जगह देखने के लिए अंदर चलने को कहा। लेकिन वहाबजान ने इनकार कर दिया।

"तुम अपना काम करो, बेटी," उन्होंने कहा। "मैं थोड़ी देर टहल लेता हूँ, तुम्हारा गाँव देख लूँगा। तुम्हारे काम का समय पूरा होने तक लौट आऊँगा। तब आराम से बात करेंगे, ठीक है?"

बेटी ज़ोर देनेवाली थी, पर पिता का दृढ़निश्चय देखकर बहस नहीं की। स्वभावतः वह नहीं जान सकती थी कि पिता को वे स्थान कितने प्रिय हैं, वहाँ का हर पत्थर, हर पेड़ उनके मन में कैसे विचार और भावनाएँ जगाता है ... वहाबजान को केवल एक ही उत्कट इच्छा हो रही थीः सुम्बुलसाय के किनारे अपने चिर-अभीप्सित स्थान को जाकर देखने की। बेटी को छोड़कर वह वहीं के लिए चल पड़े।

टेकरी के बीच से सड़क निकाल दी गयी थी। सड़क के सहारे-सहारे बनी नालियों की दरारों में से पानी रिस-रिसकर घोड़ागाड़ियों व छकड़ों के पहियों की लीक से नीचे बह रहा था।

वहाबजान फुर्ती से टेकरी पर चढ़ रहे थे। वह उसके शीर्ष पर पहुँचे और पीछे मुड़कर सुम्बुलसाय पर नज़र डाली। गाँव के आधे हिस्से पर पहाड़ी की छाया पड़ रही थी, जिससे लगता था जैसे आधे सुम्बुलसाय में शाम हो गयी है और आधे हिस्से में अभी दिन है।

वहाँ एक-दो मिनट खड़े रहकर वहाबजान लंबे-लंबे डग भरते घाटी की तरफ़ चल दिये। नीचे बेद-मजनुओं के घने झुरमुट दिखाई देने लगे। उन्हें देखते ही उनका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा और वहाबजान क़रीब भागते हुए-से नीचे उतरने लगे। किन्हीं चिड़ियों का झुण्ड चीख़-सी

मारकर झाड़ियों से उड़ गया। पत्थर और गिट्टी शोर के साथ नीचे लुढकने लगे। घाटी का तल आ गया। बेद-मजनुओं के तने मोटे दिखाई देने लगे। उनकी लगभग ज़मीन पर बिछी टहनियाँ हटाते हुए वहाबजान गुफा में घुसे। वहाँ पूर्ण शांति थी। सूरज की किरणें बेद-मजनुओं की पत्तियों से छन-छनकर गुफ़ा की तृण-मणि सदृश तह से ढकी दीवारों पर विचित्र आकृतियाँ बना रही थीं। तृण-मणि सदृश हिम-लम्बों की नोकों से पानी की बूंदें धीरे-धीरे टपक रही थीं। जब नीचे गिरती बूंदें स्टेलैग्माइटों से टकरातीं, तो उनसे वैसी ही झंकार निकलती, जैसी मधुमक्खी के परों के तंबूर के तारों से टकराने से निकलती है। ग्रेनाइट के बड़े-बड़े पत्थरों को ढके और पानी की सतह तक लटके सुम्बुल के नम रेशे सिर धोने के लिए चिलमची पर झुकी स्त्री के खुले केशों जैसे लग रहे थे। तृण-मणि सदृश परत से ढके सुम्बुल के हर रेशे से नन्हीं-नन्हीं बूंदें गिरकर छिटक रही थीं। अगर निश्चल खड़े रहकर ध्यानपूर्वक सुना जाये, तो एकरस अविरत ध्वनि सुनी जा सकती है, लगता है जैसे कहीं दूर से मूसलाधार वर्षा का शोर आ रहा है।

वहाबजान ग्रेनाइट पत्थर पर बैठ गये। वह उन बूंदों की झंकार सुन रहे थे, इन्द्रधनुषी रंगों में झिलमिला रहे सुम्बुल को देख रहे थे और पूरे आत्मविश्वास के साथ कहने को तैयार थे कि बस अभी परी-कथाओं जैसा चमत्कार होने ही वाला है। और वह चमत्कार की प्रतीक्षा करते रहे ...

यहीं तो, इस झिलमिलाती जादूई रोशनी में, इस अद्भुत झंकार को सुनते वह अपने प्यार, गुलसुम को आग़ोश में लिये बैठे रहते थे, उसकी प्यार-भरी बातें सुनते थे। गुलसुम ... वह अब कहां है? ज़िंदा तो है? और अगर ज़िंदा है, तो अब कैसी है?

उनकी आख़िरी मुलाक़ात हुए छब्बीस वर्ष बीत चुके थे, फिर भी गुलसुम उनकी कल्पना में वैसी ही जवान और तरोताज़ा थीं ...

अचानक कहीं पास ही प्रफुल्ल आवाज़ें और लड़कियों की खनकती हँसी गूंज उठीं। वहाबजान ने चौंककर हाथों से बेद-मजनुओं की टहनियाँ

हटाकर बाहर झांका। दसेक लड़के और लड़कियाँ उछलते-कूदते, हँसते, और छेड़छाड़ करते गुफा की तरफ़ उतर रहे थे। नौजवान गुफा में घुस आये। एक युवक के हाथ में ट्रांजिस्टर पूरे ज़ोर से बज रहा था, दूसरा कैमरे से खटाखट फ़ोटो खींचे जा रहा था, कुछ उछल-उछलकर सुम्बुल के मूंगे सदृश गुच्छे तोड़ रहे थे। टूटने पर उनसे वायलिन के टूटते तारों जैसी झंकार हो रही थी। ट्रांजिस्टर से आ रहा गीत तृण-मणि सदृश दीवारों से टकराकर गुफा में ही भटक रहा था।

वहाबजान उठकर गुफा के मुंह की तरफ़ जाने लगे। लेकिन तभी एक सांवली, नटखट आँखोंवाली युवती ने उन्हें हाथ पकड़कर रोक लिया और मुस्कराती हुई बोली:

"आपको आख़िर खाली हाथ तो सुम्बुलसाय नहीं लौटना चाहिए न! यह लीजिये, इसे लेते जाइये।"

उसने वहाबजान को अपनी टांगें पूरी फैलाकर खड़े हिरण जैसी आकृतिवाला तृण-मणि जैसा जमा हुआ गुच्छा दे दिया। वहाबजान ने युवती को धन्यवाद दिया और गुफा से निकलकर पैर जमाते हुए ढाल पर चढ़ने लगे। वह एक हाथ में नम काले सुम्बुल के रेशे पकड़े थे और दूसरे में – जमा हुआ मूंगा सदृश सुम्बुल। वह उन्हें बहुत संभालकर ले जा रहे थे, सबसे प्रिय स्मृतिचिन्ह की तरह।

ज़राफ़त डिसपेंसरी के दरवाज़े पर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

"आप कहाँ ग़ायब हो गये थे?" उसने पूछा। "मैं कब से आपका इंतज़ार कर रही हूँ।"

"बेटी, देखो मैं तुम्हारे लिए यह क्या लाया हूँ," वहाबजान ने कहा। "सुम्बुल।"

ज़राफ़त वहाँ हाल ही में आयी थी और अभी तक सुम्बुलसाय के किनारे नहीं जा पायी थी। उसने पिता के हाथों से सुम्बुल लेकर उस पर उड़ती नज़र डाली और बोली:

"सचमुच, बालों जैसे लगते हैं। चलिये, सफ़र की थकान दूर कर लीजिये।"

वहाबजान वास्तव में थक गये थे और थोड़ा आराम करने, एक-दो प्याली गर्म चाय पीने के ख़िलाफ़ नहीं थे।

उन्होंने थोड़ी दूर पटरी से जाकर नदी पर बना पुल पार किया और नीले रंग के छोटे फाटक के सामने रुक गये।

"आइये," बेटी ने कहा और फाटक ठेलकर खोल दिया।

वे बड़े और साफ़ अहाते में पहुँच गये। एक वृद्धा चूल्हे पर कुछ पका रही थी, देगची से भाप उठ रही थी।

ज़राफ़त पिता को अपने कमरे में ले गयी: उसकी छत और दीवारों पर सफ़ेदी की हुई थी और ताक़ों में किताबें सलीके से रखी हुई थीं।

"यह घर हमारी बड़ी डाक्टर का है। वह बहुत भली इनसान हैं। उन्होंने मुझे यह कमरा दे दिया है, और कहीं रहने नहीं जाने देती।"

किसी ने दरवाज़ा खटखटाया।

"आइये, आइये," ज़राफ़त ने आवाज़ दी।

कमरे में वह औरत दाख़िल हुई, जिसे वहाबजान ने थोड़ी देर पहले डिसपेंसरी के दरवाज़े पर देखा था। अब ध्यानपूर्वक देखने पर वहाबजान उसे पहचान गये: वह गुलसुम थी। वही, जिसका ख़याल उन्हें इन दिनों बराबर आता रहा था। गुलसुम ने भी उन्हें पहचान लिया: उसने कुछ भर्रायी आवाज़ में उनसे दुआ-सलाम की और नज़रें फेर ली। ज़राफ़त से कुछ बात करके एक मिनट बाद ही वह कमरे से बाहर चली गयी। वह फिर नज़र नहीं आयीं, और वहाबजान उसे दुबारा देख पाये बिना लौट गये।

वापसी में वह सारे रास्ते गुलसुम के बारे में सोचते रहे। उनकी आंखों के आगे निरंतर गुलसुम की रुपहली पलकें, झुर्रियों से भरा चेहरा और गर्दन पर घाव का स्पष्ट निशान घूमते रहे..." वह बूढ़ी हो गयी है। वक़्त

से पहले। लेकिन आंखें उसकी वैसी ही है, उसी जवान, कोमल लड़की की-सी।

लगभग पन्द्रह दिन बाद वहाबजान को बेटी का पत्र मिला।

"प्यारे अब्बा," उसने लिखा था, "हमारी बड़ी डाक्टर उस दिन आपसे विदा लेने नहीं आ सकी थी, इसलिए आपसे माफ़ी चाहती हैं। उस दिन उन्हें फ़ौरन पहाड़ पर जाकर एक मरीज़ औरत को देखना था। वह बहुत ही नेक इनसान, संवेदनशील और स्नेहमयी स्त्री है। लोग बताते हैं कि उन्हें काफ़ी कष्ट उठाने पड़े हैं। उनके बच्चे नहीं हैं। ख़ास तौर से आपके आने के बाद से वह मुझे बहुत प्यार करने लगी हैं। मेरे सामने बैठकर देर तक मेरी आंखों में झांकती रहती है। कल भी वह वैसे ही बैठी रही थीं। बैठी-बैठी देर तक मेरी आंखों में झांकती रहीं और अचानक मुझे सीने से चिपटाकर बिना किसी कारण रो पड़ीं।"

ये पंक्तियां पढ़कर वहाबजान ने गहरी ठण्डी साँस ली। उन्हें लगा जैसे उनकी सांस से हवा नहीं, झुलसाती, गरम लपट निकली हो।

अस्क़द मुख़्तार

(जन्म – 1920-1997)

अस्क़द मुख़्तार कवि और गद्य-लेखक हैं। उनकी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में सन् 1938 में छप रही हैं। सन् 1939 में कवि की प्रथम पुस्तक "हमारे पूर्वज" प्रकाशित हुई, जो बुख़ारा के अतीत को समर्पित काव्य है। अस्क़द मुख़्तार बीस से अधिक कविता और कहानियों के संग्रहों व लघु-उपन्यासों की रचना कर चुके हैं, जिनका अनुवाद सोवियत संघ की अन्य भाषाओं में हो चुका है। जनतंत्र में श्रमिक वर्ग की स्थापना और सृजनात्मक श्रम में स्त्रियों की भूमिका के बारे में लिखे उनके उपन्यास "चिंगारी" का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हो चुका है। उपन्यास "चिनार" के लिए अस्क़द मुख़्तार को उज़्बेक सोवियत समाजवादी जनतंत्र के हमज़ा राजकीय पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

बीवी

उस चारमंज़िला इमारत में अधिकतर विशेषज्ञों के परिवार रहते थे। इसीलिए उसे विशेषज्ञों का मकान कहते थे। उसके छज्जों पर, जो अहाते की ओर खुलते थे, सूरज डूबने पर ही आरामदेह ठंडक आती थी।

गर्मियों में सब लोग शाम के समय छज्जों पर बैठना पसन्द करते थे। कुछ लोग चाय की चुस्कियां लेते हुए गपशप करते रहते, तो कुछ और बेंत की आरामकुर्सियों में बैठकर अख़बार पढ़ते रहते। इस प्रकार कोई भी "पारिवारिक राज़" दूसरों की आंखों से छिपा नहीं रहता।

तीसरी मंज़िल के छज्जे पर रह-रहकर एक अधेड़ महिला दिखाई दे जाती थी। वह बेचैनी से चारों ओर देखती और वापस कमरे में चली जाती। पर कुछ ही क्षण बाद वह फिर छज्जे पर निकल आती। वही हमारी कहानी की नायिका, डाक्टर शादीयेव की पत्नी सलतनतख़ोन है।

अभी हाल तक उनका छज्जा साफ़-सुथरा और सजा-धजा रहता था। लोग रोज़ मियां-बीवी शादीयेव को शाम के समय वहां महंगी मिठाइयों के साथ चाय पीते देखते थे। सलतनतख़ोन महीन चीनी रेशम का गाउन पहने देर तक वहां निश्चिंत खड़ी रहती थी। लगता था कि वह अपने हुस्न और अपने परिवार की ख़ुशहाली का प्रदर्शन कर रही है। तब सलतनतख़ोन बेचैनी से चारों ओर नहीं देखती थी, उसे पड़ोसियों के काम-काज में कोई रुचि नहीं थी। इसके विपरीत उसका यही विचार था कि सब उसी की ओर देखें, उसी में रुचि रखें...

अब दो महीने से यह सब ख़त्म हो चुका था। महंगी चीज़ें छज्जे से हटा ली गई थीं। अब सलतनतख़ोन छज्जे पर बहुत कम नज़र आती थी। कभी-कभी निकलती भी थी, तो ध्यान से चारों ओर देखकर कमरे में वापस चली जाती थी।

"मुसलीमोव जोड़ी आ गयी है," वह पति से यों कहती मानो कोई महत्वपूर्ण सूचना दे रही हो। पर मेज़ पर बैठे कुछ लिखने में तल्लीन शादीयेव पर इस सूचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

"तो क्या हुआ? काम से लौटते होंगे।"

"बांहों में बांहें डालकर अहाते में घुमते हैं, सीढ़ियां चढ़ते समय भी मियां-बीवी एक दूसरे से लिपटे रहते हैं।"

"आख़िर जवान हैं..." शादीयेव काग़ज़ों से आंख उठाए बिना कहते।

"यदि मेरा थोबड़ा ऐसा होता, तो मैं जवान होना भी नहीं चाहती।" आइने के सामने खड़ी होकर सलतनतख़ोन अपनी सूरत निहारने लगती। सुडौल शरीर, गोरा-चिट्टा चेहरा और बड़ी-बड़ी आंखों की लम्बी-लम्बी पलकें। सुन्दर सीधी नाक। गाल पर छोटा-सा तिल। भला इस चेहरे और नफ़ीसा के बिना सिंगारवाले चौड़े थोबड़े की तुलना की जा सकती थी? "तभी तो वह अपने पति को इतना कसकर पकड़े रहती है। शायद डरती है कि वह उसे छोड़कर कहीं चला न जाये। जब कभी वह शहर के बाहर दौरे पर जाता है वह अधीरता से तड़पने लगती है।" सलतनतख़ोन हंस पड़ी।

शादीयेव अपनी पत्नी की बकवास पर कोई ध्यान नहीं देते, पर उसकी इस प्रकार की हंसी से वे झुंझला उठते।

"आख़िर तुम क्यों दिन-रात इनकी बातें करती रहती हो? बस करोगी कभी कि नहीं?"

"हां, आप ही सबसे अक़लमन्द हैं न! आपके सिर पर भी कोई सवार हो जाये, तब भी आप चुप रहेंगे। इस कल के छोकरे ने इंस्टिट्यूट पास करते ही आपका पद छीन लिया। और आप? आप तो पन्द्रह साल से प्रेक्टिस करनेवाले अनुभवी डाक्टर हैं। और वह जो अभी हाल ही में

आपके पीछे-पीछे भागता था, आज प्रधान डाक्टर बन गया है। देखते रहिये, वह आपको एक दिन अस्पताल से भी निकाल देगा। और तब भी आप उसका शुक्रिया ही अदा करेंगे।"

डाक्टर शादीयेव की झगड़ा करने की तनिक भी इच्छा नहीं थीः

"प्यारी! यह क्यों नहीं समझतीं कि डाक्टर मुसलीमोव प्रतिभाशाली युवक है। दो ही साल में उसने एम.डी. की डिग्री पा ली है। अब इंस्टिट्यूट भी वैसे नहीं हैं जैसे हमारे ज़माने में थे। आज के स्नातक कुशल, प्रतिभाशाली और फुर्तीले डाक्टर होते हैं। उनके कल्पनातीत विचारों से सिर चकराने लगता है। मुसलीमोव के नये आपरेशनों ने लेनिनग्राद के चिकित्साशास्त्रियों तक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। मैं भी उसका क़ायल हूं। और फिर वह ख़ुद प्रधान डाक्टर के पद के पीछे नहीं भागा। उसे इस पद पर नियुक्त किया गया है। मेरी भी राय मांगी गई थी। मैं समझता हूं कि कई साल से मैं कोई प्रगति नहीं कर पाया हूं। इसीलिए स्वाभाविक है कि एक कुशल प्रतिभाशाली युवा डाक्टर के लिए मैंने अपना स्थान ख़ाली कर दिया। और यह भी स्वाभाविक है कि नौजवान हमारा स्थान लेते हैं।"

पति की विश्वासभरी आवाज़ से सलतनतख़ोन को कुछ सांत्वना मिली। पर वह क्या कह रहा था, यह उसने सुना ही नहीं। वह अपनी ही बात सोच रही थी। अभी कुछ ही दिन पहले वह प्रधान डाक्टर की पत्नी थी और उसे लगता था कि राह चलते लोग विशेष ध्यान के साथ उसकी ओर देखते हैं और फुसफुसाकर उसके बारे में बातें करते हैं। इस पर उसे बड़ा गर्व और ख़ुशी होती थी। जबे कोई उससे डाक्टर शादीयेव का हाल-चाल पूछता, तो वह बस सिर हिलाकर इसका जवाब देती थी और बड़ी शान के साथ आगे बढ़ जाती थी। और अब उसने आसमानी रंग की उम्दा मख़मल की पोशाक पहनी है, पर किसी ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया (हालांकि यहां किसी के पास ऐसी पोशाक नहीं है)।

गोश्तवाले ने, जो सदा उसे क्यू के बिना सबसे अच्छी बोटियां देता था, आज एक किलो गोश्त में हड्डी का बड़ा-सा टुकड़ा रख दिया था।

जबकि नफ़ीसा को उस दिन बहुत अच्छा गोश्त मिला था। सलतनतख़ोन ने यह अपनी आंखों से देखा था।

"प्रधान डाक्टर की पत्नी होकर भी वह एक साधारण टाइपिस्ट है।"

"ओफ़्फ़ों! फिर वही बात! आख़िर उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? अगर टाइपिस्ट है भी तो बहुत अच्छी, वह बहुत कुशल टाइपिस्ट है।"

"तो मैं क्या इस पर ख़ुशियां मनाऊं?"

"कुछ दिनों से तुम बहुत बातें करने लगी हो। तुम भी कहीं काम शुरू कर दो।"

"क्या काम करूं? क्या मैं टाइपिस्ट बन जाऊं? या बस-कंडक्टर? क्या मैं कोई डाक्टर या इंजीनियर हूं कि काम करने जाऊं? आपने तो ख़ुद मुझे इंस्टिट्यूट की पढ़ाई छोड़ने को मजबूर किया था।"

शादीयेव चुप रहे। उनमें काम की बात लेकर पहले भी कई बार बहस हो चुकी थी पर वे सदा हार जाते थे, क्योंकि हर बार सलतनतख़ोन यही दलीलें पेश करती थीं।

हां, तेरह साल पहले शादीयेव ने वास्तव में यह ग़लती की थी। इसीलिए आज उन्हें चुप रहना पड़ता था।

"तो पढ़ने क्यों नहीं चली जातीं?" उन्होंने अस्फुट स्वर में सुझाव दिया।

"हां, एक अधेड़ उम्र की औरत कल की स्कूली छोकरियों के साथ बैठकर पढ़ेगी, तो बहुत अच्छा लगेगा न!" सलतनतख़ोन ने दो टूक जवाब दिया।

शादीयेव झगड़ा नहीं चाहते थे, उन्हें झगड़ों से डर लगता था। अपनी झुंझलाहट पर क़ाबू पाने के लिए वे काग़ज़ों के ऊपर झुक गए।

सलतनतख़ोन पुस्तक लेकर छज्जे पर निकली, पर पढ़ने में उसका मन नहीं लगा, बल्कि उसकी आंखें पड़ोसियों के छज्जों पर भटक रही थीं।

नफ़ीसा ने गमले में लगा आइरिस का पौधा छज्जे पर रखा। यह देखकर सलतनतख़ोन फ़ौरन कमरे में गई और एक पेड़ के तने जितना मोटा कनेर निकाल लाई।

नफ़ीसा ने पड़ोसिन पर कोई ध्यान नहीं दिया और एक महंगा तुर्कमानी क़ालीन निकालकर उसे छज्जे की मुंडेर पर लटका दिया। सलतनतख़ोन आंधी की तरह कमरे में गयी और फ़र्श पर बिछे पुराने क़ालीन को नफ़रत से देखा। उसने अल्मारी खोली, फिर सोने के कमरे में गई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। पति पर एक नज़र डाली। अपनी पत्नी के हाल से बेख़बर वह काम में लगा था। उसका जी चाहा कि वह ज़ोर से चिल्लाए, पर किसी तरह वह संभल गई और सोने के कमरे में जाकर पलंग पर गिर पड़ी।

अगले दिन शादीयेव काम से घर लौटे, तो मेज़ पर एक क़ालीन पड़ा था। वह अभी खोला भी नहीं गया था।

"अरे, यह कहां से आया?"

"दुकान से! और कहां से आ सकता है?"

"पर इसकी तो कोई ज़रूरत..."

सलतनतख़ोन ने उन्हें अपनी बाते पूरी नहीं करने दी।

"यह कोई नियामत नहीं है। ऐसे क़ालीन सबके पास हैं।"

"यह तुमने ठीक नहीं किया। मुझसे कुछ कहा ही नहीं। मैंने ये पैसे शोध-प्रबंध के ख़र्च के लिए बचाकर रखे थे।"

आज का दिन उनके लिए बहुत कठिन रहा। वे थके-हारे घर आये थे। फिर उन्हें भूख लग रही थीं। शादीयेव बेहाल होकर कुर्सी पर बैठ गए। पत्नी क्या कुछ कह रही है यह उन्होंने सुना ही नहीं। बस उसके कुछ शब्द उनके कानों में गूंज रहे थे: "मैं डाक्टर शादीयेव की पत्नी हूँ", "बस यही रह गया है मेरे लिए", "क्या मैं किसी से कम हूं?"

चुपके से खाना खाकर वे अपने काम में लग गए। उन्हें मालूम था कि वे कुछ कहेंगे, तो झगड़ा शुरू हो जाएगा।

और सलतनतख़ोन फिर बेचैनी से तड़प रही थी। न जाने क्यों नफ़ीसा छज्जे पर दिखाई नहीं दे रही थी। सलतनतख़ोन कारीडोर में निकली। वहीं उसे नफ़ीसा मिल गई।

"अस्सलाम अलैकुम सलतनतख़ोन आपा! आप कभी हमारे घर नहीं आती हैं। तशरीफ़ लाइए!" नफ़ीसा ने अपने फ़्लैट का ताला खोलते हुए बड़ी शिष्टता के साथ कहा।

"वालेकुम अस्सलाम, बहिन!" सलतनतख़ोन ने कहा। "आपके यहां आने की इच्छा तो बहुत होती है, मगर फ़ुर्सत नहीं मिलती। डाक्टर मुसलीमोव कैसे हैं? बेचारे बहुत थक जाते होंगे? एक जवान आदमी पर इतना बड़ा बोझ! लगता है कि वे कुछ दुबले हो गए हैं।"

नफ़ीसा मुस्कराने लगी। उसने सोफ़े के पास रखे सूटकेस को हटा दिया और मेहमान को बैठने के लिए कहा।

"क्या फिर वे कहीं जा रहे हैं?" सलतनतख़ोन ने सूटकेस की ओर संकेत करते हुए पूछा।

"जी हां, दूर के इलाक़े में जा रहे हैं।"

"आय हाय! वे इतने जवान हैं। आप उनको इतनी दूर क्यों जाने देती हैं?"

"क्यों?" नफ़ीसा ने पड़ोसिन पर आश्चर्यभरी नज़र डाली।

"वे आपसे छोटे हैं?"

"नहीं, हमउम्र हैं," नफ़ीसा ने धीरे-से कहा और मेहमाननवाज़ी करती गई। "आप मिठाइयां लीजिये! अफ़सोस की बात है कि मेरे घर में मुरब्बा नहीं है।"

"आप सुखी हैं," सलतनतख़ोन ने अपनी बात जारी रखी। "आपके पति की योग्यता की सब प्रशंसा करते हैं। पर आजकल ऐसी भी बहुत-सी सुन्दर लड़कियां हैं, जो आप जैसी सुखी नहीं हैं।"

नफ़ीसा ने कुछ कहना चाहा, पर सलतनतख़ोन ने उसे मुंह खोलने नहीं दिया।

"सचमुच यह बड़े सुख की बात है। आप मुझसे छोटी हैं तो मेरी बात सुनियेः सड़क पर पड़े सोने को कोई-न-कोई मालिक अवश्य मिल जाएगा। आप अपने पति का अधिक ध्यान रखिये, नहीं तो कोई चंट

बालकटी छोकरी फंसा लेगी उन्हें। आप तो बिलकुल सिंगार नहीं करती हैं, पाउडर तक नहीं लगाती हैं।"

"वे ऐसे नहीं हैं। फिर वे मुझे बहुत चाहते हैं।"

"हाय, हाय! हम सभी औरतें ऐसी भोली-भाली होती हैं। पर मर्द लोग ... अभी हाल ही में इन्होंने मुझे इतना परेशान किया कि तौबा," सलतनतख़ोन फुसफुसाकर बोलने लगी। "और इनकी तो उम्र काफ़ी है।"

"नहीं, नहीं। डाक्टर शादीयेव ऐसे नहीं हैं। मैं तो उन्हें जानती हूँ।"

"मर्द मर्द ही होता है, बहिन," सलतनतख़ोन ने कहा। "बाहर की किसी डाक्टरनी से चक्कर चल गया था इनका। पर मैं ... मैं तो उन्हें कसकर रखती हूं। हाय ... मैंने तो अपना राज़ खोल दिया, आप तो किसी को नहीं बताएंगी न?... आप बुरा न मानिये, बहिन! डाक्टर मुसलीमोव के बारे में मैं कुछ कह नहीं सकती। वे भले आदमी हैं। बहुत ही भले हैं ... इसीलिए आपको चौकन्ना रहना चाहिए। नहीं तो ... हाय, मुझे तो जाना है और मैं यहां बकबक कर रही हूं।"

नफ़ीसा ने उसे नहीं रोका। सलतनतख़ोन चली गई और वह सूटकेस पर नज़र डाले बैठी रही। उनका मन भारी था।

डाक्टर मुसलीमोव काम से लौट आए। नफ़ीसा ने उनके क़दमों की आहट को पहचान लिया। वे बड़े विश्वास के साथ क़दम रखते थे। कमरे में प्रवेश करके उन्होंने मुस्कराकर नफ़ीसा की ओर देखा। फिर भारी समोवार को मेज़ पर रखकर हाथ-मुंह धोने चले गए।

"मैंने आपका सामान तैयार कर दिया है," नफ़ीसा ने पति की आंखों में आंखें डालकर कहा। लगता था कि इस प्रकार वह उनका कोई राज जान लेना चाहती हैं।

"शुक्रिया, मेरी जान! आधे घंटे में मुझे हवाई अड्डे पहुंचना है।"

"आप आये दिन बाहर जाते रहते हैं," नफ़ीसा ने मुंह फुलाकर कहा।

"हां, यह सच है। पर मैं क्या करूं, तुम्हीं बताओ। मान लो किसी पहाड़ी गांव में कोई युवक बीमार पड़ा है। उसके लिए सांस लेना भी

मुश्किल हो रहा है और उसकी हालत बराबर बिगड़ती जा रही है। वह अभी जवान है और उसकी जान ख़तरे में है। बड़ी अधीरता से वह डाक्टर की प्रतीक्षा कर रहा है। उसे आशा है कि डाक्टर आकर उसकी जान बचा लेगा और वह फिर से अपने दोस्तों के साथ घूमने-फिरने योग्य हो जायेगा, काम कर सकेगा। अगर वह डाक्टर, जिसकी इतनी उत्सुकता के साथ वह मरीज़ इंतज़ार कर रहा है, तुम होती, तो तुम क्या करतीं, नफ़ीसा? बोलो ज़रा!"

नफ़ीसा ने प्यार के साथ पति की ओर देखा। सलतनतख़ोन की सभी बातें भूल गई।

"अरे, हम बैठे क्यों हैं?" कुछ क्षण बाद उसने हड़बड़ाकर कहा। "आपको तो जाना है।" पति का कोट लाकर उसने उसके कंधों पर डाल दिया और धीरे से अपना सिर उसके कंधे पर रख दिया।

"लौटकर आऊंगा तो मैं तुम्हें मरीज़ के बारे में विस्तार से बताऊंगा।"

"क्या, आपरेशन करना है?"

"हां, शायद।"

"तो आप ज़रा सावधानी से कीजिये, अच्छा?"

पति ने उसे अपनी बांहों में भर लिया और उसकी आंखें चूम लीं।

डाक्टर मुसलीमोव अगले दिन लौटकर नहीं आए, दो दिन बाद भी नहीं आए।

"इन दिनों डाक्टर कहीं दिखाई नहीं देते हैं, क्यों?" एक दिन नफ़ीसा से मिलने पर सलतनतख़ोन ने कहा।

"क्या अभी तक डाक्टर नहीं लौटे?" उसने चौथे दिन पूछा।

इस बीच नफ़ीसा सलतनतख़ोन से कन्नी काटने, उससे बचकर रहने की कोशिशें करती रही और सलतनतख़ोन उससे डाक्टर मुसलीमोव के बारे में अपना सवाल पूछने के लिए घात लगाकर बैठी रहने लगी। एक दिन वह कहीं चली गयी।

मुसलीमोव छठे दिन लौटे। बहुत प्रसन्न और प्रफुल्ल। उन्होंने युवा कृषिविशेषज्ञ, उसके आपरेशन, पहाड़ी इलाक़े की ताज़ी हवा की बहुत बातें कीं।

"देखो, क्या लाया हूं तुम्हारे लिए," अगले दिन काम से लौटने पर डाक्टर मुसलीमोव ने कहा और पैकेट ऊंचा उठा लियाः "पकड़ लोगी, तो तुम्हारा होगा।"

नफ़ीसा उसके कंधों पर लटक गई, हाथ उठाया, मगर पैकेट को नहीं पकड़ पाईः उसका पति पंजों के बल खड़ा था। तब उचककर नफ़ीसा ने पैकेट को पकड़ लिया। खोला, तो देखा कि वह "शार्टहैंड की पुस्तक" है जिसे पाने के लिए वह बहुत दिनों से उत्सुक थी। ख़ुशी से उसका जी नाच उठा।

किन्तु उसी दिन डाक्टर मुसलीमोव कहीं जाने की तैयारियां करने लगे।

"कहां जाना है?"

"साहिबा को देखना है।"

"कौन-सी साहिबा को?" नफ़ीसा ने पूछा, पर उसी ज्ञण उसे याद आ गया कि गत वर्ष डाक्टर मुसलीमोव ने एक लड़की का आपरेशन किया था। उसने नफ़ीसा को बताया था कि उस लड़की का कोई नहीं है। उम्र उन्नीस बरस की है। वह बहुत सुन्दर और समझदार लड़की है। प्रांतीय केन्द्र के एक अस्पताल में नर्स है। आपरेशन के बाद उसके स्वास्थ्य में डाक्टर मुसलीमोव ही नहीं बल्कि बहुत से बड़-बड़े प्रोफ़ेसर भी रुचि ले रहे थे।

"अब वह कैसी है, यह देखना बहुत ज़रूरी है, क्योंकि यह बहुत विरला रोग है," डाक्टर मुसलीमोव ने समझाया।

"तो क्या जीवन भर अपने रोगियों के पीछे दौड़ते रहेंगे?"

"सुनो, नफ़ीसा! डाक्टर जिस रोगी की जान बचाता है, वह उसके लिए अपना बन जाता है। तो मान लो कि मैं अपनी रिश्तेदार साहिबा के पास जा रहा हूं। नफ़ीसा मान गई।

इसी बीच सलतनतख़ोन प्रांतीय केन्द्र में अपनी एक सहेली के यहां ठहरी हुई थी। उसकी सहेली विधवा थी। वह कहीं काम नहीं करती थीं। उसने अपने मकान के तीन कमरे किराये पर चढ़ा रखे थे।

शाम को एक किरायेदार युवती मालकिन के पास आई। युवती को देखकर सलतनतख़ोन बहुत ख़ुश हो गई, क्योंकि अपनी सहेली की बकबक से वह उब चुकी थी।

युवती घबराई हुई थी। उसने पूछाः

"सलतनतख़ोन आपा! क्या आप अपने शहर के डाक्टर मुसलीमोव को जानती हैं?"

सलतनतख़ोन का दिल बड़े ज़ोर के साथ धड़कने लगा। मौक़ा हाथ आ रहा था। आंखें बंदकर अपनी उत्सुकता छिपाते हुए उसने पूछाः

"मुसलीमोव? डाक्टर? हां, जानती हूं। उससे हमारी मुलाक़ात भी होती है। पर बात क्या है?"

"उन्होंने मेरा आपरेशन किया था। आजकल यहां आए हुए हैं।"

"यहां? क्यों?"

"मुझे देखने के लिए," साहिबा का चेहरा तमतमा गया। "वे यह जानने के लिए आए हैं कि आपरेशन के बाद मेरी तबीयत कैसी है।"

मालकिन अन्दर आई और साहिबा चली गई।

सलतनतख़ोन एकाएक चुप-चुप रहने लगी। वह अपने सोच में डूबी रहती थी। साहिबा के साथ हुई बातचीत से उसने अपने लिए निष्कर्ष निकाले। अगले दिन सलतनतख़ोन साहिबा के कमरे में गई और साहिबा ने उसे अपने दिल का हाल सुना डाला।

उसने कहाः

"अस्पताल में मेरे साथ उनका व्यवहार बहुत अच्छा रहा। उनकी नेकी, उनके स्नेह को आज तक मैं नहीं भूली हूं। बाद में उन्होंने पत्र लिखकर मेरा हाल-चाल पूछा। अब ख़ुद आ गए हैं। आज मुझे डाक्टर के कमरे में बुलाया गया, तो वे वहां बैठे थे। उन्होंने मुझसे बहुत कुछ पूछा। पर मेरा दिल इतना बेक़ाबू होकर धड़क रहा था कि मैं ठीक से जवाब भी नहीं दे पाई। न जाने मुझे क्या हो गया। मन भारी-भारी रहता है। रोने की इच्छा होती है।"

"अरी, तुम तो बच्ची नहीं हो," सलतनतख़ोन ने कहा। "ख़ुद ही समझती होगी कि यों ही तुम्हारी तबियत पूछने के लिए वे यहां नहीं आते। और तुम क्या उन्हें चाहती हो?"

"उन्होंने मेरी जान बचाई है। मैं उनके लिए अपना सब कुछ क़ुर्बान करने के लिए तैयार हूं। मगर वे कुछ नहीं कहते, सलतनतख़ोन आपा।"

"प्यार-मुहब्बत के बारे में बोला नहीं जाता है। यह यों ही देखा जाता है। तुम बहुत सौभाग्यशाली हो। वह बहुत अच्छा आदमी है।" साहिबा सलतनतख़ोन से लिपटकर रो पड़ी।

मुसलीमोव ने उस शहर में आठ दिन रहकर अपने सभी भूतपूर्व मरीज़ों को देखा।

घर लौटकर उन्होंने बड़े चाव के साथ नफ़ीसा को अपने उन "रिश्तेदारों" के बारे में बतलाया।

नफ़ीसा अपने पति के बारे में सोच रही थी। इस बार जब पति घर लौटे तो, उसने बताया कि वह मां बननेवाली है। वह इतना ख़ुश हुए, इतना ख़ुश कि देखकर नफ़ीसा अपने को कोसने लगीः उसने क्यों अपने मन में उनके बारे में इतने ख़राब विचार पैदा होने दिये थे।

ख़ुशी से गुनगुनाते हुए नफ़ीसा घर का काम कर रही थी।

इतने में किसी ने द्वार खटखटाया। जाकर उसने द्वार खोला, तो वहां एक अपरिचित लड़की को खड़ा पाया।

"माफ़ कीजिये," उसने सकुचाते हुए कहा। "यह फ़्लैट नम्बर इक्यावन है न?"

"जी हां, आइये।"

"नमस्ते! मेरा नाम साहिबा है।"

"नमस्ते! साहिबा। मैं तो आपको जानती हूं," नफ़ीसा ने मेहमान को कमरे में आमंत्रित करते हुए कहा।

साहिबा कुर्सी पर बैठ गई।

"आप मुझे जानती हैं?"

"हाँ, ज़रूर! आप डाक्टर मुसलीमाव से मिलने आई है न? थोड़ा-सा इंतज़ार करना होगा। वे जल्दी ही आ जाएंगे। उन्होंने मुझे आपके बारे में बहुत बताया। और मैने आपकी शक्ल-सूरत की वैसी ही कल्पना की थी, जैसी आप हैं। वे भी तो अभी हाल ही में आपके शहर गये थे।"

नफ़ीसा चाय बनाने लगी। वह मेज़ पर प्लेटें-प्याले रख रही थी और रह-रहकर अपनी मेहमान पर नज़र डालती जाती थी।

साहिबा खोई-खोई-सी चारों ओर नज़र दौड़ा रही थी। उसका जी चाहता था कि वह उठकर भाग जाये। पर कैसे?

"आप..." साहिबा ने सिर्फ़ इतना कहा और चुप हो गयी।

"मैं डाक्टर मुसलीमोव की पत्नी हूं।" नफ़ीसा ने युवती पर नज़र डाली और सब कुछ समझ गई।

"मुझे जाने की इजाज़त दें," साहिबा ने अनुरोध किया। "अजीब बात है कि आपने मुझे डांट-फटकारकर निकाल नहीं दिया।"

"डाक्टर मुसलीमोव ने आपसे क्या कहा?" नफ़ीसा ने पूछा।

"उन्होंने ... उन्होंने मुझे ... यह लीजिये," युवती ने नफ़ीसा के हाथ में एक तार थमाया।

मुसलीमोव ने लिखा था कि वह साहिबा के बिना जी नहीं सकता, इसलिए चाहता है कि वह शीघ्रातिशीघ्र आ जाए।

नफ़ीसा हक्की-बक्की रह गई।

"क्या वे इतने ख़राब आदमी हैं?" साहिबा ने कहा और दरवाज़े की ओर चल दी। "आप बुरा न मानिये। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, मैं बस पगली हूं।"

"ठहरिये!"

"नहीं, नहीं! अलविदा!"

साहिबा चली गई और नफ़ीसा तार को लिये देर तक खड़ी रही। सहसा उसका ध्यान तारीख़ की ओर गया। पर यह क्या है? जिस दिन तार दिया गया, उस दिन वे तो शहर में नहीं थे। और तार अपने ही शहर से दिया गया है। वह दौड़कर बाहर निकली, सीढ़ियां उतरी, पर साहिबा जा चुकी थी। नफ़ीसा ने निश्चय किया कि वह पति से कुछ नहीं कहेगी।

डाक्टर मुसलीमोव बहुत परेशान घर लौटे।

नफ़ीसा घबरा गई:

"क्यों, क्या हुआ?"

"एक पत्र आया है, जिसमें मुझ पर झगड़ालू और व्यभिचारी होने का आरोप लगाया गया है। लिखा है कि हमारे फ़्लैट से अक्सर गाली-गलौज और रोने-धोने की आवाज़ें सुनाई देती हैं।"

"किसने लिखा है?"

"पता नहीं। लिखनेवाले ने अपना नाम नहीं लिखा। बस इतना ही लिखा है कि वह निस्वार्थ मित्र है। जांच-पड़ताल के लिए आयोग का गठन किया जाएगा।"

"ए ख़ुदा!"

बेनाम पत्र को सब लोगों ने पढ़ा। जब डाक्टर शादीयेव ने उसे देखा, तो वह चिल्ला पड़े:

"यह तो मेरी घरवाली की लिखावट है!"

वह बेहोश हो गये और इसी के साथ बात समाप्त हो गयी।

पड़ोस के छज्जे से चीख़-पुकार सुनाई दीं, फिर किसी चीज़ के टूटने की आवाज़ आई।

"मैं आत्महत्या करूंगी और इसके लिए आप ही दोषी होंगे, ज़िंदगी भर आपको ही पछताना पड़ेगा।"

मुसलीमोव ने उठकर कोट पहन लिया।

"रहने दो!"

"नहीं, वह बीमार है, जाना ज़रूरी है।"

मुसलीमोव जल्दी ही लौट आये और निराशा के साथ हाथ हिलाया। डाक्टर शादीयव ने सलतनतख़ोन से तलाक लेने का फ़ैसला कर लिया और इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता।

मीरमोहसिन

(जन्म – 1921-2005)

मीरमोहसिन कवि व गद्य-लेखक हैं। उन्होंने शिक्षण महाविद्यालय का स्नातक होने के बाद स्कूल में अध्यापन किया, तत्पश्चात् पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक-मण्डलों में कार्य करते रहे। आजकल वह "गुलिस्तान" पत्रिका के सम्पादक हैं। उनकी प्रथम कविता "स्पेनी राष्ट्रभक्त के नाम" सन् 1936 में प्रकाशित हुई थी। वह वयस्कों व बालकों के लिए अपने दसियों कविता-संग्रह प्रकाशित करवा चुके हैं। मीरमोहसिन अनेक वर्षों से गद्य की विधा में भी सफल सृजन कर रहे हैं। उनके लघु-उपन्यासों– "कनीज़', "बिजली कड़के आधी रात", उपन्यासों – "उम्मीद," "ढलैया का बेटा," "चत्काल का शेर" का अनुवाद रूसी भाषा में किया जा चुका है।

नट

हमारी शांत और हरी-भरी सड़क पर बरसों से एक किनारे पर चार लम्बी बल्लियां पड़ी थीं। वे लोहे के तार से मज़बूती से बंधी थीं और उनके नीचे दो-तीन पत्थर रखे थे, ताकि नमी से वे सड़ न जाएँ।

गर्मियों के मौसम में शाम को जब गर्मी कम हो जाती है, ताशपुलात बाबा लाठी का सहारा लेकर सड़क पर निकल आते। धीरे-धीरे वे उन बल्लियों तक पहुँच जाते, अपनी लाठी से उस पर पड़े अख़रोट के छिलकों को हटाते और बैठ जाते। कभी-कभी उन्हें यह देखकर गुस्सा आ जाता है कि शैतान लड़कों ने फिर लकड़ी में कीलें ठोक दी हैं। सूखी ख़ूबानी चबाते ताशपुलात देर तक वहीं बैठे रहते। जब अंधेरा छा जाता, तो वे उठकर अपने घर चले जाते।

कभी-कभी अपनी पोती की सहायता से ताशपुलात बाबा एक मोटे रस्से को आँगन में बिछा देते। उसकी धूल झाड़कर न जाने क्यों वे उस पर घड़े से पानी छिड़कते।

एक दिन जब उनकी पोती असालख़ोन घर के अन्दर चली गई, ताशपुलात ने अपने जूते उतारकर रस्से पर पैर रखे और लाठी के सहारे से धीरे-धीरे उस पर चलने लगे। उनके पैर कांप रहे थे। इसी बीच असालख़ोन ने खिड़की से बाहर झांका। अपने दादा को एक पैर के बल रस्से पर खड़े होकर दूसरा पैर नचाते देखकर वह भौंचक्की रह गई। खिड़की खोलकर उसने पूछाः

"यह आप क्या कर रहे हैं, दादा?"

ताशपुलात पहले कुछ मुस्कराये और फिर रूखे स्वर में बोलेः

"कुछ नहीं। देख रहा हूं कि रस्सा कहीं गल तो नहीं गया है। झट से बन्द करो खिड़की!"

असालख़ोन ने सुना कि उसके दादा कुछ बड़बड़ा रहे हैं। उसका यह अर्थ था कि "कोई बात नहीं। एक न एक दिन तुझे ससुराल भेजकर तुझ ज़ालिम से पिंड छुड़ा लूंगा!"

मुहल्ले के युवकों ने सिर्फ़ सुना ही था कि कभी यह आदमी तने रस्से पर नाचा करता था, पर ख़ुद देखा नहीं था इसीलिए वे उनके लिए प्रसिद्ध ताशपुलात नट नहीं बल्कि ताशपुलात बाबा थे।

बीस से अधिक साल हो गये, जबसे ताशपुलात ने नटों के तमाशों में भाग लेना बन्द कर दिया। उनके बेटे और पोते की दुःखद मृत्यु के साथ ग़ाज़ीबायेव नट वंश ख़त्म हो गया।

कहते हैं कि ताशपुलात के बाप को रूज़ीबाय नट, रूज़ीबाय के बाप को क़ुजीबाय नट, क़ुज़ीबोय के बाप को ग़ाजीबाय नट कहते थे। इस प्रकार आठवीं पीढ़ी में उनका रिश्ता सुप्रसिद्ध कमक कयानी से था। कहते हैं कि हमारी सड़क के किनारे पर पड़ी बल्लियों में से एक ताशपुलात के दादा क़ुजीबाय नट के ज़माने की थी। रूज़ीबाय का वह बांस अभी तक बचा है जो नट संतुलन साधने के लिए हाथों में पकड़ते हैं। और ग़ाज़ीबाय नट की वह देगची सुरक्षित है, जिसे लेकर वह रस्से पर चलता था।

एक दिन शाम को ताशपुलात बाबा अपने साथी अब्दुवहाब मोची के साथ बल्लियों पर बैठे थे। इधर-उधर की बातें कर रहे थे कि ताशपुलात बाबा ने ठंडी सांस लेकर कहाः

"ऐ ख़ुदा! तूने मेरे एरमातजान को मुझसे छीन लिया। अब मुझे भी जल्दी ही बुला ले!"

अब्दुवहाब मोची ने अपनी पेटी से लटकी थैली से कंघी निकालकर अपनी छाती पर फैली सफ़ेद दाढ़ी में कंघी की।

ताशपुलात ने उससे तंबाकू मांगी। तंबाकू की चुटकी लेकर ताशपुलात बाबा सोच में डूब गए। उन्हें ताशक़न्द के पास – अच्चीआबाद में वसंत के मेले की याद आ गई।

जुमे को सुबह सवेरे ताशक़न्द के चारों ओर से उत्सव मनाने के लिए लोग उमड़ आते थे। दूरवर्ती इलाक़ों के लोग तो जुमेरात की शाम को ही डेरा डाल लेते थे। अच्चीआबाद के बड़े से मैदान के चारों ओर की गलियों में कबाबचियों, चाय की दुकानों, ख़रबूज़े-तरबूज़े और फल बेचनेवालों के छकड़ों की भरमार रहती थी। ग्राहकों को अपनी तरफ़ खींचने के लिए फलवाले तरबूज़े और ख़रबूज़े उछाल-उछालकर आवाज़ें लगाते थे। करनाई, सुरनाई की कर्णभेदी स्वर और ढोलों की धप-धप सुनाई देती थी। लोक-गायक गीत गाते थे। मैदान में बड़ी ऊँचाई पर नटों का रस्सा तना रहता था। वह दूर से ही दिखाई देता था। शाम को जब गर्मी कुछ कम हो जाती थी, असंख्य लोग यहीं जमा हो जाते थे। पहले मसखरे अपनी कला दिखाते, फिर भालू से कुश्ती होती। पर मेले का सबसे ज़्यादा मज़ेदार तमाशा अभी शुरू होने ही वाला था।

छोटे-बड़े – सबकी निगाहें दो खंभों के बीच तने रस्से और छाते के नीचे लगे दो झूलों पर टिकी थीं।

अंततः करनाई और सुरनाई की सुबह से बजनेवाली आवाज़ें, नगाड़े की ढम-ढम बन्द हो गई। मैदान में ढोलकें लेकर दो वादक निकले और ताल निकालना शुरू कर दिया। लोग बड़ी अधीरता के साथ ताशपुलात नट की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर पहले उनका एक शार्गिद आधे घंटे तक शैतान लड़कों को शांत करता, घूमता रहा और दर्शकों से कुछ पीछे हटने का अनुरोध करता रहा ताकि जगह खुली रहे। इसकेक बाद उसने कुछ चुस्त युवकों से रस्से को कसकर ताने रखने के लिए कहा। जब सारा प्रबंध पूरा हो गया, तो मैदान में सफ़ेद बालोंवाला सफ़ेद चोग़ा पहने एक वृद्ध आया। उसके चोग़े की आस्तीनें चढ़ी थीं, कमर पर दो-दो कमरबंद बंधे थे और पैरों में मुलायम चमड़े के बूट थे। यही थे ताशपुलात नट। कुछ ही क्षण बाद कोई तीस बरस का चौड़े कंधोंवाला एक मर्द भी आ

गया, जिसके साथ सात-आठ बरस का एक बालक भी था। बूढ़े नट ने दर्शकों को झुककर सलाम किया और अपनी आदत के अनुसार रस्से को देखा। इसके बाद उसने मैदान के केन्द्र में खड़े होकर उल्लासपूर्ण ढंग से कहाः

"बेटे एरमातजान, रस्से पर चढ़ो!"

वादक ज़ोर से ढोलक बजाने लगे और मर्द बांस उठाकर एक-एक पग जमाता हुआ रस्से पर पहुँच गया। अब सबकी निगाहें एरमातजान पर जमी थीं। "बेटा अपने बाप से भी अधिक कुशल हो गया है ..." भीड़ में कानाफूसी होने लगी। जब एरमातजान खंभे पर चढ़ गया, ताशपुलात नट ने एक शेर कहा और अपने बेटे पर नज़र डाली। एरमातजान ने ऊपर से सिर झुकाकर अपने पिता को सलाम किया।

"बेटे एरमातजान!" ताशपुलात ने उससे कहा,

"क्या हुक्म?"

"पहली, दूसरी और तीसरी गांठ तक चलो!"

"जो हुक्म!"

ढोलकों की ताल के साथ-साथ एरमातजान रस्से पर आगे बढ़ता गया। कभी वह कुलांचें मारता, कभी बैठ जाता।

दर्शक लोग, ख़ासकर महिलाएं विस्मित होकर उसको देखने लगे।

"बेटे एरमातजान!"

"जी?"

"चौथी, पांचवीं और छठी गांठ तक चलो!"

"अच्छा!"

एरमातजान कभी धीरे-धीरे, कभी तेज़ गति से आगे बढ़ता गया। जब वह दौड़ता हुआ छठी गांठ तक गया और फिर मुड़कर दौड़ता हुआ पीछे आने लगा तो दर्शकों के दिल धक् से रह गए। जब वह कुलांचें मारने लगा, तब तो सबके मुंह से एक "आह" निकल गई। ढोलकों की ताल

रुक-सी गयी। लगता था कि दर्शकों की तनी निगाहें नट को गिरने नहीं दे रही हैं।

"बेटे एरमातजान!"

"जी?"

"मैं तुम्हें समोवार भेजता हूँ। इसे लेकर पांचवीं गांठ तक चलो!"

"अच्छा।"

तांबे की थाली पर रखा उबलता भाप उगलता समोवार लाकर ताशपुलात नट ने एक बड़े घेरे में रखा और रस्से के ज़रिये बेटे को दिया। एरमातजान ने थाली समेत समोवार को अपने सिर पर रखा और फिर आँखों पर काली पट्टी बाँध ली। हाथों में बांस लेकर वह रस्से पर चलने लगा।

दर्शकों की ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी। पांचवीं गांठ तक पहुँचकर एरमातजान उल्टे पांव पीछे चलने लगा। अचानक बांस वह अपने एक हाथ में ले लेता, बांस का एक सिरा ऊपर उठ जाता और उसके सिर पर उबलता समोवार हिलने लगता।

एरमातजान रुकता, अपना एक पैर रस्से पर से उठाता और एक पैर पर खड़ा होकर ढोलकों की ताल पर झूलने लगता है और बांस को एक हाथ में लेकर दूसरा हाथ नचाने लगता।

"बेटे एरमातजान!"

"जी!"

"यहां उपस्थित माननीय मुल्ला तुयची, युसूफ़जान क़ीज़िक, अब्दुल्लातारोक़, यूनुस और इमामजान तुम्हारे साहस और बहादुरी के क़ायल हैं।"

"शुक्रिया! मैं भी उनकी सलामती की दुआ मांगता हूं!"

"अब तुम्हारा बेटा, तुम्हारी साहसी कला का उत्तराधिकारी, हमारा प्रिय पोता शेरमातजान रस्से पर पहुँच रहा है।"

"शाबाश!"

"शेरमातजान बेटे, चढ़ो रस्से पर!"

ताशपुलात ने अपने पोते को खंभे तक पहुंचाया है और उसका माथा चूमा। एरमातजान ने पल भर में अपने बेटे को रस्से पर खींच लिया। अपना हाथ दिल पर रखकर शेरमातजान ने उपस्थित लोगों को सलाम किया। लोग लड़के की बहादुरी की प्रशंसा करने लगे:

"कैसा निडर लड़का है। शायद उसका दिल घोड़े के सिर जितना बड़ा होगा।"

उस दिन तमाशा बहुत सफल रहा। ताशपुलात नट के बेटे और पोते के साथ उसके दो शागिर्दों – क़ोक़न्द के मीरसादिक़ और मर्गेलान के अलीजान ने भी कतरब दिखाए।

लोग बड़ी अधीरता के साथ अगले शुक्रवार को नटों के तमाशे की प्रतीक्षा करने लगे। अफवाह फैल गई कि स्वयं ताशपुलात नट अपना करतब दिखाएगा।

अगले शुक्रवार को एरमातजान ने सफलता के साथ तमाशा शुरू किया। अपनी कला से उसने दर्शकों का मन मोह लिया।

अपने बेटे को कंधे पर बिठाकर वह रस्से पर करतब दिखाने लगा। अपना करतब दिखाकर एरमातजान छाते के नीचे जाकर दम लेने के लिए बैठ गया। कुछ ही मिनटों में उसे ऊंचाई पर लटके झूले पर खेल दिखाना था। कुछ क्षण बाद नीचे से ताशपुलात की आवाज़ आयी: "बेटे, एरमातजान!"

"जी?"

"झूले पर खेल शुरू करो!"

"अच्छा!"

एरमातजान फ़ौरन खड़ा होकर झूले पर लटककर दो-तीन बार झूला। उसकी मचकियों से खंभे चरमरा उठे। शेरमातजान अपने बाप को देख

रहा था। कभी-कभी वह ऊपर से असंख्य दर्शकों की भीड़ पर भी नज़र डाल लेता था। पर मैदान के छोर पर चिनार से बंधे दो भालुओं में उसे सबसे अधिक रुचि थी।

एरमातजान कुछ और झूलने के बाद झूले की रेशमी झालर को एक हाथ से पकड़कर लटक गया। बाद में घुटने मोड़कर वह पैरों के बल रस्से पर लटक गया। उसका सिर, उसके हाथ नीचे थे। उसने बेटे को इशारा किया। शेरमातजान रस्से को पकड़कर बाप के पास पहुंच गया। बेटे के हाथ पकड़कर एरमातजान उसके साथ पैरों के बल झूले पर लटक गया। कुछ क्षण बाद एरमातजान ने एक पैर छोड़कर बेटे के पैर पकड़ लिये और एक पैर के बल लटककर बेटे के साथ बड़ी तेजी के साथ लट्टू की तरह घूमने लगा। रुककर वह दूसरा पैर झूले पर रखनेवाला ही था कि वह भयंकर दुर्घटना हो गयीं। उसका पैर झूले की रस्सी से खिसक गया और बाप-बेटे दोनों हवा में कलाबाज़ी खाते हुए ज़ोर से ज़मीन पर गिर पड़े। दर्शकों में खलबली मच गयी। विराट मैदान और उसके पास की सड़कों पर खड़ी भीड़ में नटों का तमाशा देखने के लिए पेड़ों की डालों और आसपास के मकानों की छतों पर बैठे लोगों में ऐसी भगदड़ मच गयी, जैसे नदी में यकायक बाढ़ आ गई हो और किसी तरह संभाले न संभल रही हो।

ताशपुलात नट ने अपना सफ़ेद चोग़ा उतारकर ख़ून से लथपथ बेटे और पोते को ढक दिया।

इसी दुखद घटना ने ताशपुलात नट की कमर तोड़ दीं। अब इस घटना को 20 साल से अधिक हो चुके थे। ताशपुलात नट अपने छोटे-से मकान में बुढ़ापे के दिन गुज़ार रहे थे कि न जाने कैसे उनके कानों तक यह ख़बर पहुंची कि ताशक़न्द में नट आए हैं।

ताशपुलात बाबा के पड़ोसी युवा अध्यापक ने इस ख़बर की पुष्टि की। ताशपुलात बाबा बेचैन हो उठे। रात भर करवटें बदलते रहे और अगले दिन युवा अध्यापक के यहां गए। उन्होंने उससे उनके साथ सर्कस चलने का अनुरोध किया। युवक ने बाबा का अनुरोध पूरा करने में

तत्परता दिखाई और अगले ही दिन वे साथ-साथ हरी-भरी सड़कों पर टहलते-टहलते सर्कस पहुंच गये। युवक ने सबसे आगे के दो टिकट ले लिये। वे सबसे पहले जाकर अपने स्थान पर बैठ गए और प्रदर्शन के आरम्भ होने की प्रतीक्षा करने लगे।

खेल आरंभ हुआ। मसख़रों और बाज़ीगरों ने अपने करतब दिखाये।

इसके बाद उज़्बेक नटों के लिए विशेष ढंग से रस्सा ताना गया। रस्सा ज्यादा ऊंचा नहीं था। दो नट रस्से पर पहुंचे और शानदार खेल दिखाने लगे। ताशपुलात बाबा मुग्ध होकर खेल देखते रहे। उन्होंने फ़ौरन अपने साथियों को पहचान लिया।

नटों ने एक खेल समाप्त किया। जब मीरसादिक़ झुककर बांस रख रहा था, तो उसकी नज़र पहली क़तार में बैठे सफ़ेद दाढ़ीवाले ताशपुलात बाबा पर पड़ी। मीरसादिक़ दौड़ता हुआ ताशपुलात बाबा के पास पहुंचा और उनका हार्दिक अभिवादन करके फिर वैसे ही दौड़ता हुआ अपने स्थान पर पहुंच गया।

नटों का प्रदर्शन बहुत सफल रहा। दर्शक खड़े होकर उनकी प्रशंसा में तालियां बजाने लगे। दोनों नट दौड़कर ताशपुलात बाबा के पास पहुंचे और उनको साथ लेकर अखाड़े में आ गए।

एकदम सबको मालूम हो गया कि यह वृद्ध उनका उस्ताद, सुप्रसिद्ध ताशपुलात नट है। वृद्ध के सम्मान में अलग से तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी।

अपनी लाठी का सहारा लेकर खड़े ताशपुलात बाबा का दिल गदगद हो उठा। उनकी आंखें भर आई।

"कुछ बोलिये न, बाबा!" सूत्रधार ने उनको संबोधित करते हुए कहा।

"कला अमर है, कला मरती नहीं है। आप सबको यह बता दें," वृद्ध ने धीमी आवाज़ में कहा। सूत्रधार ने यही बात ऊँची आवाज़ से रूसी और उज़्बेकी में बताई।

"मैं अब बूढ़ा हो चुका हूं। पर यदि ताशपुलात नट रस्से पर अब नहीं चल सकता, तो उसकी जगह वहां मीरसादिक़ नट नाचता है। बस ... यही कहो ताकि सब सुन लें।"

वृद्ध की यह बात भी सबको सुनाई गई।

"सबको बता दिया? तो शुक्रिया!"

फिर तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी और तीनों नटों ने एक दूसरे को गले लगा लिया।

इब्राहीम रहीम

(जन्म – 1916-2001)

इब्राहीम रहीम गद्यकार हैं। उन्होंने अध्यापन की शिक्षा पायी। महान् देशभक्तिपूर्ण युद्ध में इब्राहिम रहीम सफ़रमैना रहे, टैंक-दस्तों में सैनिक अफ़सर रहे, बाद में मोर्चे के समाचारपत्र का सम्पादन भी करते रहे। उनकी प्रथम कृति सन् 1939 में प्रकाशित हुई। इब्राहिम रहीम के कृतित्व में महान् देशभक्तिपूर्ण युद्ध के विषय को एक प्रमुख स्थान प्राप्त है, उनके उपन्यास "सच्चा प्यार," "अमरता", "वालंटियर" उसी को समर्पित हैं। पिछले वर्षों के दौरान उन्होंने अपने समकालीनों के बारे में उपन्यास लिखे हैं, जिनमें "अशान्त नगर" और "क़िस्मत" प्रमुख हैं।

शर्त

कपास की फ़सल चुनने के बाद हमेशा की तरह हमारे सामूहिक फ़ार्म के बहुत-से किसान ख़रीदारी करने ताशक़न्द जाने की तैयारियां करने लगे।

वैसे हमारे गांव की दुकान में बहुत से देशों का सामान मिलता है। ताशक़न्द समेत कई दूसरे शहरों के होशियार लोग ख़ास तौर से हमारे यहां फ़ैशनेबल बरसातियां, ओवरकोट, पोशाकें, कोट, जूते वग़ैरह ख़रीदने आया करते हैं। और किसी चीज़ की न सही, पर आम इस्तेमाल की आधुनिकतम वस्तुओं की हमारे गांव में भरमार रहती है। लेकिन कुछेक बहुत ज़रूरी चीजें, जैसे सुंदर रूमाल, चोग़ों के लिए रंगबिरंगे कपड़े या ओवरआल, रोज़मर्रा इस्तेमाल के जूते आदि हमेशा नहीं मिलते। इसीलिए ताशक़न्द के फ़ैशनपरस्तों को हमारे यहां आना पड़ता है और हमें उनके यहां जाना पड़ता है। हां, हमें लापरवाह विक्रेताओं पर ज्यादा गुस्सा नहीं आता – आख़िर हम उन्हीं के कारण तो राजधानी का एकाध फ़ालतू चक्कर लगा पाते हैं, वैसे शायद जायें ही नहीं।

उस बार ताशक़न्द जानेवालों में ताजीबाय उर्फ़ "तजंग" यानी ग़ुस्सैल भी था। ताजीबाय बहुत ही चिड़चिड़ा था। ड्राइवरों की ख़ास बोली में एक कहावत है – चाबी देते स्टार्ट होना – तो ताजीबाय चाबी को आधा घुमाते ही स्टार्ट हो जाता था, एक शब्द मात्र से वह वैसे ही भड़क उठता था जैसे सूखी घास जलती तीली दिखाने से। पहले उसका हाथ मूंछों (मूंछें थीं भी ख़ूबसूरत, उन पर उसे बहुत गर्व था) पर जाता, फिर दिल पर, फिर वह अल्लाह की दुहाई देने लगता और उसके बाद चुनिंदा लफ़्जों और फ़िकरों की झड़ी लग जाती। अब आप समझ गये ना कि उसका नाम "ग़ुस्सैल" क्यों रखा गया?

हां, तो ताजीबाय "गुस्सैल" ने अपने परिवार का मशविरा बुलाया, जिसकी कार्यसूची में एक ही प्रश्न थाः ताशक़न्द में किसके लिए क्या-क्या ख़रीदा जाये?

उसका परिवार काफ़ी बड़ा थाः छः बच्चे, बूढ़ी दादी, नन्हीं भानजी (उस बहन की बेटी जो मास्को के एक संस्थान में पढ़ाई पूरी कर रही थी)।

ताजीबाय की पत्नी ख़दीचा सामूहिक फ़ार्म में काम नहीं करती थीः उसे घर पर ही ढेरों काम रहते थे।

"अगर हिंदुओं की देवी दुर्गा की तरह मेरे भी आठ हाथ होते," ख़दीचा कहा करती थी, "तो शायद मैं भी शाम को क्लब जाती, सिनेमा देखने जाती और नाच में भी। लेकिन अभी तो मेरे दो ही हाथ है, इसलिए मुझे छोटे बच्चों के किंडरगार्टन जाने और बड़ों के घर-गृहस्थी में हाथ बंटाने योग्य होने तक इंतज़ार करना पड़ेगा।"

यह शहरों में ही होता है – तीन-चार बच्चे हुए नहीं कि मां-बाप आहें भरने लगते हैंः हाय, कैसे करें! हाय, क्या करें! हाय, कितनी मुश्किल है! हमारे यहां तो दस बच्चे भी अजूबा नहीं माने जाते, और आप किसी को आहें भरते नहीं सुनेंगे।

हां, तो ताजीबाय "गुस्सैल" परिवार के मशविरे में सामान की फ़ेहरिस्त बनाने में जुट गया। सब ठीक-ठाक चल रहा था, जब तक कि जूतों का नाम न लिया गया। बस जूतों को लेकर ही वे असाधारण घटनाएं शुरू हो गयीं, जिनके बारे में आपको बताना चाहता हूं।

ख़दीचा बोलीः

"ताजीबाय, आप क्यों अपने लिए एक जोड़ी जूता ख़रीदना चाहते हैं और मेरे लिए भी एक ही जोड़ी? जिसे ज़्यादा पैदल चलना पड़ता है, उसके लिए एक नहीं, दो जोड़ी जूते ख़रीदने चाहिए।

"शाबाश, ख़ूब कही!" ताजीबाय ने ख़ुशी के मारे अपनी शानदार मूंछों पर हाथ फेरा। "मुझे पूरा विश्वास था कि तुम यही कहोगी। अब मैं बेशक बड़े आराम से अपने लिए दो जोड़ी जूते ख़रीद लूंगाः एक जोड़ी काले और दूसरी ... ख़ैर वहां देख लूंगा।"

"अरे, अरे, ताजीबाय," ख़दीचा ने आपत्ति की। "आप मेरी बात समझे ही नहीं। क्या आपको मुझसे ज़्यादा चलना पड़ता है?"

"क्या? तुम्हारा मतलब है कि मैं... तुम्हारी तबियत तो ख़राब नहीं हो गयी है, ख़दीचा?"

"शुक्रिया, मैं ठीक हूं। लेकिन कोई भी बता देगा कि मुझे दिन भर आपसे ज़्यादा चलना पड़ता है।"

"या ख़ुदा!" ताजीबाय का पारा चढ़ने लगा। "यह औरत दिन भर घर में बैठी रहती है, जब कि मुझे खेतों के चक्कर काटने पड़ते हैं! मैं टैक्सी में थोड़े ही सवारी करता हूं! मैं दिन भर में पैदल सिपाही से भी ज़्यादा फ़ासला तय करता हूं!"

"तो क्या हुआ?..." ख़दीचा ने जवाब दिया। "आजकल तो हमारी सारी पैदल फ़ौज लारियों में चलती है।"

"मेरे काम से अपने काम का मुक़ाबला करने की तुम्हें हिम्मत कैसे हुई!" ताजीबाय चिल्ला पड़ा। "मैं दिन भर पैदल चलता हूं।"

"और मैं लेटी रहती हूं, चाय पीती रहती हूं," ख़दीचा ने कटाक्ष किया।

लेकिन जब ताजीबाय पर किसी बात का भूत सवार होता था, तो फिर वह किसी की नहीं सुनता था, अपनी ही रट लगाये रहता था।

"मैं अपनी बीवी से कम चलता हूं! या ख़ुदा!" उसने वैसे ही ठहाका लगाया, जैसे बच्चों की कार्टून फ़िल्मों में दुष्ट जादूगर लगाते हैं। "नहीं, मुझे चायख़ाने में जाकर अपने सारे दोस्तों को यह मज़ाक़ सुनाना पड़ेगा। कितने ख़ुश होंगे वे! ऐसा मज़ाक़ सुनाने के लिए तो वे महीने भर मुझे पुलाव खिलायेंगे! हा-हा-हा! मैं कम चलता हूं! ... तुम तो यह भी कहोगी कि मैं दिन भर एक ही जगह खड़ा रहता हूं, क्यों? कि मैं बिलकुल भी चलता-फिरता नहीं हूं, क्यों? कि मैं आदमी नहीं, ठूंठ हूं, क्यों? तुम यही तो कहना चाहती थीं, क्यों? मैं ठूंठ हूं! शुक्रिया, घरवाली! यही सुनना बाक़ी रह गया था मेरी क़िस्मत में!..."

सचमुच, इसमें कोई शक ही नहीं कि हमारे गांव में किसी का नाम "तजंग" यूं ही नहीं रखा जाता!

पूरे एक घंटे तक जब ताजीबाय के सारे परिवार ने उसे शांत कराया (ग्रामोफ़ोन पर उसके पसंदीदा रिकार्ड बजाये, बेटियों ने नाच दिखाये, दादी ने परियों की कहानी भी सुनाई), तब जाकर वह कुछ ठंडा पड़ा और

झल्लाहट में मूंछों को बल देता हुआ बोलाः

"कुछ भी हो मुझे यह क़िस्सा दोस्तों को सुनाना ही चाहिए। उन्हें भी हंसने का मौक़ा देना चाहिए।"

"पर कल मेरे साथ-साथ घर के काम कीजिये फिर आप देख लेंगे कि मैं कितना चलती हूं।" ख़दीचा ने कहा।

ताजीबाय ने कोई जवाब नहीं दिया, केवल कुछ अजीब नज़रों से बीवी की तरफ़ देखाः फिर अपनी रट पकड़ ली, कहीं सिर तो नहीं फिर गया इसका!

चायख़ाने में दोस्त लोग आराम से हरी चाय की चुस्कियां ले रहे थे, पिंजरे में बंद बटेर चहचहा रही थी, अंगीठी पर सीख़-कबाब सिक रहे थे और वहां के हाज़िरजवाब बैठे अमरीका के गुंडों और पुलिस के आपसी संबंधों पर बहस कर रहे थे।

दो-एक प्याली चाय पी लेने के बाद जब बातचीत का रुख़ यादों की तरफ़ मुड़ा, ताजीबाय मृदुलता से मुस्कराकर बोलाः

"सुनिये, प्यारे दोस्तो, मैं अभी आपका दिल ख़ुश करता हूं। क्या ख़याल है आपका, मेरी ख़दीचा ने पता है क्या कहा आज?"

फ़ौरन अटकलें लगायी जाने लगींः

"यही कि तुम्हारे एक और बेटा होनेवाला है!"

"यही कि तुम्हें मूंछें बहुत पहले साफ़ करा देनी चाहिए थीं!"

"यही कि अब कार ख़रीद लेनी चाहिए!"

उत्तर में ताजीबाय केवल हंसता रहा। जब सारी अटकलें ख़त्म हो गयीं, तब वह बोलाः

"उसने कहा कि ताशक़न्द में मैं अपने लिए एक ही जोड़ी जूता खरीदूं और उसके लिए – दो जोड़ी।"

"क्यों?"

"वह इसलिए, प्यारे दोस्तो, कि दिन भर में वह मुझसे बहुत ज़्यादा पैदल चलती है!" ताजीबाय ने कहा।

"तुम्हारी ख़दीचा को आख़िर यूं ही तो बड़ी होशियार नहीं कहा जाता है!" पहले से चाबी भरे हुए ताजीबाय उर्फ़ तजंग को छेड़ते हुए

टोली-नायक ग़फ़ूर ने कहा और साथियों को आंख मारी। "कहीं उसकी बात ही सच निकली तो?"

ताजीबाय फ़ौरन ज़मीन-आसमान के क़ुलाबे मिलाने लगा, चाय के बारे में भी भूल गया, गिनाने लगा कि दिन भर में वह क्या-क्या काम करता है (हिसाब लगाने पर मालूम पड़ा कि वह विषुवत-रेखा पर चलते हुए पृथ्वी की लगभग दो परिक्रमाओं के बराबर फ़ासला होता है), और अंत में बोला।

"अपने अब्बाजान की क़समः अगर मुझे यह मालूम पड़ गया कि मैं अपनी बीवी से कम चलता हूं, तो मैं अपनी मूंछें मुंडा दूंगा!"

दोस्त ज़ोर-ज़ोर से कह उठे:

"अरे, छोड़ो भी ऐसी झूठी क़समें, यार!"

"ऐसे में सही और ग़लत का फ़ैसला कौन करेगा?"

"हममें से कोई भी जांच नहीं कर सकता कि कौन सही है।"

"क्यों?" टोली-नायक ग़फ़ूर धीरे से बोला। "दिन भर में कौन कितना चला, यह पता लगाना तो बड़ा आसान है। एक पेडोमीटर ख़रीदना पड़ेगा। वह एक तरह की घड़ी होती है, जो क़दम गिनती है। पेडोमीटर हमारी दुकान में भी मिलते हैं – बायीं तरफ़ की ऊपरवाली शेल्फ़ पर डिब्बाबंद खाने की चीज़ों के पास रखे रहते हैं। सस्ते हैं। ताजीबाय उसे ख़रीद लेगा और फिर फ़ैसला हो जायेगा।"

ताजीबाय ने अगले ही दिन पेडोमीटर ख़रीद लेने की क़सम खायी और कहा कि तब ख़दीचा को विश्वास हो जायेगा कि उसके लिए एक जोड़ी जूते ख़रीदना भी ज़्यादा होगा।

उसने पत्नी को कुछ बताये बिना पेडोमीटर ख़रीद लिया और दिन भर उसे जेब में डाले घूमने लगा। जाड़े की जुताई चल रही थी (सामूहिक फ़ार्म में खेती के कामों की कभी कमी नहीं रहती), इसलिए शाम होते-होते पेडोमीटर में पांच अंकों की संख्या देखकर ताजीबाय बड़ा ख़ुश हुआ और उसने उसे तुरंत चायख़ाने में अपने दोस्तों को भी दिखा दिया।

अगले दिन ताजीबाय ने घर पर रहने का फ़ैसला किया, ताकि इस बहस का पूरी तरह फ़ैसला हो जाये। टोली-नायक ग़फ़ूर उसके एवज़ में अगले दिन किसी और से काम कराने को राज़ी हो गया।

"क्या आपकी तबियत ख़राब है?" ताजीबाय के काम पर न जाने से हैरत में पड़ी ख़दीचा ने पूछा।

लेकिन इससे भी ज़्यादा आश्चर्य तो उसे तब हुआ जब ताजीबाय सुबह से ही उसके पीछे-पीछे चलने लगा और चलता ही रहा। ख़दीचा बग़ीचे में जाती तो वह उसके पीछे-पीछे। वह तंदूर के पास रुकती, तो ताजीबाय भी वहीं खड़ा हो जाता। ख़दीचा दुकान जाती, तो वह भी क़दम से क़दम मिलाता उसके साथ-साथ चलता।

"क्या हुआ है आपको? आप अचानक घर के कामों में दिलचस्पी कैसे लेने लगे?" ख़दीचा आश्चर्यचकित थी। "क्या आपका दूसरे कोई काम नहीं है?"

दिन ढलते-ढलते ख़दीचा को गुस्सा आने लगाः

"आपको क्या डर है कि मैं आपको छोड़कर भाग जाऊंगी? जहां तक याद है, आपने मुझ पर कभी जवानी में भी ऐसे शक नहीं किया!"

ताजीबाय जवाब में कुछ बुदबुदाता, अर्थपूर्ण ढंग से ठंडी सांस लेता, मूंछों पर हाथ फेरता। वह आख़िर अपनी पत्नी से कभी कह सकता था कि वह जांच कर रहा है? उसे कहकर देखिये, फिर वह फ़ौरन आम दिनों से दोगुना ज़्यादा चलने लगेगी।

लेकिन ख़दीचा को किसी बात का संदेह नहीं हुआ – उस बेचारी को तो यह तक भी पता नहीं था कि पेडोमीटर किस चिड़िया का नाम है।

दोपहर के बाद ताजीबाय के पैर ऐसे झनझनाने लगे जैसे तेज़ हवा में बिजली के तार। शाम के छः बजते-बजते उसकी चाल ही काफ़ी बदल गयीः पैर घिसटने लगे और पत्नी के साथ क़दम से क़दम मिलाकर चलना उसके लिए बहुत मुश्किल हो गया। आठ बजते-बजते ताजीबाय ख़दीचा के साथ-साथ चलने लायक नहीं रहा, तो वह एक जगह खड़े-खड़े क़दमचाल करने लगा, क्योंकि पेडोमीटर के लिए सब बराबर हैः चाहे क़दम आगे रखिये, चाहे पीछे – क़दमों की संख्या बराबर प्रदर्शित होती रहती है। बच्चे आश्चर्य से अपने पिता की तरफ़ देख रहे थे, जो कि घर में फुर्ती से इधर-उधर जाती-आती मां पर नज़र रखते हुए एक ही जगह पर सधे हुए ऊंट की तरह क़दमचाल किये जा रहा था।

"तुम्हें क्या हुआ, बेटा?" तख़्त पर बैठी दादी ने पूछा। "तुम हर वक़्त यह पैर क्यों बदल रहे हो? बैठकर आराम करो।"

"यह एक तरह की कसरत है ... आह ... सबसे अच्छा तरीक़ा है ... ओह ... तरोताज़ा रहने का ... ओह!" ताजीबाय ने कमर पकड़ते हुए जवाब दिया।

शाम के खाने के बाद जब सब मेज़ से उठे, तो ताजीबाय बड़ी मुश्किल से अपने पलंग तक पहुंच पाया।

ख़दीचा घर के और भी काम किये जा रही थी, उसके क़दमों की आहट कभी अहाते से आ रही थीं, तो कभी बग़ीचे से। उसके बाद उसने टेलीविजन भी देखा, बच्चों को भी सुलाया और अगले दिन के लिए खाना भी बनाया।

ताजीबाय तो अब पैर तो क्या हाथ भी नहीं हिला पा रहा था। उसने किसी तरह जेब से पेडोमीटर निकाला। बाप रे बाप! क़दमों की संख्या उस संख्या की दोगुनी से ज़्यादा हो रही थी, जो उसने बड़े गर्व से दोस्तों को पिछली शाम को दिखाई थी।

ताजीबाय ने तुरंत क़दमों की संख्या को मीटरों में बदला और उसके मुंह से "बाप रे!" निकल गया। यह तो लगभग सत्तर किलोमीटर हो गया! उनके गांव से ताशक़न्द तक का फ़ासला? तिस पर ख़दीचा और चले जा रही है!

... सूरज डूबने के बाद जब ताजीबाय ताशक़न्द से ख़रीदारी करके लौटा, तो बस हमेशा की तरह चायख़ाने के सामने रुकी।

दोस्तों के हाथों में चाय की प्यालियां जैसी थीं वैसी ही रह गयीं और मुंह से उसांस की तरह आश्चर्यचकित आवाज़ें निकलीं।

"यह कौन है? ताजीबाय जैसा लगता है!"

"या ख़ुदा! अगर यह ताजीबाय है, तो इसकी मूंछें कहां गयीं?!"

"मूंछों की इसे क्या ज़रूरत है, जब इसके पास पेडोमीटर है?" टोली-नायक ग़फ़ूर ने चुटकी ली। "अब देखना है, इसने अपनी ख़दीचा के लिए कितने जोड़ी जूते ?

सरवर अज़ीमोव

(जन्म – 1923)

सरवर अज़ीमोव साहित्यविद, गद्य-लेखक और नाटककार हैं। वह मध्य एशिया राजकीय विश्वविद्यालय के भाषाशास्त्रीय संकाय के स्नातक हैं। सरवर अज़ीमोव कई वर्षों से महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे हैं। वह जनतंत्र के लेखक संघ के अध्यक्ष, उज़्बेक सोवियत समाजवादी जनतंत्र के संस्कृति मंत्री, और उसके बाद मंत्री परिषद के उपाध्यक्ष (उप-प्रधानमंत्री) भी रह चुके हैं। उन्हें असाधारण और पूर्णाधिकारी राजदूत की पदवी भी प्राप्त है।

सरवर अज़ीमोव के साहित्य-समालोचना के लेख सन् 1948 से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं। वह सुप्रसिद्ध उज़्बेक साहित्यकारों के कृतित्वों को समर्पित अनेक प्रबन्धों के लेखक हैं। उन्हें भाषा विज्ञान के डाक्टर की उपाधि मिल चुकी है। सरवर अज़ीमोव नाट्य-लेखन व सिने नाट्य-लेखन के क्षेत्रों में अत्यंत सफल रहे हैं। वह "डायरी का पन्ना" और "वतन के बेटे" नामक फ़िल्मों की पट-कथाएँ लिख चुके हैं। जनतंत्र के थियेटरों में उनके नाटकों "ख़ूनी मृगतृष्णा" और "मैं सितारे देख रहा हूँ" का सफल मंचन किया जा चुका है। सरवर अज़ीमोव को उनकी गद्य रचनाओं "तारों-से नयनोंवाली" और "पतझड़ की कहानियाँ" के लिए भी काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है।

मेरा दोस्त

मुझे अपनी ज़िंदगी में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों को देखने का मौक़ा मिला – नेकदिल, संवेदनशील लोगों को भी और भद्दे, कठोर स्वभाव के लोगों को भी। पर वह सबसे भिन्न था। उसमें कोमलता और दृढ़ मनोबल का अद्भुत सम्मिश्रण था। शायद इसलिए कि बचपन से उसने बेलोरूस के वनों के सबसे सुन्दर पेड़, कोमल और सुडौल भोजवृक्षों से बसंत में रिसनेवाले रस को मां के दूध की तरह पिया था।

उसका बड़ा शानदार नाम था – स्तानिस्लाव यानी अपनी जन्म-भूमि का गौरव बढ़ानेवाला। पर उसके दोस्त उसे उसके घर के नाम – स्तास से पुकारते थे। उसका नाम डाल दिया गया था – अड़ियल। पर यह बड़े प्यार, बड़े अपनेपन के साथ कहा जाता था।

स्तास चालीस बरस का हृष्ट-पुष्ट सुडौल पुरुष था। बड़ा मिलनसार और शिष्ट, मगर कभी-कभी किसी सोच में डूबकर खो जानेवाला। वह अपनी कार्यकुशलता के लिए प्रसिद्ध था। जिस काम में भी हाथ डालता था, उसे उम्दा ढंग से करता था। पर सबसे पहले वह उत्तम राजगीर था।

उससे मेरी दोस्ती मोर्चे पर शुरू हुई थी, जब तीन जुलाई 1944 को हमने मीन्स्क की मुक्ति के लिए कंधे से कंधा मिलाकर लड़ाई लड़ी थी। स्तास उस समय किशोरावस्था में था। उसके बाद हम साथ-साथ बर्लिन तक पहुंचे।

सौभाग्यवश लड़ाइयों में हमारा बाल बांका नहीं हुआ और राईख़स्टाग के पास हम विदा लेकर अपने-अपने घर लौट गए: वह मीन्स्क और मैं

ताशक़न्द। पर हमारी दोस्ती यहीं ख़त्म नहीं हुई। हम पत्र-व्यवहार करते रहे। कुछ ही दिनों के लिए सही पर दो बार स्तास हमारे यहां आया।

बसंत का मौसम था। रविवार की सुबह थी। मैं अपने बाग़ में बैठा था। अचानक स्तास आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। उसका चेहरा सूरज की तरह दमक रहा था।

"अरे, अड़ियल! तुम कैसे?" मैंने ख़ुशी के साथ कहा।

"तेरी याद मुझे सताने लगी। सोचा, ख़बर देकर क्यों तुम्हें परेशान करूँ। इसीलिए एकदम आ धमका।"

इस तरह हंसते-हंसते, हमने घर में प्रवेश किया।

मालूम हुआ कि वह एक डिब्बे में मेरे लिए भोजवृक्ष का रस लाया है।

"हमारे जंगलों में बसंत आ गया है, ज़रा चखकर देखो!"

"वाह, कितना मज़ेदार है!" मैंने कुछ रस पीकर होंठ पोंछते हुए कहा।

उस बार स्तास हमारे यहां पहले की अपेक्षा कुछ अधिक रहा। पर घर देर से लौटने लगा। कभी ख़ुश, उत्साहित होकर, तो कभी उदास और चिंतित होकर।

उसके कमरे में मैंने महान रूसी नर्तकियों आन्ना पावलोवा और गलीना उलानोवा के बारे में पुस्तकें देखीं। बैले और नर्तकियों के बारे में ये पुस्तकें और नर्तकियों के छायाचित्र देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि कब से वह इसमें रुचि लेने लगा है। मैंने यह बात छेड़ने की भी कोशिश की, पर स्तास ने मुस्कराकर बात टाल दी।

उसी बसंत में ताशक़न्द में भूचाल आया। हमारा बड़ा और सुन्दर शहर क्षत-विक्षत हो गया।

कई दिन तक मैं अपने काम पर ही रहा। काम बहुत था। सबको हमारी सहायता की ज़रूरत थी। इसलिए कई दिन घर भी नहीं जा सका। जब एक दिन शाम को घर आया तो पत्नी से स्तास के बारे में पूछा। उसने हाथ हिलाकर जवाब दिया:

“पता नहीं, क्या हुआ। उस दिन तुम्हारे साथ जो निकला था, तब से लौटकर नहीं आया है।”

“सही-सलामत तो?” मैंने व्याकुल होकर कहा।

पर स्तास आ गया। उसे पहचानना ही मुश्किल था। बिलकुल दुबला हो गया, आंखें भीतर धंसी हुई थी और होंठ कड़वाहट से भिंचे थे। सिर हिलाकर हमारा अभिवादन करके वह कुछ बुदबुदाया और अपने कमरे में घुसकर दरवाज़ा बन्द कर लिया।

मैंने पत्नी की ओर देखा, वह मुझे देख रही थी। हम दोनों आशंकाग्रस्त बन्द दरवाज़े की ओर देखने लगे।

स्तास पहले भी बहुत भावुक और संवेदनशील था। मोर्चे पर जब सब लोग सांस लेने बैठते और हंसी-मज़ाक़ करते थे तो वह अक्सर किसी सोच में पड़ा उदास रहता था।

“हमारे शहर पर आई मुसीबत से वह इतना परेशान है। वह अपना दुख इसी तरह चुपके-चुपके झेल रहा है,” मैंने पत्नी से कहा।

बड़ी मुश्किल से मैंने उसे नाश्ता करने के लिए मनाया। स्तास बरामदे से निकला, तो उसे देखकर मेरा दिल बैठ गयाः उसकी आंखों की चमक बुझ गई थी, वह बड़ी मुश्किल से सांस ले पा रहा था।

मैंने आहिस्ता से पूछाः

“कैसे हो? तबियत कैसी है?”

सिर झुकाए और यंत्रवत् मेज़पोश के एक कोने को मरोड़ते हुए स्तास ने बुदबुदाकर कहाः

“ठीक हूं।”

“पर तुम तो बिलकुल बीमार लगते हो, भई। क्या बात है?”

तब उसने सिर उठाया और टकटकी बांधे मेरी आंखों में देखते हुए उसने कहाः

“उस्ताद ... मैं मोर्चे पर लड़ाई ठीक लड़ा?”

“ज़रूर! तुमने बड़े साहस का परिचय दिया। गौरव बढ़े ऐसे वीरों का! पर तुम यह क्यों पूछ रहे हो?”

मैंने यहीं ताशक़न्द में रह जाने का फ़ैसला किया है। तुम्हें एतराज़

नहीं हो, तो मुझे अपना शागिर्द बना लो। मंज़ूर है, क्या?"

"तुम ... तुम यह क्या करने जा रहे हो, स्तास?"

"अब ताशक़न्द को राजगीरों की विशाल सेना की ज़रूरत है।"

"राजगीरों की? पर तुम तो ख़ुद इस काम के माहिर हो। मैं तुम्हें क्या सिखा सकता हूं? अगर स्पर्द्धा की बात हो, तो मुझे मंज़ूर है। मैं तुमसे पीछे न रहने की भरसक कोशिश करूंगा।"

"अच्छा, तो हाथ बढ़ाओ, उस्ताद।"

"लो, मेरा हाथ, अड़ियल।"

हम बड़े उत्साह के साथ काम में लग गए। कमर सीधी करने की भी फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। हम ही नहीं, सब बड़ी लगन से काम कर रहे थे। थोड़े ही दिनों में शहर में बहुत-सी इमारतों का निर्माण किया गया, बहुत से मकानों का जीर्णोद्धार किया गया। चार लाख लोग जो बेघर हो गए थे, उनमें से बहुतों को फ़्लैट मिल गए।

प्राकृतिक विपत्ति के सामने चाहे हम अभी कमज़ोर हैं, पर लोग अपनी मेहनत से कमाल कर देते हैं। और दृढ़ स्वभाव के चुप-चुप रहनेवाले स्तास ने अपनी कुशलता के लिए ताशक़न्द के निर्माताओं में शीघ्र ही प्रसिद्धि पा ली।

"कमाल है!" मैं उससे कहा करता। "सबको पीछे छोड़ दिया। यह तुमने कैसे किया?"

हर बार मुझे अपने सवाल के लिए पछताना पड़ता था, क्योंकि वह मुझ पर उदासी-भरी निगाह डालकर ही रह जाता था। मेरा दिल व्याकुल हो उठताः लोग उसका इतना मान-सम्मान करते हैं, और वह सदा उदास रहता, लोगों के बीच भी अकेला-अकेला रहता है, कोई बात उसे ख़ुश नहीं करती। क्या बात है? कुछ समझ में नहीं आता।

जब पतझड़ के शांत, शीतल दिन आ गए, खलिहान फ़सलों से भर गये, मैंने उसे एक दिन शहर के बाहर पिकनिक के लिए आमंत्रित किया। वह ख़ुशी के साथ राज़ी हो गया। सच बताऊं तो मुझे लगा कि वह बड़ी हड़बड़ी में तैयार हो गया है। सुबह सवेरे एक-एक प्याला मलाई खाकर हम दुरमेन के लिए रवाना हो गये।

बागों में पेड़ फलों के बोझ से झुके जा रहे थे। और फल भी कैसे थे?! लगता था जैसे छूते ही मीठा रस फूट पड़ेगा। प्रकृति का सोना जगमगा रहा था, उससे दिल को गर्मी और राहत मिल रही थी।

मेरी पत्नी ने खाने का ढेर सारा सामान बांध दिया था। और क़ारासू नदी के किनारे पर हमने ऐसा पुलाव बनाया कि खानेवाला उंगलियां ही चाटता रह जाये।

एक-एक जाम पीने के बाद हमने जल्दी से थाली ख़ाली कर डाली। इसके बाद हम कड़क चाय पीने लगे। चाय से प्यास ही नहीं बुझती है बल्कि थकावट भी दूर हो जाती है, और शक्ति का संचार होता है।

यहां आकर स्तास वाचाल हो उठा। मुझे लगा कि वह कुछ ख़ुश हो गया है। वह बोलाः

"उस्ताद! वह झाड़ी देखते हो, बिलकुल सुनहरी, छोटी-सी, मानो आग में दमक रही हो। क्या नाम है इसका?"

"हां, अब वह सुनहरी है। और बसंत में वह गहरे लाल रंग के फूलों से लद जाती है। लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं। इसे जंगली बिही कहते हैं। हां, तो क्या?"

"युद्ध के काल में तुम हमारे बेलोवेजस्काया पूशा वन में गये थे न? याद है वह तुम्हें?"

"ज़रूर! ऐसे सुन्दर स्थान को भी कोई भूल सकता है भला?"

"वहां भी शंकुधारी वन में कहीं-कहीं ऐसी ही झाड़ियां मिलती हैं।"

"जन्म-भूमि की याद सता रही है, क्या, अड़ियल?"

"जो अपने घर से दूर उसे याद नहीं करता, उसे आदमी थोड़े ही कहा जा सकता है। है न, उस्ताद? पर मेरा मतलब यह है कि इस नन्हें पेड़ की अद्वितीय सुन्दरता मुझे मेरे एक बहुत अज़ीज़ इनसान की नज़ाकत और हुस्न की याद दिलाती है। समझे, उस्ताद?"

"वह कौन है, अड़ियल?"

"गुलनाज़।"

"अरे! यह तो उज़्बेक नाम है। अच्छा, भई। ऐसे नहीं चलेगा। ऐसा भी क्या राज़ है, जिसे तुम अपने दोस्त के सामने नहीं खोल सकते? मैं

तो देखता हूं कि तुम दुखी हो, पर कारण मुझे मालूम नहीं। अपना दुख अपने दोस्त के साथ बांटोगे, तो मन हल्का हो जाएगा।"

"मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाता हूं, उस्ताद। वह मेरे लिए सब कुछ थी। पर यह एक लम्बी कहानी है।"

"कोई बात नहीं। हम जल्दी में नहीं हैं। देखो वह नदी भी हौले-हौले बह रही है। सुनाओ अपने दिल की बात।"

"अच्छा उस्ताद! तुम्हीं तो मेरे सबसे जिगरी दोस्त हो।

नदी धीरे-धीरे शांत बह रही थी, जैसा कि पतझड़ में हुआ करता है। नदी के इस शांत प्रवाह पर निगाह टिकाये स्तास ने अपना क़िस्सा शुरू कर दिया:

"तुमसे हमारी मुलाक़ात मीन्स्क के पास हुई थी न? इससे पहले मैं छापामारों के दस्ते में था। तुम्हें याद ही होगा कि जब हम मीन्स्क के पास मिले, तब मैं बहुत जवान था। और जब छापामार दस्ते में शामिल हुआ था, तब तो एक बालक ही था। अपने मां-बाप से मैं युद्ध के पहले ही दिनों बिछुड़ गया। हिटलर के सिपाहियों ने हमारे गांव को जलाकर भस्म कर दिया था। हालांकि मैं छापामारों की कोई ख़ास मदद नहीं कर सकता था, फिर भी अपनी तरफ़ से इसकी भरसक कोशिश करता था। मैं दस्ते के कमांडर फ़िरालोविच की खोह में रहता था और पास की खोह में एक डाक्टरनी रहती थी। वह एक उज़्बेक महिला थी। अपनी छोटी बेटी के साथ वह मीन्स्क में अपनी सहेली से मिलने आई थी कि लड़ाई छिड़ गई। वे घर नहीं लौट सकीं, इसलिए वे छापामारों के पास आ गयी थीं।

एक दिन जर्मनों को हमारे दस्ते के अड्डे का पता चल गया, उन्होंने बम बरसाना शुरू कर दिया। हमें वह स्थान छोड़कर जाना पड़ा। घायल लोगों, डाक्टरनी व उसकी बेटी को हमने पास के एक गांव में छोड़ दिया, और ख़ुद दूरवर्ती जंगलों में चले गए।

एक सप्ताह बाद मुझे अपने लोगों को देखने और स्थिति का जायज़ा लेने के लिए उस गांव में भेजा गया।

रास्ते में दो दिन लग गये। शाम को मैं जंगल से निकला। लेकिन जहाँ वह गांव था, अब वहां कोई गांव नहीं रह गया था। मुझे अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ: मकानों की जगह राख़ के ढेर और

काली-काली अंगीठियाँ ही बची थीं। जहां कुछ ही दिन पहले एक आबाद गांव था, वहां अब भयानक निस्तब्धता छायी थी। डर के मारे मेरी चीख़ निकलते-निकलते रह गयी।

अचानक एक बच्चे की धीमी-सी आवाज़ सुनाई दी। अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ...

मैं थोड़ी देर तक निश्चल खड़ा रहा, फिर कान लगाकर सुनने लगा। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यहां बच्चे की आवाज़ कहां से आ सकती है। यहां तो राख के सिवा कुछ नहीं है।

मन-ही-मन में सोचने लगाः कहीं यह किसी की चाल तो नहीं है? कहीं कोई इस आवाज़ से मुझे अपने जाल में तो नहीं फंसाना चाहता है? उस समय तो क्या नहीं होता था, यह तो तुम जानते ही हो।

मैं लौटनेवाला था, पर फिर किसी बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी। क्षीण, धीमी, पर स्पष्ट! दबे पांव मैं उस ओर बढ़ा, जहां से वह आवाज़ आ रही थी।"

स्तास सहसा चुप हो गया और देर तक उनींदी नदी को ताकता रहा।

"शीघ्र ही मुझे मारे गए लोगों की लाशें दिखाई दीं," उसने भर्राये स्वर में अपनी कहानी जारी रखी। "मैंने उन्हें पहचान लिया। ये वही लोग थे, जिन्हें हमने डाक्टरनी के साथ गांव में छोड़ा था। डाक्टरनी को भी देखा। जर्मनों ने सबको गोली मार दी थी। केवल एक छोटी-सी लड़की मृत मां के पास बैठी सिसकियां भर रही थी। झुककर मैंने उसे उठा लिया। इतने में कोई ज़ोर से चिल्लायाः "हाल्ट*! हाल्ट!"

लड़की को गोद में लेकर मैं जंगल की ओर दौड़ पड़ा। पीछे से गोलियों की आवाज़ें सुनाई दीं। पर अंधेरा था, कोई मुझे देख नहीं सकता था। वन में घुसने पर मैंने कुत्तों का भौंकना सुना। उन्होंने मुझे पकड़ने के लिए कुत्ते छोड़ दिये थे। यह बहुत ख़तरनाक बात थी, क्योंकि मेरी गोद में बच्ची थी और मैं झाड़ियों के बीच जल्दी नहीं दौड़ सकता था। लड़की फिर रोने लगी। मैंने अपने हाथ से उसका मुंह बन्द कर दिया, उसे सीने से चिपटा लिया। अंततः मैं घने सुनसान जंगल में पहुंच गया। मेरी जान

---

* ठहरो!

में जान आ गई। मैंने ठंडी सांस ली। यहां मैं हर पगडंडी, हर खाई को जानता था। आंखें अंधेरे की आदी हो चुकी थीं और मैंने आसानी से अपना रास्ता ढूंढ़ लिया।

भोर के समय मैं छापामार शिविर में पहुंच गया। मैं इतना थक गया था कि मेरे पैर डगमगाने लगे थे।

इतनी मुसीबतों के बाद बच्ची बेहाल होकर सो रही थी। उसके पास उकड़ू बैठकर फ़िरालोविच उस उज़्बेक महिला की याद करने लगा जो बेलोरूस के वन की छाया में सदा के लिए सो गई थी। कितनी नेक, सहृदय थी वह डाक्टरनी!

'अच्छा ... तो यह डाक्टरनी की अमानत है,' फ़िरालोविच ने कहा, 'इतनी नाज़ुक, इतनी कमज़ोर ... न जाने कैसे पालेंगे-पोसेंगे हम इसे? जब हवाई जहाज़ आएगा, हम इसे मोर्चे के पीछे भेज देंगे। तब तक ... तब तक मैं उसे तुम्हारे ज़िम्मे सौंपता हूं, समझे? तुम उसकी देभखाल ठीक से करना! इसका नाम गुलनाज़ है। याद रहेगा क्या?'

मैं अपने मां-बाप का इकलौता बेटा था और कभी मुझे किसी बच्चे की देखभाल नहीं करनी पड़ी थी। इसलिए मेरे लिए यह कोई आसान काम नहीं था। फिर छापामारों की छेड़छाड़ भी सहनी पड़ती थी, कोई-न-कोई ज़रूर पूछ लेता था: 'क्या हाल-चाल है, गुलनाज़ की मां? बच्ची को पिलाने को दूध तो है न, सूख तो नहीं गया?'

लड़की को जो कुछ सहना-भोगना पड़ा, उसके कारण वह बुरी तरह बीमार हो गई। उसे बुख़ार चढ़ गया। शरीर तपने लगा। वह छटपटाती रही। बेहोशी में चीख़ती, अपनी मां को बुलाती। मैं घबरा गया। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं।

अंततः बुख़ार उतर गया, बीमारी दूर हो गई और एक दिन सुबह सवेरे बच्ची स्वस्थ और ख़ुश होकर उठी। बचपन तो बचपन ही होता है। जल्दी ही बच्ची शरारतें करने लगी, बतियाने लगी। उसकी काली-काली आंखों में शरारती चमक रहती थी। वह अपने लिए तरह-तरह के खेल ईजाद कर लेती और सदा मेरे साथ रहती थी। मुझे कहीं जाना पड़ता, तो वह मेरे साथ चल पड़ती थी। बड़ी शोख़ लड़की थी। पर कभी-कभी गंभीर हो जाती और पेड़ों पर फुदकते-चहचहाते और आकाश में उड़ते पक्षियों को घंटों एकटक देखती रहती।

मेरे दिल में उस छोटी लड़की के प्रति बड़ा स्नेह था, मैं उसका आदी हो गया था और उससे बिछुड़ने के बारे में सोचते हुए भी मुझे डर लगता था। मगर एक दिन हवाई जहाज़ आ गया। बच्ची से विदा लेनी पड़ी। वह मुझसे ऐसे लिपट गई मानो मेरी सगी बहिन हो। मेरा तो अपना कोई नहीं था। 'तुम तो मुझे नहीं भुलाओगे न?' उसने पूछा। 'नहीं, हरगिज़ नहीं,' मैंने जवाब दिया।

मेरी आंखें भर आईं। छापामारों के सामने रोना बड़े शर्म की बात थी, पर मैं अपने को रोक नहीं सका। इसके तुरंत बाद मीन्स्क के लिए घमासान लड़ाई शुरू हुई, जहां हमारी मुलाक़ात हुई, उस्ताद..."

"हां, क्या-क्या बीता हम पर उस समय," मैंने कहा। अच्छा हुआ कि वह वक़्त अब गुज़र चुका है। तो बाद में क्या हुआ?"

"बाद में?..." पल भर के लिए वह सोच में डूब गया। "कभी-कभी भाग्य बड़े विचित्र खेल खिलाता है। जब मैं एक बार तुमसे मिलने यहां ताशक़न्द आया था, तो एक दिन एक बैले देखने थियेटर गया। उसका पहला भाग मुझे अच्छा नहीं लगा और मैं उठकर जाने ही वाला था कि मंच पर एक हिरनी जैसी सुडौल नर्तकी आ गई। मैं ही नहीं, सब लोग मुग्ध होकर उसका नाच देखने लगे।

मुझे कुछ परिचित-सी लगी, मानो कभी उससे हमारी जान-पहचान थी... मुझे उस डाक्टरनी की याद आ गई, जो छापामारों के जंगल में शहीद हुई थी। हां, नर्तकी की शक्ल-सूरत तो उसी से मिलती-जुलती है। 'तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?! दोनों उज़्बेक औरतें, एक ही जनता की पुत्रियां हैं,' मैं मन-ही-मन में सोच रहा था और मेरी आंखें कलाकारों की सूची पर टिकी थीं, अचानक उसमें मुझे गुलनाज़ का नाम नज़र आया। मेरा सिर चकरा गया। मेरा दिमाग़ उधेड़बुन में पड़ गया। 'क्या यह वही लड़की है? इतनी बड़ी हो गई? यह कैसे हो सकता है? नहीं, यह नहीं हो सकता।'

इसी उधेड़बुन में मैं थियेटर से निकला।

यह मालूम करके कि अगला प्रोग्राम कब हो रहा है, मैंने टिकट ले लिया। इस बार पहली क़तार का। गुलनाज़ का नाच लाजवाब था। इससे पहले कभी मैंने इतना सुन्दर नृत्य नहीं देखा था, ऐसा लगा कि अभी-अभी

मुझे बैले के सौंदर्य का बोध हुआ है।

अब मेरा संदेह दूर हो गया थाः एक ही नाम की दो ऐसी युवतियां नहीं हो सकती हैं जिनकी शक्ल-सूरत भी इतनी मिलती-जुलती हो। बैले के बाद मैं उस दरवाज़े के पास जाकर खड़ा हो गया, जहां से थियेटर में काम करनेवाले लोग निकलते हैं।

जब वह दिखायी दी, तो मैं इतने विश्वास के साथ उसकी ओर आगे बढ़ा कि वह रुक गई और मुझे देखने लगी। शायद मेरा चेहरा उसे परिचित-सा लगा होगा, उसने ध्यान के साथ मेरी ओर देखा। मेरी मुस्कान, मेरा हर्षावेश देखकर उसने कुछ अविश्वास मिश्रित स्वर में पूछाः

"स्तास?"

महायुद्ध में बहुत से लोग एक दूसरे से बिछुड़ने के बाद फिर इसी तरह संयोग से मिल रहे थे। इसलिए हमारी भेंट भी इसी प्रकार की हज़ारों भेंटों में से एक थी। पर गुलनाज़ ने कहाः

'यह तो चमत्कार है!'

उसने ऐसा कहा, तो मुझे भी कोई संदेह नहीं रहा कि यह वास्तव में चमत्कार है।

बातें करते-करते और बीच-बीच में मौन एक दूसरे को ताकते हुए हम उसके घर पहुंचे।

यह तब की बात है, जब पिछली बार मैं आया था।

तब हमने मेरे यहां बेलोरूस जाने का फ़ैसला किया। हमने उसकी मां की क़ब्र पर जाकर उनके प्रति श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। उस जंगल में भी गए, जहां हम युद्ध के समय छिपे थे। बाद में वह ताशक़न्द लौट गई और मैं वहीं रह गया। बीस साल बाद फिर हम बिछुड़ गये।

मैं समझ गया कि गुलनाज़ के बिना मेरा जीवन वैसा ही होगा, जैसा मछली का बिना पानी। इसीलिए उन्नीस सौ छियासठ के बसंत में मैं फिर ताशक़न्द आ गया।

हमारी मुलाक़ात एक शानदार उत्सव-सी साबित हुईः प्रकृति सर्दियों की नींद से जाग उठी थी। सब कुछ हरा-भरा हो गया था। चारों ओर रंग-बिरंगे फूल इन्द्रधनुषी आभा बिखेर रहे थे। गुलनाज़ का सौंदर्य भी निखर उठा था। वह बहुत प्रसन्न और सुखी थी।

वह मुझे अपने सपनों, विश्वविख्यात नर्तकियों और बैले कला के बारे

में बताया करती थी, जिसे उसने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। उन दिनों उसकी चाल ही बदल गयी थी। लगता था कि वह ज़मीन पर क़दम रखे बिना हवा में उड़ रही हो।

पच्चीस अप्रैल को हमने उसका जन्मदिन मनाया। उसकी सहेलियां और दोस्त आए। पार्टी बहुत अच्छी रही। ख़ूब हंसी-मज़ाक़ हुआ। हमने अपने सपनों, अपनी कल्पनाओं की चर्चा की। अपने भविष्य की कल्पना की। हमें पक्का विश्वास था कि जल्दी ही हमारे सपने पूरे हो जायेंगे।

काफ़ी देर हो चुकी थी। सब अपने-अपने घर चले गये थे। मुझे भी जाना था। पर जाने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। पर मैंने उससे विदा ली। उसने बड़े प्यार के साथ कहाः

'कल फिर मिलेंगे!...'

मैं घर आया तो आप लोग गहरी नींद में सोये थे। मैं चुपके से अपने कमरे में जाकर लेट गया। पर नींद नहीं आ रही थीं। अचानक एक नीली-नारंगी रोशनी आसमान में कौंध उठी। धरती गड़गड़ा उठी। नीचे से हमारे मकान को जबरदस्त धक्का लगा और वह झूलता हुआ-सा चरमराने लगा।

... मुझे गुलनाज़ मिली। वहीं ... जहां वह सोयी थी। छत गिर गई थी और वह उसके शहतीर से दबकर मर गई थी।"

आगे उसने कुछ नहीं कहा। वह सोई हुई नदी पर नज़र डाले मौन बैठा रहा और शायद उसे इस बात का आभास ही नहीं हुआ कि उसके गालों पर आंसू ढुलक रहे हैं।

अब मुझे उसके दिल की बात मालूम हो गई। अब मैं समझ गया कि वह अपना दुख भुलाने के लिए ही नहीं बल्कि गुलनाज़ की स्मृति बनाये रखने के लिए पूरा प्रयास कर रहा है। वह उसी के शहर का पुनः निर्माण कर रहा है। यही प्यार उसमें नई शक्ति का संचार कर रहा है।

ऐसा है मेरा दोस्त। पौरुष के साथ-साथ कैसी सहृदयता है उसके स्वभाव में! हीरे की-सी कठोरता और फूल की-सी कोमलता है!

मक़्सूद क़ारियेव

(जन्म – 1926)

मक़्सूद क़ारियेव गद्य-लेखक और पत्रकार है। सन् 1947 में उन्होंने ताशक़न्द विधि संस्थान की शिक्षा समापत की और तत्पश्चात् क़ानून के केंडीडेट (एल.एल.डी.) की उपाधि प्राप्त की।

मक़्सूद क़ारियेव की कहानियाँ सन् 1950 से प्रकाशित हो रही हैं। आजकल की महत्त्वपूर्ण नैतिक समस्याओं से संबंधे रखनेवाला उनका प्रथम लघु-उपन्यास "चाँदनी रातें" सन् 1968 में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद "रुपहली पत्तियाँ," "अफ़ासिआब की हूर" तथा "सारस बुलंदियों पर उड़ते हैं" नामक लघु-उपन्यास प्रकाशित हुए। मक़्सूद क़ारियेव की कहानियों व लघु-उपन्यासों का अनुवाद सोवियत संघ की अनेक भाषाओं में हो चुका है।

पिकनिक

तीन बहादुर थे। मैं, अहमद और सादिक़। सच कहा जाये तो बहादुर तो दो ही थेः सांवला, सुडौल अहमद और लम्बा, फुर्तीला सादिक़ और उनके बीच था दुबला-पतला-सा किशोर – यानी मैं। पहले मुहल्ले में फिर स्कूल में साथ-साथ रहने के कारण हमें तीन बहादुर कहकर ही पुकारा जाता था। हम तीनों एक ही मुहल्ले में पले, एक ही स्कूल में पढ़े। पर जिगरी दोस्तों में से हरेक का अपना स्वभाव, अपना चरित्र था। अहमद शांतप्रकृति का, हृदयसम्पन्न और अल्पभाषी था। अपने बारे में कुछ कहना ही मुश्किल है। और सादिक़ फुर्तीला और मुस्तैद युवक था, पर उसका मिज़ाज तेज़ और तबीअत ज़िद्दी थी। उसका संचालन कौशल सराहनीय था, मगर उस पर हर काम में अव्वल आने, नेता बनने का भूत सवार था। कभी-कभी अहमद और मैं साथ मिलकर अपने ढंग से उसका इलाज करने की कोशिश करते थे। हम आपस में आंख मारकर उस पर टूट पड़ते थे और उसकी नाक ज़मीन से रगड़ देते थे। इसके बाद रुठकर वह दो-तीन दिन तक हमसे बात नहीं करता था और फिर...

वाह, बचपन का वह स्वर्ण काल! इसकी याद मेरे मन में कभी नहीं मिटेगी। एक दिन हमने आदमक़द पतंग बनाकर उड़ायी तो वह सादिक़ को खींचकर ले गयी ... एक दिन नदी में नहाने गए तो किसी ने अहमद के कपड़े चुरा लिये ... एक बार मैं सर्दियों में लकड़ी के स्केट्स बनाकर स्केटिंग करने लगा, बर्फ़ कच्ची थी इसलिए फटाक से टूट गयी और पल

भर में मैं हौज़ के शीतल पानी में डुबकियाँ खाने लगा ... और वसंत में पिकनिक पर, ट्यूलिप चुनने के लिए गए तो मूसलाधार बारिश हुई, हम तरबतर हो गए ... बचपन की ये प्यारी यादें मेरे मन में आज भी ताज़ी है। अफ़सोस है कि उस सुनहरे ज़माने को लौटाया नहीं जा सकता।

साल बीतते गये। हमारे रास्ते अलग-अलग हो गए। अहमद का परिवार मकान बनवाकर दूसरे मुहल्ले में चला गया, हमें चिलंज़ार में एक बहुमंज़िला इमारत में फ़्लैट मिल गया। पुराने मुहल्ले में अकेला एक सादिक़ ही रह गया। मेरे दोनों साथी उच्च शैक्षणिक संस्थाओं में भर्ती हो गये। और मैं तकनीकी स्कूल में दाख़िल हो गया। फिर मैंने कारख़ाने में काम शुरू कर दिया। साथ ही अपनी शिक्षा भी जारी रखी। और अब मैं एक कारख़ाने का मुख्य इंजीनियर हूं।

... एक दिन मेरा एक सहकर्मी बीमार पड़ गया। मैं अस्पताल में उसे देखने गया, पर अन्दर जाने की इजाज़त नहीं मिली। क्योंकि मिलनेवालों का वक़्त नहीं था। बहुत मिन्नतें करने पर नर्स ने कहाः

"प्रोफ़ेसर से मिलिये, अगर वे इजाज़त दें तो ..."

"कौन हैं वह?"

"अरे आप उन्हें नहीं जानते, वह तो बहुत प्रसिद्ध सर्जन हैं।"

प्रसिद्ध हैं तो होने दो, और मैंने साहस करके दरवाज़ा खोल लिया। जब मैंने प्रोफ़ेसर के कमरे में प्रवेश किया, तो देखता क्या हूं: मेज़ के पीछे सफ़ेद चोग़ा पहने और ऐनक लगाकर अहमद बैठा है।

पहले तो उसने मुझे नहीं पहचाना, पर कुछ ही क्षण बाद भावावेश में चिल्ला उठाः

"तुम क़ादिर तो नहीं हो?"

हम गले मिले, एक दूसरे का हाल-चाल पूछा और बचपन की यादों में खो गए।

उसने पूछाः

"सादिक़ मुझे एक बार मिला था, तो उसने बताया था कि मंत्रालय में काम करता है।"

“मैंने सुना है कि वह उपमंत्री है।”

“तो चलो हम जाकर उससे मिलते हैं,” अहमद ने कहा।

हमने अगले ही दिन जाने का फ़ैसला किया।

हम मंत्रालय पहुंचे तो स्वागत-कक्ष लोगों से भरा था। सेक्रेटरी बड़ी कठोर-सी लग रही थी। हम किसी से पूछे बिना सीधे कमरे में घुस गये। उपमंत्री महोदय ने ऐसे भौएं चढ़ाई मानो पूछ रहे हों कि “क्या माजरा है?” और फिर एकदम ख़ुशी से उसका चेहरा चमक उठा। उसके पास जो आदमी बैठा था, उसने चले जाना ही उचित समझा।

मिलकर हम सबको बड़ी ख़ुशी हुई। अहमद बचपन की-सी शरारतें करने लगाः सादिक़ की कमर पकड़कर उसे उठा लिया। उसकी पकड़ से अपने को छुड़ाने की कोशिशें करते हुए सादिक़ बोलाः

“छोड़ो भई, दरवाज़ा खुला है, कोई अन्दर आ सकता है।” पर अहमद उसे छोड़नेवाला थोड़े ही था, वह हवा में उसे घुमाता रहा। हँसी-मज़ाक़ समाप्त हुआ और हम बचपन की यादों में डूब गए।

“याद है हम मई दिवस के कुछ पहले पिकनिक पर गए थे?”

“हां, ट्यूलिप चुनने!”

“कैसी बारिश हुई थी तब!”

“सादिक़, तुम तो कीचड़ में फिसल गये थे, और तुम्हारी पतलून फट गयी थी।”

“फिर तुम अपने हाथ से छेद ढककर कैसे फुदकते दौड़े थे घर के लिए, याद है?”

हंसते-हंसते हमारे पेटों में बल पड़ गये।

अहमद बोलाः

“चलो छुट्टी के दिन पिकनिक पर चलें!”

“अच्छा विचार है!” सादिक़ ने कहा। मैंने भी उसका समर्थन किया। हमने बाल-बच्चों के बिना जाने का फ़ैसला किया, ताकि बचपन की याद ताज़ी हो। सादिक़ ने कहा कि उसकी कार से चलेंगे।

शुरू में सब ठीक-ठाक रहा। छुट्टी के दिन ज़रूरी साज़-सामान लेकर हम कार में सवार हो गए। वही पुरानी जगहें, पर सब कुछ कितना बदल गया है। और वह रहा ईंटों का पुल। हमने उसे पार कर सीधे मैदान में मुड़ने की सोची, पर न जाने वहां कहां से कोई नाका आ गया। "खेत में फ़सल कुचल जाएगी," यह कहकर किसी को वहां जाने की इजाज़त नहीं दी जा रही थी। हमें भी रुकने को कहा गया। हमारे मुंह उतर गयेः लो हो गयीं बचपन की यादें ताज़ा। पर सादिक़ ने अचानक अपने ड्राइवर को चिल्लाकर आदेश दियाः "चले चलो!" हमारी कार धूल उड़ाती हुई तीर की तरह आगे बढ़ी, पहरेदार लोग हल्ला मचाते रह गए।

हरी-भरी पहाड़ियों और मैदान में खिले लाल ट्यूलिपों की चादर-सी बिछी थी। इस रमणीक दृश्य को देखकर दिल ख़ुशी से नाच उठा। हमने कार को उसी स्थान पर रोका जहां ट्यूलिप सबसे अधिक थे। हमने कार से आवश्यक चीज़ें निकाल लीं। सादिक़ ने ड्राइवर को छोड़ दिया और कहा कि वह लेने शाम को आए।

इस प्रकार एक विशाल मैदान में हम तीनों फिर साथ हो गये। बसंत की शीतल हवा के मंद-मंद झोंके बह रहे थे। फूल-पौधों की महक से नशा-सा चढ़ रहा था। परिवार, नौकरी, जीवन की सारी व्यस्तता भूलकर आज का दिन हम यहां शांति और सौंदर्य की गोद में बिता सकते हैं।

ताज़ी हवा में भूख जल्दी लगती है। हमें भी भूख सताने लगी। काम बांटा गया। मैंने जगह तैयार करके दस्तरख़ान बिछाया। अहमद कबाब बनाने के लिए कोयले सुलगाने लगा और सादिक़ कल से मसालों में भीगे उम्दा गोश्त के टुकड़ों को सींकों में पिरोने लगा।

जल्दी ही कबाक सिंक गये। जाम भर दिये गए। पहला जाम हमने दोस्ती के लिए उठाया। एक और जाम पीने पर गप्पें लड़ाने लगे। पहले बचपन और जवानी के काल की फिर हमारे परिवारों, बाल-बच्चों, दोस्तों, सहकर्मियों – सबकी चर्चा हुई। हां, बरसों बाद मिलकर बातचीत करके बड़ा मज़ा आया। शानदार मुलाक़ात हुई प्रकृति की गोद में। ऐसा लग रहा था कि प्रकृति ने अपनी शोभा, अपना सारा सौंदर्य हमारे को अर्पित किया।

अचानक आयी तेज़ हवा से मैदानी घास लहलहाने लगी। और हमारे पास पड़े काग़ज़ फ़ड़फ़ड़ाकर उड़ गये। आसमान में बादल उमड़ आए। पहले बिजली चमकी और फिर सारा आकाश गरज से गूंज उठा। उसके बाद छींटे पड़े। "बिल्कुल वैसे ही हो रहा है, जैसे बचपन में होता था!" अहमद ने कहा।

"काश, हम फिर किशोर बन जाते!" मैं बोल उठा।

बारिश ज़ोर पकड़ गई। ट्यूलिप बसंत की इस बारिश में मानो नहा रहे थे। लगता था जैसे घास झुक-झुककर जीवन के इस स्रोत का जल पी रही है। मिट्टी की सोंधी गंध आ रही थीं। हरे-भरे टीले सुनसान थे। मैदान में भी कोई नहीं था। कहीं कोई पेड़ भी नहीं जिसके नीचे बैठकर हम बारिश से कुछ बच सकें। हमने सादिक़ के लाए ग़लीचे को ओढ़ लिया। पर बारिश थमने का नाम ही नहीं ले रही थी। उल्टे ही अधिक तेज़ होती जा रही थी। ड्राइवर तो शाम के पांच-छः बजे तक आनेवाला नहीं था...

"बसंत की बारिश है, जल्दी थम जाएगी," प्रोफ़ेसर ने हमें तसल्ली देने की कोशिश की।

"आइये, थोड़ा और पीएं, नहीं तो सर्दी लगेगी," सादिक़ ने कहा।

थोड़ा और पीकर हमने बारिश से भीगा कबाब खाया। कुछ गर्मी तो आयी, पर अधपके कबाब का मज़ा नहीं आया।

आसमान में बादलों के बीच कुछ रोशनी-सी चमकने लगी, पानी धीरे-धीरे बरसने लगा।

"आसमान रोशन हुआ, तो बारिस खत्म होने की आशा छोड़ो," सादिक़ ने कहा।

"हाय-हाय मत कर," अहमद ने कहा।

सादिक़ ने घूरकर उसकी ओर देखा और दस्तरख़ान को ओढ़कर परे हट गया।

"रूठ गया क्या? बचपन की यह आदत अभी तक नहीं छोड़ी," अहमद ने उससे कहा। हंसी-मज़ाक़ होने लगा। इस प्रकार एक और घंटा बीत गया। पानी बराबर बरसता रहा। हम तर-बतर हो गए।

"चलो, किसी ने किसी तरह सड़क तक पहुंचना है," प्रोफ़ेसर ने कहा।

"सामान कौन उठाएगा?" मैंने कहा।

"हर कोई अपना-अपना सामान उठाएगा..."

"पर ग़लीचा कौन उठाएगा? वह तो भीगकर बहुत भारी हो गया," सादिक़ ने पूछा।

"तुम्हारा है, तुम्हीं उठाओ।"

"बैठते वक़्त तो सब बैठे थे और उठाते वक़्त कोई तैयार नहीं," सादिक़ ने नाराज़ होकर कहा।

"छोड़ो इसे यहीं, यह तो पुराना है," मैंने कहा।

"पुराना क्यों? हम इसे अपने घर में बिछाते हैं," कहकर सादिक़ ने ग़लीचे को लपेट लिया।

सामान उठाकर हम चल दिये। फिर एक पगडंडी पकड़कर हम सड़क के किनारे पर पहुंच गए। सामने से दो घुड़सवार आ रहे थे।

सादिक़ चिल्लाया "मदद आ रही है!"

नज़दीक पहुंचे तो स्वस्थ चौड़े कज़ाख़ चेहरेवाला युवक चिल्ला उठा:

"ऐ, आपने तो गेहूं की फ़सल को रौंद डाला। किसने दी आपको यहां आने की इजाज़त?"

"कॉमरेड, ये तो वही लोग हैं, जो सुबहवाली उस मोटर में बैठे थे," दूसरे घुड़सवार ने कहा।

"अच्छा, तो यह बात है?"

"माफ़ कीजिये, हम खेत में नहीं बल्कि एक खुले मैदान में बैठे थे," प्रोफ़ेसर ने कहा।

"आप यह न सोचिये कि हमें कुछ मालूम नहीं। हम सब कुछ देख चुके हैं," मुखिया बोले।

सादिक़ आग-बबूला हो गया:

"मालूम है, आप किससे बात कर रहे हैं?"

"हो गया शुरू," मैंने मन-ही-मन सोचा। "अब चिल्लाने, धमकी देने का वक़्त नहीं," मैंने फुसफुसाकर उसके कान में कहा। पर वह था कि रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था।

"आप कौन हैं? वह हम पता लगाएंगे। मिलिशिया के दफ़्तर में पहुंचने दीजिये," मुखिया ने कहा और घोड़े को हांककर आगे बढ़ गया। दूसरा घुड़सवार हमारे पीछे-पीछे चल रहा था। बड़ा विचित्र दृश्य था; सिर पर दस्तरख़ान ओढ़े, बर्तनों और अन्य सामान से लदे हम जिप्सियों की तरह चल रहे थे। और हमारे आगे-पीछे एक-एक घुड़सवार।

"कैसी मुसीबत में फंस गए हम," उदास होकर प्रोफ़ेसर बोला।

"हमारा कुछ सामान ही अपने घोड़े पर लाद लेते, तो कुछ आसान हो जाता," मैंने कहा।

"तो कह दो उससे," अहमद ने नाके के मुखिया की ओर संकेत करते हुए कहा।

"कैसे कहूं? क़ुसूर तो हमारा है और ऊपर से वे हमारा सामान ढोयें..."

हमने फ़ैसला किया कि अनुरोध नहीं करेंगे और घुड़सवारों का भी हमारे बोझ को हल्का करने का कोई इरादा नहीं था। रास्ता लम्बा था। कार से तो दूरी नहीं महसूस होती। बारिश से सड़क बहुत फिसलनी हो गयी थी। इसलिए बोझ उठाकर चलना मुश्किल लग रहा था। सादिक़ ने भीगकर भारी हो गए ग़लीचे को गुस्से में पटक दिया। "वहीं छोड़ आना चाहिए था," अहमद ने कहा। पर पीछेवाले घुड़सवार को शायद दया आ गयी। उसने झुककर ग़लीचे को उठा लिया।

"तुम्हारा ग़लीचा गया," मैंने सादिक़ से कहा। "वह शायद ही उसे वापिस करें।"

"देखते हैं, कैसे नहीं देगा।"

"तुमने तो ख़ुद उसे फेंक दिया।"

सादिक़ की ज़बान पर जैसे ताले पड़ गये, वह हमसे मुँह फेरे चल रहा था। शायद वह मेरा मज़ाक़ नहीं समझा पर अहमद समझ गया था, उसने

आंख मारकर इशारा किया। कोई एक घंटे में हम थके-हारे मिलिशिया के दफ़्तर में पहुंचे। हमें मिलिशिया की वर्दी पहने अधेड़ उम्र के एक आदमी के सामने पेश किया गया।

"कॉमरेड लेफ़्टिनेंट! ये वही लोग हैं, जो सुबह हमारी मनाही के बावजूद खेतों में घुस गए थे। उन्होंने गेहूं के अंकुर नष्ट कर दिये। मैंने इन्हें हमारे साथ चलने के लिए कहा, तो यह मुझे धमकी देने लगा," सादिक़ की ओर संकेत करते हुए जवान ने कहा।

लेफ़्टिनेंट ने हम पर सिर से पैर तक नज़र डाली, मूंछों में मुस्कराया, फिर भौंहें सिकोड़ीं और औपचारिक लहजे में कहाः

"आपके परिचय-पत्र!"

हमने जेबें टटोलना शुरू कर दिया। पर किसी के पास कोई दस्तावेज नहीं था।

"सच बताएं तो हममें से किसी के पास कोई दस्तावेज़ नहीं है," मैंने कहा।

"आप अपनी ही बात कहिये।"

"मेरे पास भी नहीं है," अहमद बोला।

सादिक़ ने जेब टटोलकर कंधे सिकोड़े।

"तो मुझे क्या मालूम कि आप लोग कौन हैं? हो सकता है कि आप डकैत हों या किसी का ख़ून किया हो..."

"नौकरशाह कहीं का!" मैंने मन-ही-मन सोचा और चिल्ला उठाः

"यह आप क्या कह रहे हैं! यह आदमी उपमंत्री है।"

"बहुत देख चुका हूं मैं आप जैसे लोगों को। मंत्री है तो क्या हुआ? क़ानून की नज़रों में सब बराबर हैं। क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी का तो जवाब देना ही पड़ेगा," लेफ़्टिनेंट ने कहा।

"अजीब आदमी हैं आप। हमारी बातों पर विश्वास नहीं है क्या?" सादिक़ हकलाते हुए बोला।

"आप मुझे चाहे अजीब कहें, चाहे कुछ और, पर मैं क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी करनेवालों से सख़्ती से निबटता हूं।"

अहमद का भी धीरज छूट गयाः

"मैं शल्यचिकित्सक हूं, प्रोफ़ेसर हूं, समझे?"

"आप प्रोफ़ेसर हैं या नहीं मुझे इससे कोई ताल्लुक़ नहीं। ख़ुदा का शुक्र है, मैं सही-सलामत हूं, आप जैसे डाक्टरों से मेरा पाला नहीं पड़ता। पर जब छोटे भाई का अपेंडिसाइटिस का आपरेशन हुआ था, बहुत देखा था आप शल्यचिकित्सकों को..."

अपने दोस्तों का हाल देखकर मैं अपनी हंसी को बड़ी मुश्किल से रोक पाया। सादिक़ का रंग उतर गया था। लगता था कि वह लेफ़्टिनेंट पर टूट पड़ेगा। और अहमद मौन ज़मीन पर नज़र गड़ाए बैठा था। लगता था कि उसने क़ानून की गिरफ़्त में आये अपराधी की तरह अपने क़ुसूर को मान लिया।

"अच्छा, देखो," लेफ़्टिनेंट ने सख़्ती से कहा। अब जानीबेक रिपोर्ट दर्ज करेगा, आपने कहां और कितनी फ़सल नष्ट की, यह सब बातें लिख लेगा। आप इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर करेंगे, फिर हम आपको छोड़ देंगे।"

जानीबेक को रिपोर्ट लिखने का आदेश देकर लेफ़्टिनेंट चला गया।

हम चुप रहे। और कोई चारा था ही नहीं। जल्दी ही जानीबेक भी कहीं बाहर चला गया। कमरे में हम तीनों रह गए। हमने एक दूसरे पर नज़र डाली। पता नहीं अब हम अपनी स्थिति पर रोएं या हँसें।

"क्या हाल-चाल है, कॉमरेड मंत्री जी?" मैंने मज़ाक़ में कहा।

"आप लोगों को ठट्टे-मज़ाक़ के अलावा कुछ नहीं आता। बड़े होकर भी अपनी यह आदत नहीं छोड़ी," सादिक़ बड़बड़ाया और कमरे में चहलक़दमी करने लगा। फिर उसने दरवाज़ा खोलकर जानीबेक को बुलायाः "बिना किसी कारण हमें इस तरह रोकने का कोई अधिकार नहीं है आपको! बुलाओ अपने सबसे बड़े अफ़सर को!"

जवाब मिलाः

"वह खाना खाने गया है।"

"अरे भई, तुम क्यों ऐसा कर रहे हो? यहां तेरी बड़ाई नहीं चलेगी," मैंने सादिक़ से कहा। "आख़िर हम कार से निषिद्ध स्थान पर गए, तो जवाब देना ही होगा। यदि तुम इस लेफ़्टिनेंट के स्थान पर होते, तो तुम भी यही करते।"

"मैं ऐसा नौकरशाह नहीं हूं," सादिक़ भड़क उठा।

"और शोर मचाओगे तो ये लोग ख़त लिखकर उचित स्थान पर भेज सकते हैं। यहां शोर मचाने से काम नहीं चलेगा," अहमद ने मेरा समर्थन किया।

सादिक़ ग़ुस्से में आ गया और सिगरेट जलाकर लम्बे-लम्बे कश लेने लगा।

इस बीच मिलीशिया के एक मेजर ने कमरे में प्रवेश किया। हमें देखकर वे कह उठे:

"अहमद अका! अस्सलाम अलैकुम! कैसे आना हुआ?"

"वालैकुम सलाम। पिकनिक पर आए थे," अहमद सकुचाते हुए बोला।

"और मूसलाधार बारिश में फंस गए, शायद इसीलिए यहीं हैं न? आपसे कहा था कि हमारे यहां आइए, आपके सम्मान में भेड़ हलाल करूंगा पर आप आये ही नहीं..."

"हां, अब आ गये हैं," प्रोफ़ेसर शर्म के मारे ज़मीन में गड़ा जा रहा था। मालूम हो रहा था कि उसने मेजर को नहीं पहचाना है। सादिक़ तो इस बात से बेचैन था कि उसका भुलक्कड़ दोस्त मौक़े का लाभ नहीं उठाएगा। मेजर ने ख़ुद याद दिलाई:

"आपने शायद मुझे नहीं पहचाना? आपने मेरा गुर्दे की पथरी का आपरेशन किया था। ऐसा अच्छा आपरेशन किया था।"

"हां, शायद ..."

सादिक़ मानो अंगारों पर बैठा था। "कितना भोला है यह प्रोफ़ेसर, पगला है क्या?! क्या यह नहीं कह सकता कि हां याद है, किया था

आपरेशन। उसने आंख भी मारी। पर अहमद ऐनक के बिना था। इसलिए उसकी कोशिशें बेकार रहीं।

"चलिये हमारे घर," मेजर ने कहा।

"नहीं, हम तो ..."

"अरे, छोड़ो अपना हम ... हम," सादिक़ ने प्रोफ़ेसर से कहा। "क्या ज़रूरत है इतनी विनम्रता की!"

"आख़िर बात क्या है?' मेजर ने हैरान होकर पूछा।

इतने में ड्यूटीवाला आ गया और मेजर को सब कुछ सुना दिया।

मेजर ज़मीन पर नज़र गड़ाए कुछ देर तक चुप रहा और फिर गंभीर स्वर में बोलाः

"क़ानून की नज़रों में हम सब बराबर हैं। क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी के लिए जो जुर्माना देना है, वह दे दीजिये और दोबारा ऐसा न करने का वायदा कीजिये। ठीक है न?",

"बिलकुल ठीक है," प्रोफ़ेसर ने कहा।

"अच्छा, तो सब कुछ ठीक है। अब आइए, कार में बैठिए। मेरे घर चलेंगे। हमें आपकी मेहमाननवाज़ी करने का भी तो मौक़ा दीजिये," मेजर ने मुस्कराते हुए कहा।

सईदा ज़ुन्नुनोवा

(1926–1978)

सईदा ज़ुन्नुनोवा कवियत्री, गद्य-लेखिका और नाटककार थीं। अंदीजान अध्यापक संस्थान में शिक्षा पाने के बाद वह स्कूल में अध्यापिका रहीं। सन् 1941 में अंदीजान बाल-थियेटर में उनके नाटक "महान् आकांक्षाओं के पथ पर" का सफल मंचन किया गया। उसके सात वर्ष बाद उनका प्रथम कविता-संग्रह "आपकी बेटी ने लिखा है ..." प्रकाशित हुआ। सईदा ज़ुन्नुनोवा ने काव्य व गद्य की विधाओं में अत्यंत फलप्रद कार्य किया है। उनके "लड़कियाँ," "एक वर्ष का चिंतन", "मेरे पड़ोसी", "जगमगाती सड़कें", "आग" तथा अन्य संग्रह इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। सईदा ज़ुन्नुनोवा की अनेक कृतियों का अनुवाद सोवियत संघ की दूसरी भाषाओं में हो चुका है।

बड़ा भाई

फ़तहिद्दीन अका ने जल्दी से फाटक खोला और अहाते में घुसे। रिख़सीख़ोन प्याज़ की क्यारी में निराई कर रही थी। पति को देखकर वह उठ खड़ी हुई और मुसा दामन ठीक करके उनके पास गयीं।

"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं, सब ठीक है," फ़तहिद्दीन ने जवाब दिया। उनकी बांछें खिल रही थीं।

फ़तहिद्दीन ने तख़्त पर थैला रख दिया, जिसमें से गाजर की गड्डी झांक रही थी, अंगूर के हल्के गुलाबी गुच्छे झिलमिला रहे थे और उनके नीचे छोटा-सा पीला, सारा खुरदरी जाली से ढका-सा ख़रबूज़ा दुबका हुआ था। पत्नी ने हाथ पोंछे।

"वाह, ख़रबूज़े भी आ गये हैं?"

"इसका स्वाद चखने के लिए ख़रीदा है। आज तुम्हारे भतीजे आ रहे हैं।"

"आज?"

"हां। अभी यंगीबाय से मिला था। वह अपनी कार में दफ़्तर जा रहा था। उसने शाम को सिराजिद्दीन को साथ लेकर हमारे यहां आने का वादा किया है।"

"उनकी बीवियां भी आयेंगी?"

"यह मैंने नहीं पूछा।"

"घर में गोश्त कम है..."

"मैंने भी इस बारे में सोचा था, मगर मेरे पास पैसे कम पड़ गये। तुमने किसी चीज़ के लिए कुछ बचाकर रखे हैं?"

"मेरे पास कहां से आये पैसे?" रिख़सीख़ोन गुस्सा हो उठीं। लेकिन उसका गुस्सा फ़ौरन ग़ायब हो गया, पति की आंखों में याचना झलक रही थी। "थोड़े-से पैसे मेरे पास हैं, जूते ख़रीदने के लिए रखे थे।"

"एक दस का नोट दे दो, तनख़्वाह मिलते ही वापस रख देंगे।"

रिख़सीख़ोन कमरे में से पैसे ले आयीं।

"गर्म-गर्म नान भी लेते आइये।"

"अच्छा। इधर तुम बरामदे में दस्तरख़ान लगा देना। वहां ठंडक रहती है।"

"आपने अभी कुछ नहीं खाया है।"

"कोई बात नहीं, लौटकर खा लूंगा।" फ़तहिद्दीन थैला उठाकर फाटक की तरफ़ बढ़े। वह धीरे-धीरे, थके-हारे-से चल रहे थे, उनके कंधे झुके हुए थे।

"बेचारे बुढ़ा गये हैं," उन्हें जाते हुए देख रही रिख़सीख़ोन को दया आयी। उनका पति रेलवे स्टेशन पर काम करता था, वह रात की पाली से लौटा था और निस्संदेह उसे अभी झपकी लेने का भी मौक़ा नहीं मिला था।

हालांकि फ़तहिद्दीन ने "तुम्हारे भतीजे" कहा था, पर वास्तव में वे उनके छोटे भाई थे। लेकिन उन्हें पाल-पोसकर रिख़सीख़ोन ने बड़ा किया था, इसीलिए वह मज़ाक़ में हमेशा उससे उनका ज़िक्र "तुम्हारे भतीजे" कहकर किया करते थे।

फ़तहिद्दीन के पिता अपने बेटों को उच्च शिक्षा दिलाने के सपने देखा करते थे। मगर उनका देहांत कम उम्र में ही हो गया और परिवार की सारी ज़िम्मेदारियां उनके बड़े बेटे फ़तहिद्दीन पर आ पड़ी। बालक बचपन से भूगर्भशास्त्री बनने के सपने देखा करता था, मगर इसके बजाय उसे नौकरी करनी पड़ गयी। फ़तहिद्दीन रेलवे में सहायक स्टेशन मास्टर के पद पर काम करने लगे। उनकी शिक्षा युवा मज़दूरों का स्कूल पास करने तक

ही सीमित रह गयी। इस तरह वह जीवन भर के लिए स्टेशन में "फंस गये"। लेकिन उन्होंने भाईयों को उच्च शिक्षा दिलाने की क़सम खायी थी।

पति की मृत्यु से मां को गहरा धक्का लगा वह दिन-प्रतिदिन कमज़ोर होती जा रही थीं और जानती थीं कि उनके जीवन के इने-गिने दिन ही बचे हैं। उनकी बड़े बेटे की शादी कर देने की बहुत इच्छा थी।

फ़तहिद्दीन की सगाई रिख़सीख़ोन से हुई, जो मुहल्ले की सबसे मेहनती लड़की थी। मां ने अपनी ज़िंदगी में बड़ी मुश्किल से की हुई सारी बचत ख़र्च करके बेटे की सीदी-सादी शादी कर दी।

जब रिख़सीख़ोन घर की बहू बनकर आयीं, यंगीबाय दसवीं कक्षा में पढ़ता था, सिराजिद्दीन आठवीं में और सबसे छोटी बहन गुलचेहरा छठी में।

कुछ ही दिनों बाद सास का देहांत हो गया और बच्चों की पूरी ज़िम्मेदारी रिख़सीख़ोन पर आ पड़ी। फ़तहिद्दीन और रिख़सीख़ोन विवाहित जीवन का पूरा आनंद नहीं ले पाये। वे शादी होते ही एक बड़े परिवार के मां-बाप बन गये और अरसे से साथ रह रहे, पारिवारिक चिंताओं के बोझ से दबे पति-पत्नी जैसे लगने लगे।

फ़तहिद्दीन अपने भाइयों को किसी चीज़ की कमी नहीं महसूस होने देना चाहते थे और इसके लिए हर संभव प्रयत्न करते थे। उस ज़माने में फ़तहिद्दीन एक सुंदर और ताक़तवर नौजवान थे, वह पहाड़ भी उठा सकते थे। वह जी-जान से मेहनत करते थे ... उन्होंने कभी छुट्टी नहीं ली। एक भी बच्चे को जन्म दिये बिना रिख़सीख़ोन कई बच्चों की मां बन गयीं। वह कपड़े धोतीं, खाना पकातीं, सीतीं और टोपियों पर कढ़ाई करतीं। यह हुनर उन्होंने गुलचेहरा को भी सिखा दिया। जैसे ही लड़की स्कूल से आती, रिख़सीख़ोन उसे कशीदाकारी करने बिठा देतीं और बिक्री से मिले पैसों से उसके लिए दहेज़ तैयार करतीं।

फ़तहिद्दीन की बहुत इच्छा थी कि उनका कम-से-कम एक भाई भूगर्भशास्त्री बने। और उनकी इच्छा पूरी हुई। यंगीबाय उच्च कोटि का भूगर्भशास्त्री बन गया। उसको शहर के केंद्र में चार कमरों का फ़्लेट मिल

गया, अपनी कार भी हो गयी। सिराजिद्दीन इतिहासकार बन गया, संस्थान में पढ़ाने लगा। गुलचेहरा भी अध्यापिका हो गयी। उसकी शादी उसके विश्वविद्यालय में पढ़ाई करते समय कर दी गयी थी। उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी – बच्चे जो पैदा हो गये। इसके बावजूद बाद में उसने पत्राचार पाठ्यक्रम से संस्थान की शिक्षा पूरी कर ली ...

रिख़सीख़ोन अतीत की स्मृतियों में खो गयीं। वह बीती बातों को याद करती अहाते में छिपटियां इकट्ठी कर रही थीं और चूल्हे के पास उनका ढेर लगा रही थीं। चारों ओर ढेरों छिपटियां थीं। फ़तहिद्दीन ने हाल ही में पेटियों के तख़्तों को जोड़-जोड़कर नया ऊंचा और चौड़ा फाटक बनाया था और वे कचरा अभी हटा नहीं पाये थे। कीलोंवाली पुरानी बाल्टी भी फाटक के पास पड़ी थी। रिख़सीख़ोन ने फाटक पर नज़र डाली। पिछले साल यंगीबाय को अपनी कार बाहर सड़क पर खड़ी करनी पड़ी थी – वह अहाते में घुस न सकी। तब वे थोड़ी देर भी आराम से नहीं बैठ पाये थे, तभी फ़तहिद्दीन ने पहले से चौड़ा फाटक बनाने की ठान ली थी। वह उतना सुंदर तो नहीं बन पाया था, पर कार उसमें से आसानी से गुज़र सकती थी।

रिख़सीख़ोन ने बढ़ईगीरी के औज़ार समेटकर ओसारे में रख दिये थे और उसके बाद अहाते को झाड़-बुहार दिया था। वह अभी गाजर काटने बैठी ही थीं कि फ़तहिद्दीन आ पहुंचे। वह गोश्त, नान और वोद्का ले आये थे। रिख़सीख़ोन ने मुँह बनाया, पर पति से बोतल ले ली।

फ़तहिद्दीन नल से पाइप लगाकर अहाते में पानी छिड़कने लगे।

"आप यह क्यों कर रहे हैं? वैसे ही तप रहा है। अब भाप उठेगी, तो सांस लेना दूभर हो जायेगा," रिख़सीख़ोन बड़बड़ायी।

"कोई बात नहीं, मिट्टी सारा पानी सोख लेगी।"

फ़तहिद्दीन ने ख़रबूजा और वोद्का की बोतल ठंडे पानी की धार के नीचे रख दिये और नाली का मुँह खोल दिया। पानी आह्लादक कलकल करता फुलवारी की तरफ़ बहने लगा। फ़तहिद्दीन को नींद का ज़रा भी ख़याल नहीं आया। वह चारों तरफ़ नज़र डाल-डालकर सोच रहे थे कि अब और क्या करना चाहिए। उन्होंने तरह-तरह के फूल तोड़कर गुलदस्ता

बनाया, उसमें ऊदी तुलसी के कुछ डंठल खोंस दिये और शीशे के मर्तबान में पानी भरकर उन्हें उसमें रख दिया। फिर फाटक से बाहर जाकर बड़ी लगन से सड़क पर छिड़काव करने लगे।

आख़िर अतिथियों के स्वागत की पूरी तैयारी हो गयी।

सूरज डूब रहा था। बयार का एक झोंका आया। तपिश धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। फ़तहिद्दीन चेहरे पर क्लांत मुस्कान लिये ध्यान से सुनने लगे – कहीं कार तो नहीं आ गयी। उन्होंने फाटक भी पहले से खोलकर छोड़ दिया, ताकि मेहमानों के रास्ते में कोई बाधा न पड़े।

बूढ़े-बूढ़िया बरामदे के बाहर मौन बैठे थे। उनके ऊपर धागे में पिरोया ख़ुशबूदार थाइम हिल रहा था। रिख़सीख़ोन ने उसे जाड़े के लिए सुखाया था।

"देवरानियों के लिए भी सुखाना चाहिए," फ़तहिद्दीन ने थाइम की माला पर नज़र डालकर कहा।

कार की आवाज़ सुनाई दी और फ़तहिद्दीन जल्दी से फाटक की तरफ़ लपके। कार धीरे से अहाते में आकर रुक गयी। उसके दोनों तरफ़ के दरवाज़े फ़ौरन खुल गये और यंगीबाय व सिराजिद्दीन फुर्ती से बाहर निकले, उनके पीछे-पीछे दो जवान औरतें भी। देवरानियों ने कार में से कुछ बंडल निकालकर रिख़सीख़ोन को थमा दिये।

"आइये, आइये," फ़तहिद्दीन कभी बहुओं के पास जाकर कह रहे थे, तो कभी भाइयों को गले लगा रहे थे। गोरी, फ़ैशनेबल ढंग से बाल बनाये, हल्के रेशमी वस्त्र पहने युवा स्त्रियों के सामने रिख़सीख़ोन बिलकुल बुढ़िया लग रही थीं।

हाल-चाल के बारे में सवालों की झड़ी लग गयी। देवरानियां फूलों को देखने लगीं, अहाते में टहलने लगीं। रिख़सीख़ोन ने चाय तैयार की और दस्तरख़ान लगा दिया।

चौड़े कंधोंवाला, गठीले बदन का यंगीबाय बिलकुल वैसा लग रहा था, जैसे फ़तहिद्दीन जवानी में थे। सिराजिद्दीन हालांकि भाइयों में सबसे छोटा था, लेकिन अपने बालों में सफ़ेदी के कारण यंगीबाय से बड़ा लग रहा था। फ़तहिद्दीन बड़े गर्व से अपने भाइयों को निहार रहे थे और उनका

किसी तरह जी ही नहीं भर रहा था।

चाय की चुस्कियां लेते हुए सिराजिद्दीन बड़े उत्साह से हाल ही में की गयी एक प्राचीन नगर की ख़ुदाई के बारे में बता रहा था, यंगीबाय चांद की मिट्टी के नमूनों और किन्हीं ऐसी चीज़ों के बारे में बता रहा था, जो फ़तहिद्दीन की समझ से बाहर थीं। वह कभी अपने एक भाई पर नज़र डालते, कभी दूसरे पर, फिर उचककर उठते और कहीं चले जाते। एक बार वह उठकर कार के पास गये और उसे पाइप से धोने लगे।

रिख़सीख़ोन देग के नीचे से अंगारे लेकर समोवार सुलगाने लगीं। तपिश के कारण उनका चेहरा लाल हो रहा था। उन्होंने शहर से लाये हुए बंडल खोले और मेज़ पर चाकलेट की मिठाइयां और केक काटकर सजा दिये।

"आप क्यों इतनी परेशान हो रही हैं, आइये, हमारे पास बैठिये," एक देवरानी बोली।

"खाइये, खाइये," रिख़सीख़ोन सबको चाय डालती हुई कहे जा रही थीं। युवा स्त्रियां सागर तट पर स्थित किसी बड़े शहर के बारे में बातें कर रही थीं। रिख़सीख़ोन थोड़ी देर उनके साथ बैठकर उनकी बातें सुनती रहीं, पर शहर का नाम उन्हें याद नहीं रहा।

फ़तहिद्दीन ने सागबाड़ी से टमाटर तोड़कर सलाद बनाया और मेज़ पर ठंडी बोतल के साथ रख दिया। जब रिख़सीख़ोन ने सुनहरा, ख़ुशबूदार पुलाव परोसा, सिराजिद्दीन पर थोड़ा सुरूर चढ़ चुका था, यंगीबाय ने केवल मुँह जुठारा, क्योंकि उसे कार जो चलानी थी।

"आपका पुलाव बहुत बढ़िया बना है, सब मिक़दार में है। कब से तरस रहा था ऐसा पुलाव खाने को!" सिराजिद्दीन ने भाभी की प्रशंसा की।

"बात तो ऐसे कर रहे हैं, जैसे आप ऐसा पुलाव ज़िंदगी में पहली बार खा रहे हैं," उसकी जवान पत्नी ने तुनककर कहा। रिख़सीख़ोन ने बात अनसुनी कर दी और मेहमानों की ख़ातिरदारी में लगी रहीं।

सिराजिद्दीन, जो अकेला तीन के बराबर पी चुका था, शीघ्र ही ऊंघने लगा। उन्होंने उसकी नींद में ख़लल न डालने का फ़ैसला किया – अच्छा

है, थोड़ी देर खुली हवा में सो ले। अहाते में ठंडक और शांति थी। इसलिए मेहमान काफ़ी देर तक वहां बैठे रहे। अंत में सिराजिद्दीन को जगाकर उसे तेज़, ख़ुशबूदार चाय पिलायी गयी।

"आइय, मैं इस तख़्त पर आपके लिए बिस्तर लगा देती हूँ, खुले में बहुत अच्छी नींद आयेगी। मेरे पास नये कंबल भी है," रिख़सीख़ोन मेहमानों को मनाने लगीं।

"कुछ दिनों बाद हम फिर आयेंगे," यंगीबाय ने वादा किया। "मैं देख रहा हूं, आपने नया फाटक भी लगा लिया है," केवल अब उसकी ओर उसका ध्यान गया।

फ़तहिद्दीन ने गर्वपूर्वक अपनी कारीगरी पर नज़र डाली।

"इसे आपके भाई ने ख़ुद बनाया है," रिख़सीख़ोन ने तारीफ़ की।

"यह तो मुझे भी नज़र आ रहा है। मेरे भाई के हाथों में जादू है। अगर मुझे बंगले के लिए ज़मीन मिली, तो आप हमारे लिए भी फाटक बना दीजियेगा," यंगीबाय ने मज़ाक़ किया।

मेहमानों के जाने के बाद बर्तन उठाते समय रिख़सीख़ोन ने देखा कि फ़तहिद्दीन उसी जगह सो गये हैं, जहां थोड़ी देर पहले सिराजिद्दीन को नींद आ गयी थी। वह चुपचाप बर्तन हटाकर कंबल ले आयीं और उसे पति को ओढ़ा दिया। "कभी चैन से नहीं बैठते। कम-से-कम अपना ही ख़याल रखा करें।"

उनके गहरी झुर्रियों से भरे चेहरे और सफ़ेद मूंछों को देखते हुए वह सोचने लगीं: क्या पता शायद वह उन्हें इसीलिए प्यार करती हैं, क्योंकि वह सारी ज़िंदगी लोगों का भला ही करते रहे हैं और बदले में शुक्रिया सुनने की भी उम्मीद नहीं रखते।

निर्मल, शांत संध्या थी। आकाश में प्रखर तारे जगमगा रहे थे। मंद पवन चल रहा था। रिख़सीख़ोन मेज़ पर बैठी पति, उनके भाइयों – अपने बच्चों के बारे में सोच रही थीं और उनके सुखी जीवन की कामना कर रही थीं।

आदिल याक़ूबोव

(जन्म–1926-2009)

आदिल याक़ूबोव गद्य-लेखक तथा नाटककार हैं। वह सन् 1956 में ताशक़न्द राजकीय विश्वविद्यालय के भाषाशास्त्र संकाय के स्नातक हुए। वह मास्को के "लितेरातूरनया गज़ेता" पत्र ("साहित्यक समाचारपत्र") के उज़्बेक जनतंत्र स्थित संवाददाता और "उज़्बेक फ़िल्म" स्टूडिओ के मुख्य सम्पादक रह चुके हैं।

आदिल याकुबोव की प्रथम कृति लघु-उपन्यास "हमउम्र" सन् 1951 में प्रकाशित हुई थी। उनके समकालीनों के बारे में लिखे लघु-उपन्यासों "क़िस्सा एक व्यंग्यलेख का", "मुक़द्दस", "पंछी की जान पंखों में", "गारद का जवान दवरान ग़ाज़ियेव", "बिल्लौरी झाड़फ़ानूस" तथा उपन्यासों – "मर्द बनना आसान नहीं" और "उलूग़ बेग की धरोहर" का अनुवाद रूसी व अन्य सोवियत बंधु जनतंत्रों की भाषाओं में हो चुका है। आदिल याक़ूबोव का ताज़ा उपन्यास "ज़मीर", जिसमें आज के ज़माने की महत्त्वपूर्ण समस्याएँ सामने रखी गयी हैं, पाठकों के मध्य बहुत लोकप्रिय हुआ है। वह "चुनने में मुश्किल", "दिल धधकना चाहिए", "जब सेब के फूल खिलते हैं" आदि नाटकों की रचना कर चुके हैं।

सुख का पंछी

आख़िरकार जमशेद एक बार फिर कोकसाय जा रहा था। वह ठसाठस भरे जनरल कंपार्टमेंट में एक शोर मचाती मण्डली के कारण दीवार से सटा लगातार खिड़की में देखे जा रहा था। तेज़ी से पीछे छूटते, ज़ेबरों जैसे धारीदार मील-पत्थरों की झलक दिखाई दे रही थी, रेल घड़घड़ाती हुई नहर पर बने लोहे के पुल पर से गुज़री। हल्की नीलिमा से ढके कपास के खेत, बाग़ और सागबाड़ियां धीरे-धीरे घूमते हुए तैरते-से पीछे चलते जा रहे थे।

जमशेद अकसर पिछली गर्मियों को याद किया करता था, जब उसने कोकसाय में छुट्टियां बिताई थीं। वह चौड़ा तालाब, जिसमें वह बंसी से गजन मछलियां पकड़ता था, और उसके किनारे मख़मली घास का मैदान, जिसकी घास की जैसे बारीकी से कटाई की गयी थी, उसकी आंखों के आगे घूमने लगे। उस घास के मैदान पर वहां के लड़के कुश्ती लड़ते थे, दौड़कर एक दूसरे को पकड़ते थे, गोलियां खेलते थे। दोपहर तक सूरज आग उगलने लगता था और लड़के बार-बार भागकर तालाब से थोड़ी दूरी पर फूटनेवाले चश्मे पर पानी पीने जाते थे। लड़के दोपहर का खाना खाने घर नहीं जाते थे, वे नान के टुकड़े कर-करके चश्मे में डाल देते थे और फिर शांति से बैठकर बड़े ध्यान से शीशे-सी सतह पर धीरे-धीरे चक्कर खाते रोटी के फूले हुए टुकड़ों को देखते रहते थे। पर जैसे ही टुकड़े धार के साथ बहने के लिए आगे बढ़ते, लड़के फुर्ती से उन्हें पकड़ लेते और फिर बंटवारा शुरू हो जाता।

कभी-कभी कोई ताज़ा, दूधिया भुट्टे लाता। तब वहीं चश्में के किनारे अलाव सुलगाये जाते और भुट्टों को गरम राख में दबा दिया जाता। सिके हुए भुट्टों की सौंधी ख़ुशबू को याद करके जमशेद ने लार सटकी।

जमशेद को उस लड़की सनोबर की ख़ासतौर से अकसर याद आती थी, जो उसके भाई के पड़ोस में रहती थीं, जिसके यहां वह रहा था। वह इतना तेज़ दौड़ती थी कि एक भी लड़का उसे नहीं पकड़ सकता था और इतनी लड़ाका कि उसकी जैसी ढूंढ़े न मिले। जमशेद ने उसका नाम चुलबुली रख दिया था। वह पहले तो ग़ुस्सा हुई फिर इसकी आदी हो गयी। उसके पीछे-पीछे उसका प्यारा बड़ा-सा बिल्ला भागता रहता था। वह काला था, इसीलिए उसके रंग के अनुरूप उसका नाम क़ाराबाय रख दिया गया था।

इस बार भी जमशेद गर्मियों की छुट्टियां अपने भाई के यहां कोकसाय में बिताने जा रहा था। सूरतजान ने चार साल हुए डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करने के बाद अपनी सहपाठिनी से शादी कर ली और वे दोनों काम करने कोकसाय चले गये थे।

उसे याद आता था कि जब कभी सूरतजान काम से थोड़ा जल्दी लौट आता था, तो वह जमशेद को अलमारी से छोटे बोर की रायफ़ल निकालने की इजाज़त देता था और वे दोनों उसे लेकर बाग़ों में घूमा करते थे, काल्हक फ़ाख़ता का शिकार करते थे। तालाब के पास तो चाहा भी मार लेते थे।

कभी-कभी जमशेद की भाभी तामीला भी उसके साथ हो लेती थी। वे रोयेंदार तौलिये लेकर तालाब में बहाने चले जाते थे। लड़के-लड़कियां ख़ुशी से चिल्लाते हुए उनका स्वागत करते थे। तब तामीला कुछ शरारत के मूड में आ जाती थी। जल्दी से नहाकर वह रेशमी गाउन पहन लेती थी और पति के साथ मिलकर आंख-मिचौनी खेला करती थी। जब बच्चों की हंसी और उल्लसित चीख़ों के बीच भाई और तामीला घास के मैदान पर हवा की रफ़्तार से इधर-उधर भागते थे, जमशेद को उन दोनों पर बहुत गर्व होता था। तामीला हंसती हुई सूरतजान से दूर भागती, उसकी

दो काली-काली चोटियां पीठ पर हिलती-डुलती रहतीं, आंखें ख़ुशी के मारे खिल उठती और गाल तेज़ दौड़ के कारण लाल हो उठते।

पतझड़ के शुरू में जमशेद की रवानगी से कुछ दिन पहले सूरतजान कहीं से चार ख़रगोश ले आया था। उसने कहा था कि उसे अपने डाक्टरी प्रयोगों के लिए उनकी ज़रूरत है। जमशेद को ख़रगोशों को ताज़ा तिपतिया घास खिलाना, उनकी झबरी पीठों पर हाथ फेरना और गोद में उठाना बहुत अच्छा लगता था। उस जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं होती थी। तिस पर बिलकुल आख़िरी दिन, जब जमशेद का सामान छोटे-से सूटकेस में जमाया जा चुका था, उनमें से एक मादा ख़रगोश ने बड़े प्यारे-से बच्चे दिये थे, जो चिड़िया के पंखहीन बच्चों जैसे लगते थे ...

अपने पिछले पत्र में भाई ने जमशेद को लिखा था: "तुम्हारे ख़रगोश के बच्चे तुम्हें नहीं भूले हैं। अब वे सिर्फ़ सब्ज़ियों ही नहीं खाते हैं, बल्कि, शैतान, पेड़ों की छाल भी कुतर डालते हैं।"

... मां ने बहू के लिए ख़ान-अतलस का कुरते का एक टुकड़ा और सिर पर बांधने का बेलबूटेदार झब्बोंवाला गरम रूमाल ख़रीदे। और जमशेद ने शहर की सारी दुकानें छान मारीं, जब तक कि उसे सनोबर के लिए बड़ा लाल गेंद न मिल गया। मां और अब्बा उसे स्टेशन छोड़ने आये। उन्होंने उसे गाड़ी में बिठाते समय इतनी हिदायतें दीं कि उनमें से आधी तो जमशेद भूल ही गया।

... गाड़ी रात का पहुंची। नीचे प्लेटफ़ार्म पर कुदकर जमशेद ने चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी। डिब्बों की खिड़कियों से पीला-सा प्रकाश छनकर आ रहा था। बालक अपनी ओर आ रहे सनोबर के पिता को तुरंत न पहचान सका। शामुराद चाचा ने जमशेद को गले लगा लिया और उसकी पोटली उठाकर दोपहिया गधागाड़ी की तरफ़ चल दिये, जो स्टेशन की जगमगाती ख़िड़कियों के सामने खड़ी थी।

जमशेद सीढ़ियों की तरह पहिये के सहारे गाड़ी पर चढ़ गया और बड़े आनंद से सूखी अनाजबूटी के फूलों की, पुदीने और कई तरह के जंगली

फूलों की कसैली-सी ख़ुशबू में सांस लेता सूखी घास पर पसरकर लेट गया। शीघ्र ही जानी-पहचानी जगहों को देखने के विचार से उसका दिल ख़ुशी से खिल उठा।

शामुराद चाचा भी गाड़ी पर सवार हो गये और उन्होंने जमशेद के पास बैठकर कोई चीज़ उसकी ओर बढ़ायी।

"लो, बेटा, सनोबर ने तुम्हें देने के लिए कहा था," उन्होंने कहा।

जमशेद कोहनी के बल थोड़ा उठा, अपनी हथेली पर उसे ऊपर तक ख़ूबानियों से भरी मख़मली उज़्बेक टोपी नज़र आयी। टोपी पर की हुई कशीदाकारी वह नहीं पहचान पाया, पर वह वैसे ही समझ गयाः "यह उसी की टोपी है! वही टोपी है!"

गाड़ी ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चरमराती, हिचकोले खाती जा रही थी। जमशेद ने सिर के नीचे हाथ रख लिये। झींगुर तेज़ आवाज़ में झिंगार रहे थे। कहीं से उपले जलने की बू आयी। बालक गहरे नीले और रेशम-से कोमल आकाश को ताकता कल के दिन के बारे में सोच रहा था। नीचे लटके हुए-से तारे लुप्त होने लगे, धीरे-धीरे तैरते-से दूर जाने लगे मानो नदी के प्रवाह में बहे जा रहे हों ...

जमशेद को लगा जैसे कोई हौले से उसकी अलक को पकड़कर खींच रहा है। उसके ऐन कान के पास बालिका का स्वर गूंजाः

"उठो, जमशेद। अरे, उठो भी, आलसी ..."

जमशेद आंखें खोलना चाहता था, पर खोल नहीं पा रहा थाः उसकी पलकें जैसे चिपक गयी थीं। उसने उनींदी हालत में ही मुस्कराकर पूछाः

"सनोबर ... तुम हो, सनोबर?"

"अरे, उठो भी," सनोबर ने अनुनय की। मैं तुम्हें लक़लक़ चिड़ियां दिखाऊंगी। उन्होंने बूढ़े पोपलार पर घोंसला बना लिया है।"

सनोबर की मां की आवाज़ आयीः

"मेहमान को चैन से सोने दे, हुड़दंगी! सफ़र की थकान है, सोने दे। बेहतर होगा पेड़ से ख़ूबानी झाड़ ले। उठे तब खिला देना ..."

जमशेद को फिर नींद आने लगी, लेकिन उसके बिलकुल पास ही पकी ख़ूबानियां पटापट ज़मीन पर गिरने लगी। और उसकी नींद पूरी तरह खुल गयी।

जमशेद को आश्चर्य हुआ और अटपटा भी लगा, जब उसने अपने को गाड़ी पर नहीं बल्कि तख़्त पर बिछे गुदगुदे बिस्तर पर लेटा पाया।

माहिरा ख़ाला सिर्फ़ गुस्सा आने पर ही अपनी बेटी को हुड़दंगी नहीं कहती थीं। पिछले साल सनोबर की शरारतों की लड़के भी तारीफ़ के पुल बांधते रहे थे। इस समय भी वह ख़ूबानी के पेड़ की ऐन चोटी तक चढ़ गयी थीं। अपने एक हाथ से पेड़ के तने को पकड़कर वह पंजों के बल उचककर अंडों की ज़र्दी-से गहरे पीले फलोंवाली डाल को अपनी तरफ़ झुकाने की कोशिश कर रही थी। उदय होते सूरज का सुनहरा प्रकाश पेड़ की चोटी पर पड़ रहा था और असंख्य पतली किरणों से उसे बेध रहा था। सनोबर का लाल कुर्ता रक्तिम ज्वाला जैसे दमक उठा। जमशेद को पल भर के लिए उस लड़की की याद आ गयी, जिसे उसने सर्कस में गुम्बज़ तले कलाबाज़ियां दिखाते देखा था और उसने सोचाः "सनोबर भी कलाबाज़ियां दिखा सकती है ..."

वह रज़ाई हटाकर लपककर उठ गया। यह देखते ही कि जिस डाल पर सनोबर ने पैर रखा है, वह धनुष की तरह झुक गयी है और उसके टूटने का डर है, वह पूरे ज़ोर से चिल्लायाः

"संभल कर, सनोबर!"

बालिका ने झुककर नीचे की तरफ़ देखा।

"अच्छा तो जाग गया, आलसी!..." उसने शरारती स्वर में कहा और खिलखिलाकर हंस पड़ी। फिर वह बड़ी आसानी से, बंदर की तरह एक डाल से दूसरी पर कुदी, दोनों हाथों से तने को पकड़कर पेट के बल खिसककर निचली शाखा तक उतर आयी और ऊँचाई का अंदाज़ लगाकर धप्प से पैरों के बल ज़मीन पर कूद गयी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें ओस से भीगे काले अंगूरों की तरह चमक रही थीं। कई पतली-पतली कसकर गूंथी हुई चोटियां कंधों पर बिखरी हुई थीं। नथुने रोकी हुई हंसी के कारण

फूले हुए थे। वह जमशेद को अपलक देखती कुछ क्षण खड़ी रही। फिर उसका हाथ पकड़कर खींच ले जाती हुई ख़ुशी से बोली:

"चलो! मैं तुम्हें लक़लक़ दिखाती हूं!"

वे कच्ची दीवार फांदकर छायादार, प्रातःकालीन ताज़गी से परिपूर्ण बाग़ में पहुंच गये। सनोबर आलूचे के घने झुरमुट में घुस गयी। जमशेद उसके पीछे-पीछे चल रहा था। उन पर जैसे ओस की वर्षा होने लगी। जमशेद अपने आगे हटायी जा रही टहनियों की सरसराहट सुन रहा था और सनोबर के लाल कुर्ते को आंखों से ओझल न होने देने की कोशिश कर रहा था। वह पूरी तरह तर हो चुका था और ठण्ड के मारे सिकुड़ रहा था। इसके अलावा वह अभी नंगे पैर चलने का आदी भी नहीं हुआ था: उसके अत्यधिक कोमल तलवों में बार-बार कांटे चुभ रहे थे।

अचानक वे जमशेद के जाने-पहचाने घास के मैदान में पहुंच गये। बायीं तरफ़ घने कोहरे से आच्छादित तालाब जैसे ऊंघ रहा था। तिरछे रास्ते से मैदान से निकलकर दोनों ओर घने शहतूत के पेड़ोंवाले नहर से आते नाले पर बने लकड़ी के तंग पुल को पार करके कच्चे रास्ते पर पहुंचा जा सकता था, जो नाले के सहारे-सहारे गांव को जाता था।

जमशेद को मैदान पार करती एक युवा स्त्री नज़र आयी। वह तेज़ी से पुल की तरफ़ बढ़ रही थी और चलते-चलते कुर्ते के ऊपर सफ़ेद चोग़ा पहन रही थी। जमशेद ने आवाज़ दी:

"तामीला भाभी!" और उसकी तरफ़ लपका।

स्त्री झटके से रुक गयी। वह जमशेद को देखकर उसकी तरफ़ आयी और उसे गले लगाकर उसके माथे व दोनों गालों पर प्यार किया। तामीला ने कहा कि कल शाम सूरतजान की ड्यूटी बहिरंग रोगी विभाग में थी और उन्होंने अपने पड़ोसी शामुराद चाचा से छोटे भाई को लेने जाने को कह दिया था। फिर वह एक क़दम पीछे हटकर उसके दुबले-पतले बदन पर नज़र डालती हुई हंस पड़ी:

"वाह, जमशेदजान! अब तुम्हें बच्चा कोई नहीं कह सकता। बहुत ख़ूबसूरत लड़के हो गये हो।" और उनकी तरफ़ धीरे-धीरे आती बालिका

पर उड़ती नज़र डालते हुए बोलीः "और सनोबर भी ख़ूबसूरत लड़की हो गयी है, ज़रा देखो तो।"

सनोबर बुदबुदायीः

"मेहरबानी करके बस कीजिये," और उसने शर्म से लाल होकर मुँह फेर लिया।

तामीला ने मुस्कराकर उसकी तरफ़ देखा और धीरे-धीरे जमशेद का गाल थपथपा दिया। फिर वह उससे पूछने लगी कि उसका सफ़र कैसा रहा, उसके मां-बाप कैसे हैं और क्षमा-याचना करके कि इस समय वह जल्दी में है, उसने कहा कि वह बावर्चीख़ाने में रखा नाश्ता ख़ुद गर्म कर ले। नाले के पास उगे घने, हरे-भरे शहतूतों की क़तारों की तरफ़ हाथ उठाकर उसने कहा कि वहां सड़क पर कार उसका इंतजार कर रही है। उसने एक बार फिर उसे याद दिलाया कि वह नाश्ता करने जाये और पगडंडी की तरफ़ भागी। लेकिन पुल के पास पहुंचकर उसने चिल्लाकर कहाः

"तुम्हारे भाई टेकरी पर हैं। उन्हें भी बता देना कि मैं बीमार को देखने जा रही हूं!..."

जमशेद को बुरा महसूस हुआ कि उसे भाई का केवल अब ध्यान आया – जैसे वह उसके पास आया ही न हो। और उसका ध्यान उसे ख़ुद नहीं आया था। उसने हिचकिचाते हुए सनोबर का हाथ पकड़कर कहाः

"चलो, पहले सूरतजान भैया से मिलने चलते हैं।"

सनोबर ने झटके से हाथ छुड़ाकर भौहें सिकोड़ीं।

"अच्छा! भाई की याद सता रही है?" उसने व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ पूछा।

"हम अभी तक मिले ही कहां हैं।"

"तुम्हारा भाई ख़राब आदमी है," सनोबर ने कटु स्वर में कहा। "तामीला आपा अच्छी हैं, पर वह ख़राब है! ... भाड़ में जाये वह और

उसके ख़रगोश! ... समझे? ... अरे, तुम कुछ नहीं समझोगे!" वह कह उठी और बड़ी मुश्किल से आंसू रोकती हुई मुड़ गयी।

स्तब्ध जमशेद को कहने के लिए तुरंत कुछ न सूझ पाया।

"तुम ऐसा क्यों कह रही हो?" वह बुदबुदाया। "पिछले साल तो तुम ख़ुद ही उन ख़रगोशों को देखकर सबसे ज़्यादा ख़ुश हुई थीं और उनसे खेला भी करती थीं ..."

"तुम लक़लक़ देखना चाहते हो? या अपने भाई के पास जाओगे?" सनोबर ने खीजकर पूछा और जवाब का इंतज़ार किये बिना जाने लगी। जमशेद जब उसे पकड़ने भागा, उसके लाल कुर्ते की झलक पेड़ों के काले तनों और अभी तक ओस से ढकी झाड़ियों के उस पार दिखाई दे रही थी।

बाग़ थोड़ा आगे जाते ही कम घना और उजला हो गया, मानो उसमें ऊषा का आगमन अभी-अभी हुआ हो। फिर बहुत पुराने जमाने में वहां बहनेवाली नदी का चौड़ा सूखा तल नज़र आने लगा। अब उसके तल पर ऊँची-ऊँची घास उग आयी थी, जिसमें मोड़ों पर पारे की तरह झिलमिलाता चश्मा कलकल करता बह रहा था। दायीं तरफ़ ऊषा-काल की लाली से किंचित् अरुणिम हुआ बांध दिखाई दे रहा था। वह इस नदी का पानी रोकता था। उसके पास ही बड़ा तालाब बन गया था, जिसके पानी से सामूहिक फ़ार्म के किसान गर्मियों में सागबाड़ियों को सींचते थे। वृक्षों के लिए बाग़ में फैलने का स्थान नहीं था, उन्होंने अपने शीर्षों से घना, हरा-भरा तंबू तान दिया था, जिसे सूर्य-किरणें बेध नहीं पाती थीं। उस तंबू तले हमेशा ठण्डक रहती थी और गली हुई पत्तियों की बू आती थी।

कम घने बाग़ के आगे घना, ठोस पोपलार खड़ा था। सुबह सवेरे जब उषा की लाली उसे आलोकित करती थी और उसके घने शीर्ष में नीली छायाएं स्पष्ट लक्षित होती थीं, तब वह परी-कथा के उस वीर जैसा लगता था, जो हथेली भौंहों से लगाकर बड़े ध्यान से दूर देखता है। जब कि हवा से सरसराती, चांदी की तरह चमकती पत्तियां कवच का आभास देती थीं।

जमशेद को उस पोपलार की चोटी पर दूर से ही टहनियों का एक छोटा-सा काला ढेर नज़र आ गया। उसे ऐसा आभास भी हुआ कि उसे उसमें से दो लक़लक़ों की पतली-पतली सफ़ेद गर्दनें भी नज़र आ रही हैं। लेकिन न जाने क्यों घोंसले को देखकर उसे उतनी ख़ुशी नहीं हुई, जैसी कि सनोबर को आशा थी। कुछ ही मिनट पहले उसका वह उल्लास जाता रहा था, जो वह सुबह से महसूस कर रहा था। उसके दिमाग़ में सनोबर के शब्द बार-बार गूंज रहे थेः "तुम्हारा भाई ख़राब आदमी है!"

पिछली गर्मियों में जमशेद, सनोबर और सूरतजान इस बाग़ में आकर अपनी टोपियां रसीले आड़ुओं से भरा करते थे। वे तालाब के किनारे बैठकर फलों को धो-धोकर खाते थे। पानी की बूंदें आड़ुओं की रोयेंदार सतह पर टिकती नहीं थीं और टप-टप गिरती रहती थीं, मानो मोती हों।

उन दिनों सूरतजान सनोबर को अपनी सगी छोटी बहन की तरह प्यार करता था। वह, यह मानते हुए कि बालिका कोमल जीव है और उसकी रक्षा करना आवश्यक है, सनोबर का जमशेद से भी ज़्यादा ध्यान रखता था। आख़िर इनमें खटपट क्यों हुई?

जमशेद के चिंतन को दो लड़कों ने भंग कर दिया। वे भी बाग़ से निकले थे। उनमें से एक ने, जो नाटा और गठीला था, अपने लमटंगे साथी के कोहनी से टहोका माराः

"ज़रा देखना, यह पिछले सालवाला कबूतर फिर अपने इलाक़े में आ पहुंचा है!"

"ओहो," लमटंगे ने शहतूतों से काला पड़ा अपना मुँह खोलकर खीसें निपोरी। "ज़रा देखना तो इसके पर कैसे निकले हैं! रंगबिरंगी क़मीज़ में बिलकुल तोता लगता है, तोता।"

"छैला!"

और वे हंस पड़े।

पलक झपकते सनोबर ने उनके पास पहुंचकर उन दोनों के बाल पकड़ लिये और वे होश में आ पाते उससे पहले उनके सिर आपस में टकरा दिये।

"यह लो 'छैला' कहने के लिए! यह कबूतर कहने के लिए!" वह मरखने मेमनों की तरह ज़बरदस्ती उनके सिर आपस में टकराती हुई कहे जा रही थी।

सनोबर शायद उन लड़कों से एक-आध साल बड़ी थी, पर उनसे कहीं ज़्यादा ताक़तवर और तेज़ साबित हुई। लड़के बड़ी मुश्किल से उसके मज़बूत हाथों की पकड़ से छूटकर सिर पर पैर रखकर भागे। सुरक्षित दूरी पर पहुंचकर वे रुक गये और जमशेद को घूंसे दिखाते हुए बोलेः

"ज़रा ठहर, छैले! हमारे हत्थे चढ़ेगा, तब बतायेंगे!..."

"भागो, वरना पकड़ लूंगी! फिर तुम्हारी नाकें ज़मीन पर रगड़ दूंगी!" सनोबर ने पीठ पर चोटियां डालते हुए कहा।

जमशेद ने सनोबर से दोस्ती इसलिए नहीं की थी कि वह उसके लिए हमेशा पकी चेरी, ख़ूबानियां वगैरह बचाकर रखती थी, न ही इसीलिए कि वह फुदकी की तरह बराबर चहचहाती रहती थी और उसके साथ कोई ऊब नहीं महसूस कर सकता था, बल्कि इसलिए कि स्वभाव से शांत व संतुलित होने के कारण उसे उसका नटखटपन व अनेक प्रकार की अप्रत्याशित शरारतें आकर्षित करती थीं, जो अकसर जोख़िम से भरी होती थीं। उसकी शरारतें हमेशा दिलचस्प होती थीं, हालांकि कभी-कभी वे काफ़ी झंझट में फंसा डालनेवाली होती थीं। इसीलिए इस समय उसके लिए यह स्वीकार करना कठिन था कि सनोबर की उसके बड़े भाई के साथ नहीं बनती है, जिसका जमशेद आदर करता था।

"सनोबर," उसने अत्यंत क्षीण स्वर में कहा, "तुम्हें याद है, जब पिछले साल सूरतजान अका चार ख़रगोश लाये थे ..."

"अब तो उनके पास सौ के क़रीब हो चुके हैं!" सनोबर ने उसे टोक दिया। "और पतझड़ तक उससे भी ज़्यादा हो जायेंगे! ..."

"हो जाने दो। इसमें भला कोई बुराई है?" जमशेद को आश्चर्य हुआ।

सनोवर ने अपने पतले कंधे उचका दिये और कुछ नहीं कहा।

वे बाग़ के किनारे-किनारे चलते हुए सनोबर के घर के पास पहुंचे और उससे सटे गर्मियों में काम आनेवाले बावर्चीख़ाने में गये। काफ़ी देर

से रखे हुए छेने, सूखे पुदीने, प्याज़, मिर्च और किन्हीं दूसरे मसालों की तेज़ भभक आयी। छत में बने छेद से, जो धुआंरे का काम देता था, सुनहरी धूप की किरणें कच्चे फ़र्श पर तांबे की चमचमाती परात जैसी लग रही थीं। उसके बीचोंबीच सनोबर का चहेता क़ाराबाय पंजों पर सिर रखे धूप सेंकता ऊंघ रहा था। कुर्ते की सरसराहट सुनकर उसने भूरी आंखें घुमायीं, जंभाई ली और कमर सीधी कर ख़ुशी से म्याऊं-म्याऊं करता सनोबर की ओर बढ़ा। लेकिन उसके गले में बंधी डोरी तन गयी और बिल्ला पिछले पंजों पर खड़ा होता बाल-बाल गिरने से बचा। जमेशद को बुद्धिमान बिल्ली के बारे में कविता याद आ गयीः "...ज़ंजीर से बंधा चारों ओर चक्कर काटता रहता है", और वह ठहाका मारने ही वाला था, पर सनोबर को बड़ी मुश्किल से आंसू रोकते देख उसने अपनी हंसी दबा ली। बालिका ने उकड़ू बैठकर क़ाराबाय को गोद में उठाकर अपने सीने से लगा लिया। बिल्ला बहुत सुंदर थाः धूप में उसके झबरे बाल झिलमिला उठते थे, जबकि गले और पंजों की सफ़ेदी से आंखें चौंधिया जाती थीं।

सनोबर ने बिल्ले को फ़र्श पर रखकर उसके सामने ताज़े दूध से भरी रकाबी रख दी। उसने वैमनस्य से जमशेद की तरफ़ देखकर धीरे-से कहाः

"देख रहे हो, यह तुम्हारे भाई के कारण बिल्ले को बांधकर रखना पड़ रहा है ..."

जमशेद आख़िरकार समझ गया कि सूरतजान और उसमें अनबन क्यों हुई हैं। वह राहत की सांस लेकर हंस पड़ाः

"अच्छा तो यह कारण है तुम्हारी खटपट का! क़ाराबाय के कारण!"

"क्या बिल्ली जीव नहीं है? बिल्ली से ज़्यादा समझदार कोई जानवर नहीं होता। उसे छत से चाहे जैसे नीचे फेंको, वह हमेशा पंजों के बल गिरेगी," सनोबर जोश में कह उठी।

उसकी बातों से जमशेद को और ज़्यादा हंसी आयी।

सनोबर को दोपहर तक जमशेद से बात करने की इच्छा नहीं हुई। केवल जब उसने उसे बड़ा लाल गेंद लाकर दिया, जिसे पाने के सपने वह कब से देख रही थी, तब वह थोड़ी नर्म पड़ी और अपने रूठने की बात

भूलकर ख़रगोशों का बाड़ा देखने को राज़ी हो गयी, जिससे उसे नफ़रत थी।

सनोबर जमशेद को एक छोटी-सी टेकरी के पास ले गयी, जिसके किनारे बारिश से कट गये थे और जिस पर उजले धूसर रंग की अफ़संतीन की झाड़ियां उगी हुई थीं। कभी इस जगह से घर के काम के लिए बालू ली जाती थीं। टेकरी में एक ज़्यादा गहरी नहीं पर लंबी-चौड़ी गुफा बन गयी थी। सूरतजान को ख़रगोशों के बाड़े के लिए यही जगह पसंद आयी थी। पूरी टेकरी घनी तार की जाली से घिरी हुई थी और काले-काले बिलों से छिदी हुई थी। बन-संजली की हर कुतरी हुई झाड़ी के पीछे से, हर कंटपीनाक्ष के नीचे से, हर अफ़संतीन की ओट से दो लंबे-लंबे सतर्क कान निकले नज़र आ रहे थे। गुफा-मुख के पास छाया में एक बड़ी-सी सफ़ेद ख़रगोश मादा पसरी पड़ी थी। उसके आस-पास अभी-अभी अण्डा फोड़कर निकले रोयेंदार चूज़ों जैसे ख़रगोश के बच्चे घूम रहे थे। कुछ शावक खेल रहे थे, एक दूसरे का पीछा कर रहे थे, उछल रहे थे मानो छोटे-से गेंद हों।

सनोबर इन नन्हें प्राणियों के प्रति अपना हाल का दुर्भाव भूलकर जल्दी से उनके लिए ताज़ा घास उखाड़ने जंगली बेर की झाड़ियों की तरफ़ लपकी। जमशेद भी उसी की तरह घास उखाड़ने जाने ही वाला था कि टेकरी के पीछे से तेज़ी से पड़ते खुरों की आहट सुनाई दी और तत्क्षण मरियल गधे पर सवार सूरतजान नज़र आ गया। उसके लंबे पैर क़रीब-क़रीब ज़मीन को छू रहे थे। वह अपने आगे हाथों में तिपतिया घास की बड़ी-सी पूली संभाले हुए था। जमशेद को देखकर उसकी बाछें खिल उठीं, सुंदर दंतावली चमक उठी। वह गधे से उतरकर उसकी लगाम पकड़े उसकी तरफ़ बढ़ा।

भाई को सदा बढ़िया सिले कपड़े पहने देखने का आदी जमशेद उसका लिबास देखकर दंग रह गयाः कत्थई पतलून फटी-पुरानी घुटनों पर घिसी हुई थी, उसका एक पायंचा बूट से निकलकर नीचे खिसका हुआ था, वाटरप्रूफ़ बूट धूल से सफ़ेद थे, मुड़े हुए थे, क्योंकि उन पर अर्से से पालिश नहीं हुई थी। चौखाने की क़मीज़ पसीने और जमी धूल के कारण

कंधों पर भूरी पड़ गयी थी। गुट्टी पर खींचा हुआ स्ट्राहैट अण्डे सेती मुर्ग़ी के घोंसले जैसा लग रहा था – उसके किनारे मुड़ गये थे और जगह-जगह से तिनके निकले हुए थे। चौड़ी फ़ौजी पेटी में उल्टी हंसिया ठूंसी हुई थी। जो उसे न जानता हो, वह कभी यह नहीं सोच सकता था कि वह डाक्टर है। "यह सच है कि गांव में सफ़ाई का ख़ास ध्यान नहीं रखा जाता . .." जमशेद ने सोचा। "पर यह इतना सूख कैसे गया है? आंखें गढ़ों में धंस गयी हैं दाढ़ी न बनाने से दुबला भी ज़्यादा लग रहा है ..."

"तुम अभी तक कहां ग़ायब थे, लड़के?" सूरतजान उस पर बरस पड़ा और साथ ही ज़ोर से हंस पड़ा। "मैं तो ख़ुश हो रहा था कि मेरा मददगार आ गया है, पर तुम्हें यह नकची पहले ही घर से बहकाकर ले गयी!.."

सूरतजान ने जमशेद को दोनों हाथों से कमर से पकड़कर हवा में उछाला और पकड़कर वापस खड़ा कर दिया। फिर उसने धूप से आंखें मिचमिचाते हुए एक ओर खड़ी सनोबर की तरफ़ देखा।

"अपने शेर की ज़ंजीर नहीं खोली?" उसने पूछा।

"उसे मैं किस बात की सज़ा दूं? खोल दिया उसे!" सनोबर ने आंखें चमकाते हुए चुनौती-सी दी।

सूरतजान की हंसी ग़ायब हो गयी और भौंहें नाक के बांसे पर सिकुड़ आयीं:

"नहीं, मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूं, नकची! मुझे लगता है कि कल शाम को तुम्हारा क़ाराबाय फिर यहां मंडरा रहा था..."

सनोबर ने खीजकर हाथ पर हाथ मारा:

"तो तुम क्या कर लोगे! सुबह से ही सिर्फ़ बिल्ली और कुत्तों की बातें करते हो!"

सूरतजान ने जैसे बालिका की बात सुनी ही नहीं, हैट उतारा और कानी उंगली से पसीने से तर सिर खुजलाने लगा।

"कितनी हैरत की बात है!" उसने कहा। "आज मैंने गिना, तो फिर

ख़रगोश के दो बच्चे कम पाये। वे जा कहां सकते हैं, अगर ...''

''हां! हां! हां! उन्हें भी मेरा क़ाराबाय खा गया न!...'' सनोबर चिल्लायी और अपने आंसू न रोक पाने के कारण जल्दी से बाग़ में भाग गयी।

यह देखकर कि जमशेद की भौंहें सिकुड़ गयी हैं, सूरतजान ने उसे आंख मारी, मानो कह रहा होः यह भी कोई नाराज़ होने की बात है? फिर सफ़ाई देता हुआ बोलाः

''पागल है ... इसका बिल्ला भी शेर जैसा है! मैंने ख़ुद अपनी आंखों से देखा उसे ख़रगोश का बच्चा उठाकर ले जाते हुए, जब सफ़ेद मादा ने बच्चे दिये। मैंने उससे कहा, पर वह नहीं मानती ... और जब कि बाज़ार में एक बड़ा ख़रगोश पांच रूबल से कम में नहीं बिकता है...''

वह गधे के पास जाकर तिपतिया की पूली उतारने लगा। उसने आवाज़ दीः

''ज़रा मदद करना, भाई!''

उन दोनों ने मिलकर आधी पूली बाड़े में जगह-जगह डाल दी। बाक़ी बची तिपतिया जंगली बेर तले छाया में शाम तक के लिए रख दी। फिर भाई ने जमशेद का कंधा थपथपाया, मानो कह रहा होः शाबाश! उसके बाद वे घर चल दिये।

नाश्ता करते ही सूरतजान फिर जमशेद को टेकरी पर ले आया और उससे कठौतियों में पानी लाकर भरने को कहकर बहिरंग रोगी विभाग में रोगियों को देखने चला गया।

उस दिन से ''ख़रगोश-पालन फ़ार्म'' – जैसा कि सनोबर ने उसका नाम रख दिया था – के लगभग सारे काम जमशेद के ज़िम्मे हो गये। पूर्व में आकाश उजला होने लगता नहीं कि वह अपने भाई के साथ मैदान में तिपतिया काटने रवाना हो जाता। फिर वे तिपतिया घास के तीन हिस्से करते, जिन्हें जमशेद को दिन में तीन बार ख़रगोशों के बाड़े में डालना होता थाः सुबह, दोपहर में और शाम को। इसके अलावा बीचे-बीच में दो बालटियां उठाकर तालाब के भी चक्कर काटने पड़ते थे। केवल भाई

के काम से लौटने के बाद ही जमशेद अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त हो पाता था।

तामीला अपने पति की बेतकल्लुफ़ी का प्रायश्चित करने के इरादे से जमशेद को मीठी पाई, मलाई या ख़ुशबूदार जैम खिलाया करती थी। जब वह खा रहा होता था, तो वह उसके पास बैठकर ठण्डी सांसें लेती, उसके अर्से से न कटे बाल सहलाती रहती थी। एक बार संयोगवश जमशेद ने तामीला को पति से गुस्से में यह कहते भी सुन लिया कि वह लड़के को बिलकुल भी आराम नहीं करने देता है।

पर जमशेद काम से लेशमात्र भी दुखी नहीं था। उसके कारण उसे थकान नहीं महसूस होती थी। सच पूछिये, तो थोड़ी ऊब ज़रूर होती थी। लेकिन सभी को आनंददायक काम मिल भी कहां सकता है? कहीं ऊब उसे इसलिए तो नहीं होती कि वह काफ़ी समय से सनोबर से नहीं मिल पाया है? उनकी दोस्ती का अंत बड़ी बेवक़ूफ़ी से हुआ ...

सूरतजान के साथ हुई उस कहा-सुनी के दिन से सनोबर जमशेद से भी कतराने लगी थी। और अगर कहीं उसके साथ उसकी मुलाक़ात हो भी जाती, तो वह रुखाई से सलाम करके सिर झुकाये पास से निकल जाती। यह सच है कि जमशेद स्वयं कभी-कभी उनके घर झांक लेता था। लेकिन समोबर को अब पहले जितनी ख़ुशी नहीं होती थी।

जैसी कि आशा करनी चाहिए थी, ख़रगोशों से पड़ोसी परेशान होने लगे। सारी बात शुरू इस तरह से हुई कि लंब-कर्णों में एक खोजी निकल आया – उसे जाली के नीचे बिल खोदने की सूझ आयी। और ख़रबूजे को देखकर ख़रबूज़ा रंग पकड़ता ही है। सब ख़रगोशों ने जाली के नीचे बिल खोद डाले। खुले में पहुंचते ही ख़रगोश साग-बाड़ियों में बंदगोभी, गाजर और चुकंदर पर हमला बोलने लगे। और इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी कि लोग सूरतजान से झगड़ने आने लगे।

लेकिन सूरतजान चिकना घड़ा था। मगर पड़ासियों की भी तारीफ़ करनी ही पड़ेगीः उनकी ज़बानें भी चलती ही रहीं। उन्हें जब कभी जमशेद रास्ते में मिलता, तो वे उसे वह सब कह डालना, जो वे उसके भाई के

बारे में सोचते थे और उसे ख़ुद को भी "ख़रगोशों का चरवाहा" कहना ज़रूरी समझते थे। गांव में सबकी साग-बाड़ियां थी। इसलिए हर कोई अपने गधे पर या पैदल टेकरी के पास से गुज़रते समय, भले ही जमशेद किसी झाड़ी में छिपा हुआ हो, गला फाड़-फाड़कर चिल्लाना अपना कर्त्तव्य समझता था:

"ऐ, लड़के, अपने भाई से कह देना, उसके लटकते कानोंवाले जानवरों से हमारी नाक में दम है!..."

कभी-कभी उसे लगता कि उसके भाई को सचमुच कुछ हो गया है, जैसे कोई अनजानी बीमारी उसे अंदर ही अंदर खाये जा रही है। "उसे हो क्या गया है? उसे क्या ज़रूरत है इन ख़रगोशों की?" वह सोचता रहता। वह हमेशा कितना ज़िंदादिल रहता था, क्या छोटा और क्या बड़ा, सबसे बात करने का तरीक़ा उसे आता था, दावतों में उसकी जोड़ का नाचनेवाला नहीं मिल सकता था ... आख़िर वह एक साल में इतना बदल कैसे गया?..."

एक बार सुबह नाश्ते के फ़ौरन बाद ही जमशेद ने तिपतिया घास काटने जाने का फ़ैसला किया। हंसिया भोथरी हो गयी थी। उस पर धार चढ़ाने के लिए उसने सिल्ली उठायी और खिड़की के पास लट्ठे पर बैठ गया। जमशेद ने पहले तो सूरतजान और तामीला की आवाज़ों पर ध्यान नहीं दिया, पर फिर बरबस सुनने लगा।

तामीला खीज-भरे स्वर में कह रही थी:

"आप ज़रा शीशे में अपनी सूरत तो देखिये! कैसे लगने लगे हैं?..."

सूरतजान जवाब में हंस पड़ा और बोला:

"मैं तो आम मेहनतकश आदमी जैसा लगता हूं। इसमें ऐसी क्या बुरी बात है?"

"आख़िर आप कब ख़ात्मा करेंगे अपने इन भेंगे शैतानों का? यह आपको बिलकुल शोभा नहीं देता!"

सूरतजान थोड़ी देर चुप रहा। फिर उसका शांत और दबा स्वर सुनाई दिया, लेकिन शुरू में उसकी बात समझ में नहीं आयी। वह जल्दी-जल्दी बोलने लगा, मानो उसे डर हो कि उसे टोक दिया जायेगा और वह अपनी बात पूरी नहीं कर पायेगा।

"मैं समझता हूं। सब समझता हूं!.. लेकिन आख़िर तुम भी तो मेरी बात समझो। थोड़ा सबर करो। एक-दो महीने की बात है ... पतझड़ में सबको थोक भाव बेच दूंगा और हम यहां से चले जायेंगे। इनकी लगभग नहीं के बराबर संभाल करनी होती है और बढ़ते कितने तेज़ी है, तुम ख़ुद ही देखती हो, बीजीय श्रेढ़ी में! फिर हरेक के पांच या छः रूबल तक मिलते हैं! तुम यह क्यों नहीं समझती हो!"

"यानी हम यहां से मालदार होकर जायेंगे?" तामीला व्यंग्यपूर्वक पूछा।

"बात भला मालदार होने की है क्या, प्यारी? मुझे बहुत ज़्यादा की इच्छा नहीं है। बस हम जब शहर में रहने पहुंचे, तो मेरी बीवी औरों से बुरे कपड़े न पहने हुए हो। अपनी सहेलियों के बीच पहले की तरह अपना सिर ऊंचा रख सके। मुझे ख़ुद को भी जान-पहचानवालों के सामने बुरा न महसूस हो।"

"मैं तो अभी भी अपने को किसी से कम नहीं समझती।"

"नहीं, मेरी प्यारी, यह तो तुम मुझसे हमदर्दी के कारण कह रही हो," सूरतजान हताश व्यक्ति के कर्कश स्वर में बोलता रहा। "तुम इंस्टीट्यूट में भी औरों से बेहतर कपड़े पहनती थीं, औरों से सुंदर थीं। तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें आंख की पुतली की तरह रखा। मैंने तुम्हें उनसे छीन लिया। मैं चाहता हूं कि तुम अब भी ..."

"क्या मैंने कभी आपको ताना मारा? पर लोग तो ऐसी-ऐसी बातें करते हैं ..."

"जब मैं अपनी प्यारी बीवी का ख़याल रखता हूं, तो मुझे लोगों की नुक़ताचीनी की क्या परवाह ..."

जमशेद को चुंबन की आवाज़ सुनाई दी और उसे बड़ा अटपटा लगा कि उसने अंतरंग बातचीत सुनी। वह जल्दी से घर के पीछे चला गया।

एक बार जब जमशेद दोपहर में खाना खाने घर आया, तामीला ने उसे बताया कि एक मिनट पहले सनोबर उसे अपने घर गोजा* खाने बुला गयी है, जो उसकी मां ने आज पकाया है। सनोबर पहले से जानती थी कि जमशेद को गोजा पसंद है। लेकिन इस समय उसे दही और तरह-तरह के मसाले पड़े उस स्वादिष्ट खाने का नाम सुनकर इतनी ख़ुशी नहीं हुई, जितनी कि सनोबर की आने की बात सुनकर। वह तुरंत माहिरा ख़ाला के यहां भागा।

शामुराद चाचा, माहिरा ख़ाला और सनोबर ख़ूबानी के पेड़ के नीचे तख़्त पर बैठे थे। शामुराद चाचा नीची रेलिंग पर कोहनी टेके बैठे लकड़ी के चम्मच से धीरे-धीरे गोजा खा रहे थे। सनोबर पास में बैठी क़ाराबाय के बदन पर हाथ फेरती हुई प्यार से कुछ बोल रही थी। जमशेद को फाटक के बाहर से ही माहिरा ख़ाला की आवाज़ सुनाई दे गयी। वह हाथ हिला-हिलाकर जोश में अपने पति से कुछ कह रही थी। जमशेद केवल वाक्य का अंतिम भाग ही सुन पायाः "...इसके कारण लोगों के सामने शर्मिंदा होना पड़ता है।" जमशेद को देखकर शामुराद चाचा ने माहिरा ख़ाला से जल्दी से कुछ कहा, अपनी टोपी सिर पर ठीक की और धीरे से हंसकर बोलेः

"आओ, जमशेद बेक, यहां तख़्त पर आ जाओ। तुम्हारा चम्मच तुम्हारा इंतज़ार कर रहा है। तुम गांव में आराम करने आये हो, पर नज़र ही नहीं आते हो। हमारे यहां आना बंद कर दिया। ऐसा क्यों, बेटे?"

माहिरा ख़ाला ने गोजा की पूरी रकाबी जमशेद की ओर बढ़ाते हुए एक तरह से अपनी अधकही बात पूरी करते हुए कहाः

"जमशेदजान भी अब छोटा नहीं रहा, ख़ुद ही देखता है कि इसके भाई के कारण आधा गांव 'दुहाई! दुहाई!' चिल्ला रहा है। नहीं, आपको अपने डाक्टर से बात करनी चाहिए : या तो वह ख़रगोशों को पार लगाये या उनका बाड़ा हमारे गांव में कहीं दूर ले जाये।"

---

* गोजा – ज्वार या गेहूं की पतली खिचड़ी।

शामुराद ने थोड़ा खांसकर जमशेद का कंधा थपथपाया, मानो कहना चाहते होः तुम खाओ, इनकी बात पर ध्यान मत दो। फिर वह पत्नी से सख़्ती से बोलेः

"अक्लमंद को एक इशारा ही काफ़ी होता है। वे पढ़े-लिखे लोग हैं हमारे बताये बिना ख़ुद समझ जायेंगे," और उन्होंने फिर सिर पर अपनी टोपी ठीक की।

"पढ़े-लिखे हैं? आप सबको एक भाव मत तोलिये। बेचारी तामीलाख़ोन की तो बात दूसरी है। मैं तो इसके भाई के बारे में कह रही हूं, सूरतजान के बारे में!.."

"इसका भाई ख़रगोशों को फ़ायदे में बेचकर मालदार बनना चाहता है," अचानक सनोबर व्यंग्यपूर्वक कह उठी।

कौर जमशेद के गले में अटक गया और वह खांसकर वहां से उठकर भागा। भागते हुए फाटक से निकलते समय उसे शामुराद चाचा की उलाहना-भरी आवाज़ सुनाई दीः

"यह भी कोई बात हुई? लड़के को गोजा खाने बुलाया और उसका खाना हराम कर दिया..."

सूरतजान सूखी तिपतिया घास के ढेर पर गुफा की दीवार का सहारा लिये बैठा ख़रगोशों को डाली गयी ताज़ा घास कुतर-कुतरकर खाते देख रहा था। उसने जमशेद को देखकर उसे बाड़ फांदकर आने का इशारा किया।

"आज एक और मादा ब्याई है," सूरतजान ने उसे ख़ुशी से बताया। जमशेद भाई के पास बैठ गया और उसने आंखें चुराकर कांपती आवाज़ में कहाः

"सूरतजान अका, मेहरबानी करके इन्हें पालना बंद कर दीजिये ... आप इतने अच्छे थे। सब आपकी इज़्ज़त करते थे। पर अब..."

भाई की भौंहें चढ़ते देख वह चुप हो गया।

"तुम किस की बात कर रहे हो?"

"लोग हमें ताने देते हैं कि हम ख़रगोश बेच-बेचकर मालदार बन जाना चाहते हैं..."

सूरतजान का मुंह उतर गया। आंखें मिच गयीं और परखती हुई-सी देखने लगीं। पुतलियां लड़कियों जैसी घनी बरौनियों तले से घूर रही थी। जमशेद ने सोचा कि भाई अब उस पर बरस ही पड़नेवाला है। लेकिन सूरतजान ने इतनी गहरी ठण्डी सांस ली कि घरघर सुनाई दी और फिर हथेली से माथा पोंछा।

"थोड़ा और पास सरक आओ," उसने कहा और व्यंग्यपूर्वक मुस्करा पड़ा। "यानी मैं मालदार बनना चाहता हूं ... पर तुम्हें ख़ुद को इन बातों पर विश्वास होता है, प्यारे भाई?"

जमशेद ने इनकार में सिर हिला दिया:

"मुझे विश्वास नहीं होता, लेकिन..."

"इसके लिए भी तुम्हारा शुक्रगुज़ार हूं," भाई ने उसके घुटने पर हाथ रखकर उसे रोक दिया। "अच्छा अब मेरी बात सुनो: माना तुम्हारा कोई दोस्त है, ऐसा दोस्त जिसके लिए कुछ भी करते तुम्हारा दिल नहीं दुखता। यहां तक कि अपनी जान तक क़ुर्बान करने को तैयार हो। मान लो, जैसे सनोबर ही है..."

"वह मुझसे उस दिन से बात ही नहीं करती है..." जमशेद ने बताना आवश्यक समझा।

"यह कोई मायने नहीं रखता। तुमने जब बात छेड़ी ही है, तो दिल खोलकर बात करनी चाहिए ... तुम जानते हो, प्यारे भाई," उसने फिर ठण्डी सांस ली, "दौलत पर मैं थूकता हूं। मुझे बस तुम्हारी भाभी तामीला के ताने नहीं सुनने पड़ें।"

"मैं समझता हूं, लेकिन..."

"तुम कुछ नहीं समझते। पहले मेरी पूरी बात सुनो।" वह मौन हो गया, मानो अपने विचारों को सूत्रबद्ध कर रहा हो। फिर वह एक तरफ़ देखता हुआ शांत स्वर में बोलने लगा। "तुम जब बड़े होंगे, तब शायद

समझो कि आदमी के लिए ... प्यार क्या होता है। ख़ुदा करे तुम्हें समझने का मौक़ा मिले ... कुछ साल पहले जब तुम्हारी भाभी और मेरी मुलाक़ात हुई थी, तब वह इतनी सुंदर थी ... अब क्या कहूं! इंस्टीट्यूट में ख़ूबसूरत से ख़ूबसूरत लड़के, बड़े-बड़े लोगों के बेटे, उसके इर्द-गिर्द मंडराते रहते थे, अगर उससे बात करने का मौक़ा मिल जाता, तो अपने को बड़ा ख़ुशनसीब समझते थे। और उसके मां-बाप उज्ज्वल भविष्यवाले दामाद के सपने देख रहे थे! ... लेकिन तुम्हारी भाभी ने उनका कहना न मानकर मुझे चुन लिया। शहर से, जहां पलकर बड़ी हुई थी, मेरे साथ काम करने इस गांव में आ गयी। कुछ ही दिनों में हमें इस मनहूस जगह में रहते हुए चार साल हो जायेंगे ... इस दौरान वे लड़के जिन्हें तुम्हारी भाभी ने ठुकरा दिया था, ऊंचे पदों पर पहुंच चुके हैं, हरेक के पास 'वोल्गा' कार है! और यह भी हो सकता है कि भविष्य में हमारी सुख-समृद्धि भी उन्हीं पर निर्भर करे! और मैं क्या हासिल कर पाया हूं इन चार सालों में, बताओ?..."

"भाभी तो आपको ताने नहीं देतीं न..."

"वह तो बस एक नेक औरत है। तुम क्या सोचते हो कि वह कुछ नहीं देखती, कुछ नहीं समझती? वह बस चुप रहती है... लेकिन उसके ढेर सारे रिश्तेदारों के मुंह तो बंद नहीं किये जा सकते न! वे उसे लिखते रहते हैं: तूने हमारी सलाह नहीं मानी, अब जैसा बोया वैसा काट। कुछ दिनों में हम शहर में रहने चले जायेंगे। गांव में जितना काम कर सकते थे, कर चुके, बस। अब दूसरे हमारी जैसी हालात में काम करें! वे लोग, जो प्रकृति की गोद को पिकनिकों से ही जानते हैं!... जाना हमने तय करने को तो तय कर लिया, पर जायें कैसे? आख़िर शहर में जाते ही तो काम जमता नहीं ... तुम ख़ुद ही जानते हो कि मैंने पहले यह ख़रगोश प्रयोगों के लिए पाले थे। मैं शोध-प्रबंध लिखने की भी सोच रहा था। फिर, देखो – ये तो हमारे लिए ख़जाना साबित हो सकते हैं!.. कहने का मतलब है, एक-दो महीने और ताने-उलाहने सहने पड़ेंगे, मुन्ना। आख़िर तुम भी तो अपनी भाभी को प्यार करते हो, सच है न? उसे शहर में अपनी सहेलियों के बीच अपनी और अपने असफल पति के कारण शर्मिंदगी नहीं उठानी पड़नी चाहिए। वह मेरा सुख का पंछी है, जो

अचानक अनजाने में मेरे कंधे पर आ बैठा। मुझे डर है कि वह कहीं फुर्र से उड़ न जाये। तुम अभी छोटे हो, अभी सारी बातें नहीं समझते ..." सूरतजान उदासी से मुस्कराया। उसके शब्दों में इतने रहस्योद्‌घाटन थे कि जमशेद द्रवित हो उठा, उसने आवेश में भाई को गले लगा लिया और बाग़ में भाग गया ताकि कुछ समय एकांत में रह सके।

रात को जमशेद काफ़ी देर तक सो नहीं पाया। वह अंगूर के कुंज में तख़्त पर लेटा तालाब में मेढकों का बेसुरा सहगान, गला फाड़-फाड़कर भौंक रहे कुत्तों की दूर से आनेवाली आवाज़ों, हवा के झोंकों से क्षुब्ध पत्तों की तंद्रिल सरसराहट को सुनता रहा, काफ़ी देर तक अपलक तारों को देखता रहा, जो इतना नीचे टिमटिमा रहे थे कि लगता था जैसे उन्हें हाथ बढ़ाकर छुआ जा सकता है।

भाई के साथ हुई बातचीत के बाद उसका यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि सूरतजान भला और सज्जन है। लेकिन उसको निर्दोष ठहराते हुए वह सनोबर, उसकी मां और अन्य पड़ोसियों को भी दोषी नहीं कह सकता था। उनके पारस्परिक संबंधों को जोड़नेवाली जंज़ीर में एक कड़ी ग़ायब थी, जिसे जमशेद किसी तरह ढूंढ़ नहीं पा रहा था, समझ नहीं पा रहा था।

उस बात को एक सप्ताह हो चुका था। इस दौरान सूरतजान जमशेद के प्रति स्नेहपूर्ण व नम्र रहा। वह उसे अक्सर तालाब पर धूप-स्नान करने जाने देता रहा। और अचानक वह अकारण खिन्न रहने लगा, मामूली-सी बातों पर चिढ़ने लगा, बड़बड़ाने लगा। हुआ यह कि फिर ख़रगोशों के बच्चे ग़ायब होने लगे थे। आये दिन कभी एक बच्चा ग़ायब हो जाता, कभी दो।

... जमशेद तालाब में लड़कों के साथ खेल रहा था। काफ़ी शोर था। वे पानी में छप-छप कर रहे थे, एक दूसरे के पीछे ग़ोता लगा रहे थे। किसी लड़के ने कहा कि उसे उसका भाई आवाज़ दे रहा है। जमशेद निकलकर किनारे आ गया। सूरतजान टेकरी पर दूर से खूंटी-सा गड़ा

दिखाई दे रहा था। जमशेद जल्दी से पतलून चढ़ाकर चलते-चलते क़मीज़ पहनता पूरे ज़ोर से भागा।

सूरतजान किसी बात से परेशान गधे पर काठी कस रहा था। फिर उसने उस पर ख़ुरजी डाली और सिर से सामनेवाले पुराने नदी-तल की ओर इशारा किया। नदी का रेतीला कगार, जिस पर वहां से अफ़संतीन की पूलियों-से लगनेवाले पेड़ उगे हुए थे, दूर से कच्ची दीवार जैसा दिखाई देता था।

"जब उस कगार पर चढ़ जाओगे, तो तुम्हें खड्ड दिखाई देगा। इस ख़ुरेजी में एक थैला पड़ा है। उसे खड्ड में फेंककर लौट आना।"

जमशेद ने उस तरफ़ देखा, जिधर भाई ने इशारा किया था। वहां आकाश नीललोहित हो चुका था और कगार धीरे-धीरे नारंगी होता जा रहा था। सूरतजान ने उसकी हिचकिचाहट देख ली और कृत्रिम हंसी के साथ खीज-भरी आवाज़ में पूछाः

"तुम क्या अंधेरे से डरते हो? भूत-प्रेत में तो विश्वास नहीं करते हो?.. अपनी तेज़ सवारी को सरपट दौड़ाना, यह तुम्हें ध्वनि की गति से वहां पहुंचा देगा और वापस ले आयेगा!..."

ताकि भाई उसे डरपोक न समझ ले जमशेद ने चुपचाप गधे पर सवार होकर उसके एड़ लगा दी।

जमशेद को पिछले वर्ष उस कगार पर चढ़ने का मौका मिला था। उसकी ढलान अबाबीलों, फ़िंचों आदि चिड़ियों के बिलों से छलनी हो गयी थी। लड़के उन्हें खोद-खोदकर घोसलों में से चिड़ियों के अण्डे निकाल लेते थे। फिर वे नदी के रंगबिरंगे पत्थरों जैसे उन अण्डों को अलाव पर पकाकर खाते थे।

और एक बार वह और सनोबर उस तरफ़ मेमने को खोजते हुए एकाएक कगार पर पहुंच गये थे। उसकी ढलान पर जमशेद ने एक झाड़ी हटायी थी और उसके पैरों तले से एक बहुत बड़ा काला सांप फुफकार मारकर निकल गया था। वह बल खाता, फ़ीते की तरह चमकता घास में घुसता दिखाई दिया था और आंखों से ओझल हो गया था। जमशेद

डर के मारे अवाक् रह गया था। सनोबर ने भी सांप को देख लिया था। वह जमशेद को हाथ से पकड़कर वहां से खींच ले गयी थी। वे नदी पर पहुंचने तक भागते रहे थे। वहां कई लड़के चीख़ते, हंसते पानी में खेल रहे थे। जमशेद और सनोबर एक दूसरे की बात काटते अपने उस भयानक अनुभव के बारे में उन्हें बताने लगे थे ...

जमशेद ने गधे को टिटकारी मानते हुए उस पर बैठे-बैठे नदी जल्दी ही पार कर ली। गधा तेज़ी से सिर हिलाता हुआ पगडण्डी से कगार की तरफ़ चढ़ने लगा। उसके खुरों से कंकर-पत्थर सरसराते हुए नीचे लुढ़क रहे थे।

अंत में वह खड्ड भी आ गया। वह लंबे-गहरे गड्ढे-सा ज़्यादा लग रहा था। उस समय गहराते झुटपुटे के कारण उसका तल देख पाना असंभव था।

वह अंधेरे से लबालब-भरी दवात जैसा लग रहा था और उसमें से नम मिट्टी और फफूंद की बू आ रही थी।

जमशेद ने अपने डर पर क़ाबू करके गधे से कूदकर ख़ुरजी में ऊनी थैले को टटोला और एक झटके में उसे बाहर खींच लिया। अचानक थैले में कुछ भारी और नर्म-सा कसमसाया और रुंधी हुई आवाज़ आयी। जमशेद ने उस अजीब थैले को दूर फेंकने के लिए जल्दी से हाथ घुमाया, पर उसमें से फिर खुरचने और हल्के-से चीख़ने की आवाज़ आयी। "कुत्ता है! नहीं, बिल्ली है!..." जमशेद के दिमाग़ में फ़ौरन कौंधा "क़ाराबाय!" उसने कांपते हाथों से थैले का मुंह खोल डाला और उसके निचले कोने पकड़कर झटकार दिया। क़ाराबाय निकलकर ज़मीन पर गिर पड़ा। उसके सिर पर सफ़ेद चिथड़ा लिपटा हुआ था और पैर एक दूसरे पर आड़े बंधे हुए थे। जमशेद ने उसके पैर खोल दिये और सिर पर लिपटा कपड़ा हटा दिया। बिल्ले ने एक तरफ़ उछलकर और गुर्राकर कमर सिकोड़ी। उसकी हरी आंखें अंगारों की तरह चमक उठीं।

"क़ाराबाय, अरे, मैं हूं, बेवकूफ़, मैं," जमशेद ने कहा।

बिल्ला उसे पहचान गया। वह दुखी स्वर में म्याऊं-म्याऊं करता, मानो शिकायत कर रहा हो, बालक के पैरों पर अपना बदन रगड़ने लगा।

अब भला उसे डर लग सकता था? जमशेद ने क़ाराबाय को दोनों हाथों में उठा लिया और गधे पर सवार हो वापस चल दिया। अभी उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसे भाई से क्या कहना चाहिए। वह उसी उलझन में पड़ा था कि अब वह सनोबर के सामने सूरतजान की सफ़ाई कैसे देगा। बिल्ले को उठाये भाई की नज़रों में न आने के इरादे से उसने दूसरी तरफ़ से बाग़ के सहारे-सहारे निकलने का फ़ैसला किया। गधा बाग़ को कपास के खेतों से अलग करनेवाली, लोगों के पैरों तले ख़ूब रुंदी मेड़ पर धीरे-धीरे चल रहा था। फिर वह सवार के मोड़े बिना ख़ुद ही दायीं ओर मुड़कर सनोबर के घर के बाहर पहुंच गया। जमशेद ने गधे को रोककर आवाज़ दी।

"सनोबर!"

लेकिन जिद्दी लड़की को कोई जल्दी नहीं थी। जमशेद देख रहा था कि उसने पहले भेड़ों के अगले पैर छांदे, फिर साग-बाड़ी में खुलनेवाले ख़ास छोटे फाटक में से उन्हें हांककर तिपतिया घास पर छोड़ा और उसके बाद लौटकर गाय और बछड़े को ताज़ा घास डाली। इसके बाद ही वह फाटक से निकलकर जमशेद के पास आयी। उसके हाथों में अपने क़ाराबाय को देखकर वह ख़ुशी से चिल्ला उठी:

"मेरे प्यारे क़ाराबाय! तू फिर छूटकर भाग गया, बेवक़ूफ़! सारे दिन तू कहां ग़ायब रहा?"

उसने बिल्ले को सीने से चिपटा लिया। जमशेद ने उसके व्यस्त होने का लाभ उठाकर गधे के एड़ लगायी, पर सनोबर ने जल्दी से बिल्ले को ज़मीन पर छोड़कर लड़के की आस्तीन पकड़ ली।

"जमशेद," सनोबर ने लगभग फ़ुसफ़ुसाते हुए कहा, मैं तो सोचती थी कि तुम भी अपने भाई जैसे हो ... मेरा ख़याल ग़लत था। तुम मुझ पर गुस्सा मत होओ। अब हम ..." वह बोलती-बोलती रुक गयी, न जाने क्यों उसका चेहरा लाल हो गया और वह पूरे एक मिनट चुप रही। "अब अगर तुम्हें कभी किसी ने कुछ ऐसा-वैसा कहा!..." उसके मुंह से निकला और उसने अपनी बात पूरी किये बिना जमशेद का कंधा पकड़कर उसका सिर अपनी तरफ़ झुका लिया और अनाड़ीपन से अपने गर्म होंठों व नाक से उसके गालों का स्पर्श कर लिया।

जब तक जमशेद को होश आता, सनोबर का वहां नामोनिशान भी न रहा। वह ग़ायब हो गयी। जमशेद ने गधे को हांक दिया, जो अपने थान और जौ की गंध पाकर अब सरपट भागा।

अंगूर के कुंज में बड़ा बल्ब जल रहा था। सूरतजान तख़्त पर बैठा शोरबा खा रहा था। जमशेद के देहलीज़ पर क़दम रखते ही उसने पूछाः

"क्यों? जंगी कार्रवाई पूरी कर ली?"

जमशेद का मन बहुत कर रहा था कि वह पिछली बार जैसे उसके गले में हाथ डालकर उसके पास बैठे और उससे अपना बेकार का काम छोड़ देने को कहे। लेकिन अब उसे कुछ ऐसा करने से रोक रहा था। उसे उससे बात तक करने की इच्छा नहीं हुई। उसने भाई की तरफ़ देखे बिना सिर हिला दिया और गधे को शेड में ले गया।

जमशेद की नींद दूरी के कारण दबी मर्म-भेदी चीख़ से खुल गयी। वह रज़ाई हटाकर तख़्त से कूदकर भागा। पर यह समझ न पाने के कारण कि आवाज़ कहां से आयी वह जड़वत् खड़ा रह गया। तामीला भी बावर्चीख़ाने की खिड़की से सिर निकालकर ध्यान से सुनने लगी। लेकिन सन्नाटा छाया था। तामीला चूल्हे के पास लौटकर फिर खटर-पटर करने लगी, पर जमशेद फ़ौरन सिर पर पांव रखकर टेकरी की तरफ़ भागा। उसने जंगली बेर के झुरमुट के पास पहुंचकर टहनियां हटाकर देखा और अवाक् रह गयाः सूरतजान पिछले पैरों के बल बेर की डाल से लटके क़ाराबाय के पास खड़ा हुआ था। बिल्ला हिल-डुल नहीं रहा था। उसके पूरे खुले मुंह में से ख़ून टपक रहा था। कभी ख़ूबसूरत लगनेवाली उसकी खाल मिट्टी में सनी हुई थी...

कहीं से सनोबर तूफ़ान की तरह आ पहुंची, अपनी छाती पर सूरतजान के कंधों पर घूंसे मारते हुए आंसुओं से रुंधी आवाज़ में चिल्लाने लगीः

"जल्लाद! तूने इसका यह क्या कर डाला! जल्लाद!..."

सूरतजान का चेहरा फक था, वह हाथ हिला रहा था, मानो उसे ख़ुद भी हैरानी हो रही हो कि यह सब कैसे हो गया ...

जमशेद ने तामीला को उनकी तरफ़ आते हुए देखा। उसके पीछे-पीछे थोड़ा लंगड़ाते हुए शामुराद चाचा चल रहे थे। सूरतजान सहज प्रवृत्ति से अपनी चिपचिपी हथेलियां पतलून पर पोंछ रहा था। सबको एक दूसरे के सामने कष्टकर लग रहा था।

शामुराद चाचा ने खांसकर सिर पर टोपी ठीक की और ख़ोखली आवाज़ में बोलेः

"यह आपने क्या किया, डाक्टर साहब?"

सूरतजान ने कंधे उचका दियेः

"करने को और रहा ही क्या था?.. रोज़ाना कभी एक ख़रगोश के बच्चे को खा जाता था, कभी दो को ... उसके अलावा ..."

"झूठ है!" सनोबर चिल्ला उठी और हाथों से मुंह ढांपकर पहले से भी ज़ोर से रोने लगी।

"तुमने नहीं देखा, सनोबरख़ोन, पर मैंने ख़ुद..." सूरतजान ने कांपती उंगलियां चेहरे पर फेरीं, मानो मकड़ी का जाला हटा रहा हो और शामुराद चाचा की तरफ़ आंखें उठाकर देखा। "मेरी समझ में नहीं आता ... समझ में नहीं आता मैंने ऐसा क्यों किया। भाड़ में जायें सारे ख़रगोश! मुझे एक की भी ज़रूरत नहीं! उन्हें अपने घर उठा ले जाइये! मेहरबानी करके ले जाइये!" वह याचनापूर्ण फटे स्वर में बोल रहा था।

शामुराद चाचा ने टोपी छुई और सोच में डूबे हुए कहाः

"शुक्रिया, भाई। हम किसान हैं। ख़रगोश बोये बीजों को भी नुक़सान पहुंचाते हैं और रोपे पौधों को भी।"

दोपहर बाद सूरतजान तिरपाल से ढका हुआ एक ट्रक लेकर आ गया। ड्राइवर के साथ मिलकर उसने सारे ख़रगोशों को पकड़ लिया और उन्हें पेटियों में बंद करके गाड़ी पर लाद दिया। जमशेद को भाई से बात करने का साहस नहीं हो रहा था। वह उनकी मदद करना चाहता था, पर सूरतजान ने गुस्से में कह दिया था कि वह जाकर अपना काम करे। लेकिन अब उसे करने को रह क्या गया था? कोई काम नहीं रहा था। जल्दी ही छुट्टियां भी ख़त्म होने जा रही थीं।

गाड़ी को रवाना करने के बाद सूरतजान शाम तक टेकरी पर काम करता रहा। उसने खूंटियां उखाड़ी, तार-जाली को लपेटा, ख़रगोशों द्वारा खोदी ज़मीन को समतल किया। और जमशेद थोड़ी दूर छाया में बैठा थके हुए और झुकी कमरवाले बूढ़े-से लगनेवाले भाई को सहानुभूति की दृष्टि से देखता रहा।

घर वे काफ़ी देर से पहुंचे। सूरतजान किसी तरह पैर घिसटता चल रहा था। तामीला भी सुबह की गयी हुई अभी-अभी लौटी थी। जमशेद ने उसे भाई से कहते सुना:

"मैंने इस्तीफ़ा दे दिया। कल जा रही हूं।"

सूरतजान ने आपत्ति की, पर तामीला ने झल्लाकर उसे टोक दिया:

"नहीं, नहीं, मैं एक भी दिन और नहीं रुकूंगी। लोगों के सामने शर्म आती है।"

तामीला सुबह मुंह अंधेरे चली गयी। जमशेद की नींद काफ़ी पहले खुल चुकी थी। सूरतजान तामीला को स्टेशन पर छोड़ने जाना चाहता था, पर वह नहीं मानी और अकेली ही एक छोटा सूटकेस उठाकर चली गयी।

वे भी दो दिन बाद वहां से रवाना हो गये।

सारा सामान ट्रक पर लादने के बाद दोनों भाई ड्योढ़ी की सीढ़ी पर बैठे और उन्होंने अंतिम बार अहाते में नज़र दौड़ाई। वे इतने उदास हो गये थे कि फूट-फूटकर रोने को दिल करता था। तभी सनोबर वहां आ पहुंची। भाइयों को उसे देखकर ख़ुशी हुई। लड़की ने कुंज के पास रुककर जमशेद को हाथ के इशारे से अपने पास बुलाया। वह उसके पास गया। सनोबर हाथों में बाबूना का तना मसल रही थी। उसने अपने पैरों में नज़रें गड़ाये धीरे से कहा:

"तुम्हारी छुट्टियां तो अभी ख़त्म नहीं हुई हैं, जमशेद ... नहीं जाओ तो..." वे मौन हो गये।

"और अगर जा रहे हो, तो फिर आना, ठीक है? मुझे ... हमें मत भुलाना, जमशेद।" आंसू की एक मोटी बूंद उसके गाल पर से ढुलककर

नंगे पैर के पास गिरी। सनोबर ने यह छिपाने की कोशिश करते हुए कि वह रो रही है उस पर पैर रख दिया। और जमशेद ने, शायद पहली बार, सोचा कि वह बिलकुल भी लड़ाके लड़के जैसी नहीं है, और वह अब शायद फिर कभी उसे चुलबुली नहीं कहेगा।

सूरतजान ट्रक पर पीछे से चढ़ गया, पर जमशेद, बुत की तरह, रंग उड़ी छींट का कुर्ता पहने नंगे पैरोंवाली लड़की के सामने खड़ा ही रहा। उसे अब जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं हो रही थी। लेकिन उसे पूरा विश्वास था कि भाई को ऐसे समय में छोड़ना, जब कि वह कष्ट में है, शायद जीवन में इतना कष्ट उसने कभी नहीं भोगा होगा, उसके लिए अनुचित होगा, कहना चाहिए, विश्वासघात होगा। जमशेद ने बड़ी मुश्किल से गले में उठती रुलाई को रोका, जिसने उसे एक भी शब्द नहीं बोलने दिया, और झटके से मुड़कर ट्रक की तरफ़ लपका।

वह बेतरतीबी से रखी पोटलियों के ऊपर चढ़ गया। वहां से तालाब भी दिखाई दे रहा था, लक़लक़ों के घोसलेवाला रुपहला पोपलार वृक्ष भी और घास का मैदान भी, जिसमें लड़के बेफ़िक्री से हंसी-ख़ुशी खेल रहे थे। यह सोच-सोचकर उसका दिल दुख रहा था कि इन लक़लक़ों को, जिन्हें लोग न जाने क्यों सुख का पंछी कहते हैं, ज़मीन फोड़कर निकलनेवाले इस चश्मे को, सड़क के किनारे खड़ी इस लड़की को, जिसकी आंखों में आंसू शायद अभी भी डबडबा रहे हैं, वह शायद फिर कभी नहीं देख सकेगा ...

पिरिमक़ुल क़ादिरोव

(जन्म– 1928-2010)

पिरिमकुल कादिरोव गद्य-लेखक और साहित्यज्ञ हैं। वह सामूहिक फ़ार्म में, सड़क निर्माण में तथा बेगावात धातु-कर्म कारख़ाने में काम कर चुके हैं। महान् देशभक्तिपूर्ण युद्ध के बाद उन्होंने ताशक़न्द राजकीय विश्वविद्यालय के प्राच्यविधा संकाय में शिक्षा प्राप्त की। वह भाषा विज्ञान के केंडीडेट हैं। आजकल वह उज़्बेक सोवियत समाजवादी जनतंत्र की विज्ञान अकादमी के भाषा व साहित्य संस्थान में वरिष्ठ विज्ञानकर्मी हैं।

पिरिमक़ुल क़ादिरोव की कहानियाँ व लेख पत्र-पत्रिकाओं में युद्ध के पश्चात् प्रकाशित होने लगे। सन् 1950 में उनकी प्रथम पुस्तक "विद्यार्थी" प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने युवा पीढ़ी का चित्रण किया। उन्हें उपन्यासकार के रूप में ख्याति उनके उपन्यास "तीन जड़ें" से प्राप्त हुई, जिसका उनके लघु-उपन्यास "यह ताशक़न्द की बात है" और ऐतिहासिक उपन्यास "बाबर" के समान सोवियत संघ की अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। पिरिमकुल क़ादिरोव कई फ़िल्मों की पट-कथाएँ भी लिख चुके हैं।

आशा

युद्ध में वीर-गति प्राप्त सैनिकों की
पतिव्रता पत्नियों को सादर समर्पित
लेखक

रात को कोई दो बजे किसी ने फाटक खटखटाया। बरामदे में गहरी नींद सोये हुए अलीशेर को शुरू में दस्तक सुनाई नहीं दी लेकिन जब ज़ोर से खटखटाया गया, तो किवाड़ चरमराता हुआ खुला और इक़बाल आपा कमरे से बरामदे में निकलीं। अलीशेर तब तक जाग चुका था, उसने उचककर बिस्तर से उठकर अंधेरे में जल्दी-जल्दी कपड़े पहनते हुए आवाज़ दी:

"अभी आया! अभी आया!"

इक़बाल आपा घबराहट छिपाने की कोशिश करती हुई धीरे से बोलीं:

"जल्दी करो, बेटा, शायद तुम्हारे अब्बा हों!"

"कौन, आपने क्या कहा?" बेटे ने उनींदे स्वर में पूछा।

"अब्बा!"

"अजीब हैं आप भी, मां!" उसने कहा और भागता हुआ बरामदे की सीढ़ियों से उतरकर फाटक की तरफ़ गया।

अलीशेर के पिता उमरजान युद्ध में लापता हो गये थे और इस बात को तीस वर्ष हो चुके थे।

इक़बाल आपा दुनिया में मृत्यु सूचना से सबसे ज़्यादा डरती थीं। उन्हें लगता था कि मरने की ख़बर पाने से लापता हुए आदमी के लौटने की आशा करना, उसका इंतज़ार करना बेहतर है। उन्हें विश्वास था कि एक न एक दिन उनका पति लौट आयेगा। और हर बार जैसे ही कोई दस्तक देता, वह घबराकर फाटक की तरफ़ देखने लगतीं।

बचपन में अलीशेर भी विश्वास करता था कि उसके पिता लौट आयेंगे। वह भी अधीरता से फाटक पर उनकी प्रतीक्षा करता रहता था। लेकिन उम्र के साथ-साथ उसका यह विश्वास धीरे-धीरे जाता रहा। उसे अब इस बात में संदेह नहीं रहा था कि उसके पिता मारे जा चुके हैं। अगर वह ज़िंदा होते, तो क्या युद्ध के बाद बीते तीस वर्षों में अपनी प्यारी पत्नी और अपने बच्चों के पास लौट नहीं आते!?.. अगर वह ज़िंदा होते और दुनिया के दूसरे छोर पर भी रह रहे होते, तो क्या उनकी ज़िंदगी में दिलचस्पी दिखाये बग़ैर रह सकते थे!?

इक़बाल आपा बच्चों को तसल्ली दिलाते हुए अपने को भी ढाढ़स देतीं:

"लड़ाई में क्या नहीं होता। हो सकता है, उन्हें घायल होने पर क़ैद करके जर्मनी ले गये हों। और वह, इस डर से कि हमें कहीं तकलीफ़ न हो, लौटकर नहीं आ रहे हैं, चुपचाप हमसे दूर रह रहे हैं। फिर वह कोई ऐसा काम करेंगे, जिससे दूसरों को उन पर विश्वास हो जाये, तब लौट आयेंगे!"

इन अटकलों से अलीशेर के मन में बहुत ही पेचीदा और उलझे हुए विचार उत्पन्न होते थे। वह निःसंदेह समझता था कि उसके पिता मारे जा चुके हैं और इसीलिए अपने आपको यह सिद्ध कर दिखाने की कोशिश करता था कि उसके पिता ने युद्ध-भूमि में वीर-गति पायी है। यह मालूम पड़ने पर कि मास्को में एक विशेष कार्यालय है, जो युद्ध में लापता हुए और मारे गये लोगों का पता लगाने का काम करता है, अलीशेर ने उसे एक पत्र लिखा, पिता के फ़ोटो और उनके अंतिम पत्रों की प्रतिलिपियाँ भेजीं। शीघ्र ही मास्को से उत्तर आया कि जिस दस्ते में उमरजान रहीमोव

थे, उसके अधिकांश सैनिक पश्चिमी उक्राइन में तेर्नोपोल की रक्षा करते हुए मारे गये। शायद उसके पिता भी उस युद्ध में मारे गये, लेकिन इसकी पुष्टि करनेवाले दस्तावेज़ नहीं रहे, क्योंकि मुक्त किये जाने के बाद तेर्नोपोल पर कुछ समय के लिए फिर शत्रु का क़ब्ज़ा हो गया था और बहुत-से अभिलेखागार नष्ट हो गये थे।

लेकिन अगर दस्तावेज़ नहीं बच सके, तो कुछ प्रत्यक्षदर्शी तो जीवित होंगे। अलीशेर ने अपने पिता के बारे में तेर्नोपोल के ज़िला सैनिक कम्मिसार कार्यालय और पथअन्वेषक पायोनियरों को लिखा। अपने एक पत्र में पायोनियरों ने उमरजान रहीमोव के किसी ऐसे संबंधी या परिचित को तेर्नोपोल भेजने का अनुरोध किया, जिसे उनका चेहरा-मोहरा भली-भांति याद हो। आख़िर कौन जाये? इक़बाल आपा फ़ैक्टरी में तीस वर्ष काम करने के बाद पेंशन पर जा चुकी थी। उनका स्वास्थ्य भी अच्छा न था – पिछले कुछ वर्षों से वह मधुमेह और उच्च रक्तचाप से पीड़ित थीं। ऐसी हालत में उनका लंबी यात्रा पर जाना निरर्थक था।

"मैं ख़ुद जाऊँगा," अलीशेर ने कहा। लेकिन बहन ने विरोध किया।

"तुम्हें तो अब्बा की बिलकुल भी याद नहीं है। तब तुम दूध पीते और बिलकुल नासमझ बच्चे थे। तुमसे उनका नाक-नक़्शा पूछा जायेगा, तो तुम क्या बताओगे? मुझे अब्बा की अच्छी तरह याद है। मेरे ख़याल से मुझे ही जाना चाहिए।"

महफ़ूज़ा को तेर्नोपोल गये एक सप्ताह हो चुका था। इसलिए जब फाटक पर दस्तक हुई, तो अलीशेर ने यही सोचाः "महफ़ूज़ा लौट आयी है!"

फाटक के सामने तंग गलियारे में उसकी सफ़ेद "ज़पोरोझेत्स" कार खड़ी थी। दीवार और कार के बीच से आड़ा होकर निकलकर अलीशेर ने बड़ी मुश्किल से बिजली का बटन टटोला।

"तार है!" फाटक के उस ओर से डाकिये की भारी-आवाज़ आयी।

फाटक का एक पल्ला खोलकर अलीशेर ने रोशनी में रसीद पर हस्ताक्षर किये। इस बीच इक़बाल आपा सिर पर रूमाल डालकर बरामदे

से उतर आयीं। अलीशेर ने बड़ी अधीरता से तार को खोला। "अब्बा मिल गये। कीव रवानगी शाम की फ़्लाइट। महफ़ूज़ा।"

'मिल गये" पढ़कर वह उत्तेजित हो उठा और माँ की तरफ़ मुड़कर मुस्करा उठा।

"बहन का है!" उसके मुंह से केवल इतना निकला।

"क्या लिखा है? अब्बा को ढूंढ़ लिया उसने?"

"लगता है ढूंढ़ लिया।"

"हाय, अल्लाह! कहाँ भटक रहे हैं वह? और अभी तक हमारे पास क्यों नहीं आये!?"

इक़बाल आपा ऐसे बोल रही थीं, मानो पति जीवित मिल गया हो। अलीशेर उनकी ऐसी मनःस्थिति भाँपकर चिंतित हो उठा। क्या महफ़ूज़ा ने अब्बा की क़ब्र का पता लगा लिया? उसे और बहन को कोई संदेह नहीं रहा था कि उनके पिता मारे जा चुके हैं, लेकिन वे माँ को परेशान न करने की कोशिश में उन्हें कुछ नहीं कहते थे। भला कोई जिंदा आदमी तेर्नोपोल में इतने दिन चुप बैठा रह सकता था? लेकिन माँ को समझाना मुश्किल था। उन्हें विश्वास हो गया कि वह मिल गये हैं।

"माँ, आपको फ़ौरन ही विश्वास हो गया?"

"क्यों न हो?"

"ख़ुद ही सोचिये...बहन आयेगी और सारी बात बतायेगी।"

"वह कब पहुँचेगी?"

"रात को तीन बजे। कितने बजे हैं?... चालीस मिनट में। मुझे अब रवाना हो जाना चाहिए।"

अलीशेर की पत्नी जाग गयी और वह भी आंगन में उतर आयी। अलीशेर ने गाड़ी में बैठकर उसे सावधानीपूर्वक पीछे चलाकर फाटक से बाहर निकाल लिया। इक़बाल आपा बेटे व बहू को हवाई अड्डे के लिए रवाना करके बरामदे में लौट आयीं। बरामदे में उनके तीन पोते नींद में गहरी सांसें लेते हुए सो रहे थे। उन्होंने आसमान की तरफ़ देखा—एक भी बादल न था, केवल चाँद अकेला तैर रहा था।

इक़बाल आपा अपने कमरे में गयीं। उन्होंने थोड़ी देर खड़े रहकर कुछ सोचा और कोने में रखे लोहे के संदूक़ के पास जाकर उसके ऊपर तह करके जमायी हुई रजाइयों को उठा-उठाकर फ़र्श पर रखने लगीं। फिर ताक़ से चाबी उठाकर उसे ताले में लगाकर कई बार घुमाया, ढक्कन थोड़ा उठाते ही उसमें से लौंग और नैफ़्थेलीन की जानी-पहचानी गंध आयी। उनके पति उमरजान को लौंग की सुगंध बहुत पसंद थी। मुँह से ख़ुशबू आती रहे, इसलिए वह अकसर लौंग मुँह में रखते थे। यही कारण था कि इक़बाल आपा ने उनके संदूक़ में संभालकर रखे सारे कपड़ों पर ऊपर से लौंग डाल दी थी। वह उनके मोर्चे से आये पत्र भी उसी में रखती थीं।

संदूक़ में उनका टसर का पीला सूट, कढ़े हुए कालरवाली उक्राइनी क़मीज़ और बछड़े के चमड़े के ऊँचे बूट भी रखे थे। अपने मोर्चे से भेजे पत्रों में वह लिखा करते थे : "तुम्हें दो बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करने में बहुत मुश्किल होगी। अपनी और बच्चों की सेहत का ख़याल रखने में कोई कसर मत रहने देना। अगर ज़रूरत पड़े, तो मेरे कपड़े बेचकर बच्चों के लिए खाने का सामान ख़रीद लेना। हम ज़िंदा रहे, तो सामान फिर हो जायेगा। सबसे ज़्यादा अहम बात है – अपना और बच्चों का ख़याल रखना।" युद्ध के दौरान उन्होंने अपनी पोशाकें, शादी में चढाये गये ज़ेवर बेच दिये थे, पर पति के कपड़े संभालकर रखे रहीं – वह आयेंगे, तब पहनेंगे। साल में एक बार वह उन्हें संदूक़ से निकालकर उन्हें आंगन में लटकाकर हवा देती थीं और फिर करीने से तह करके फिर संदूक़ में रख देती थीं। जब उनका बेटा अलीशेर बड़ा हुआ, तो वैसे सूटों और क़मीजों का फ़ैशन नहीं रहा था। अब अलीशेर को, जो वास्तुकार हो गया, पिता के बछड़े के चमड़े के बूट पहनने को मजबूर नहीं किया जा सकता था। आख़िर आजकल के नौजवान ऊंचे बूट क्यों नहीं पहनते हैं? उमरजान अका अध्यापक थे, स्कूल में वनस्पति-शास्त्र पढ़ाया करते थे। और वह हमेशा ऊंचे बूट पहनते थे। उन्हें पालिश करके ऐसा चमकाते थे कि आंखें चौंधिया जायें।

इसीलिए इक़बाल आपा उनके कपड़े संदूक़ में संभालकर रखे हुए थीं – उनके उमरजान आयेंगे और बड़ी ख़ुशी से, पहले की तरह, ऊंचे बूट पहना करेंगे। उनका फ़ैशन नहीं रहा तो क्या बात है!"

संदूक़ में सबसे नीचे एक बांसुरी भी रखी थी। क़ाशग़ार के नरकुल की बनी, चांदी से सजी और फ़ीरोज़ा जड़ी इस बांसुरी पर पति को गर्व था। उमरजान पेशेवर संगीतकार नहीं थे। उन्हें बस फ़ुरसत के क्षणों में बांसुरी होंठों से लगाकर उससे मधुर, सुरीले स्वर निकालना अच्छा लगता था। उन धुनों के नाम क्या थे, वह नहीं जानती थीं, पर पति का बांसुरी बजाना उन्हें अच्छा लगता था। ऐसे क्षणों में वह बांसुरी के जादूई सुरों से सम्मोहित हुई सब कुछ भूल जाती थीं। इस समय भी बांसुरी पर नज़र पड़ते ही उनके कानों में जानी-पहचानी धुन गूंजने लगी थी। वे स्वर कहीं दिल की गहराईयों में से आ रहे थे...

जब उनका विवाह हुआ, वह तेईस वर्ष के थे – उनकी स्मृति में वह वैसे ही जवान और सुंदर रह गये थे। अब वह उनकी किसी और रूप में कल्पना भी नहीं कर सकती थीं।

वह संदूक़ सदा सुखद स्मृतियाँ जगाता था। वे अद्‌भुत क्षण, जो सदा के लिए न जाने कहाँ चले गये थे, उन्हें लगता था जैसे वे अब ऊपर से नैफ़्थलीन डाले हुए कपड़ों की तहों के बीच छिपे हुए हैं।

हालांकि इक़बाल आपा अब पेंशन पर थीं, पोतों को पाल-पोस रही थीं, लेकिन अपने हृदय में युवा नारी की कोमल भावनाएँ वह अभी भी संजोये थीं। उन्हें इच्छा होती थी कि कम-से-कम पल भर के लिए ही वह अपने उस बीते निर्मल युग में पहुँच जायें, जब वह बीस बरस की युवती थीं, ताकि एक बार फिर पति के साथ अपने उस जीवन को दुबारा जी सकें। केवल उस स्वप्न को साकार करने के लिए उनके उमरजान को लौट आना चाहिए। और अगर वह अभी अपने बच्चों के साथ घर में आ गये तो! महफ़ूज़ा ने लिखा जो है "मिल गये"। अगर ऐसा न होता, तो भला वह ऐसा लिखती?

इतने वर्षों से इक़बाल आपा के हृदय में संजोयी हुई आशा अब विश्वास में बदल चुकी थी। उन्होंने बिजली की इस्तरी लगाई और पति के कोट-पतलून पर लोहा करने लगीं ...

"ज़पोरोझेत्स" के इंजन की घर-घर जब फाटक के बाहर से सुनाई दी, उजाला होने लगा था। इक़बाल आपा सीढ़ी से जल्दी-जल्दी नीचे उतरीं। उनके सामने से महफ़ूज़ा छोटे फाटक से अंदर घुसी। बेटी को गले लगाकर चूमते हुए इक़बाल आपा को नम गालों का स्पर्श महसूस हुआ और दिल अनिष्ट की आशंका से धक से रह गया।

"सफ़र कैसा रहा, बिटिया? अब्बा मिले?!"

"हाँ, माँ, मैंने ढूँढ लिया..."

अलीशेर गाड़ी गैराज में रखकर उनके पास आ गया।

"चलिये, अंदर चलते हैं, वहीं बात करेंगे।"

इक़बाल आपा ने देखा कि बेटा कुछ शांत और गंभीर हो गया है।

बहन ने हवाई अड्डे से आते समय रास्ते में भाई को सब बता दिया था ... जब तेर्नोपोल पर देशद्रोहियों के कारण एक बार फिर फ़ासिस्टों का क़ब्ज़ा हो गया, तो उमरजान ने अपने दस्ते के साथ एक रिहायशी घर में मोर्चा जमा लिया और आख़िरी गोली तक लड़ते रहे। फ़ासिस्टों ने उनके ऊपर स्वचालित टैंक छोड़ दिया और उसने उस मकान को चकनाचूर कर डाला। तेर्नोपोल की मुक्ति के बाद सैनिकों के अवशेष निकालकर सामूहिक क़ब्र में दफ़ना दिये गये। उनमें से अधिकांश को पहचान पाना असंभव था। केवल एक बालक को, जो उस घर में रहता था, दुरस्थ उज़्बेकिस्तान के क़िस्से सुनानेवाले चाचा की अच्छी तरह याद थी। अब वह लड़का पैंतालीस वर्ष का हो चुका है और अध्यापक है। अलीशेर का पत्र मिलने पर जब तरुण पथअन्वेषकों ने उसके पिता की खोज शुरू की, तब उनकी भेंट उस अध्यापक से हो गयी।

तीखे नाक-नक़्शवाली सांवली महफ़ूज़ा पूरी तरह अपने पिता पर गयी थी। उस देखते ही अध्यापक को उमरजान अका की याद आ गयी। उसे

यह तक याद आ गया कि सैनिक उन्हें "उमर" के नाम से पुकारते थे। उसी शहर में बालक के माता-पिता भी रहते थे। उन्होंने सैनिक कमिस्सार के कार्यालय में जाकर बताया कि उमरजान रहीमोव कितनी वीरतापूर्वक लड़े थे और कैसे बाद में उन्हें सामूहिक क़ब्र में दफ़नाया था। लेकिन चूंकि तब उनकी शिनाख़्त नहीं हो पायी थी, इसलिए संगमरमर के स्तंभ पर उनका नाम नहीं लिखा गया था। महफ़ूज़ा ने तरुण पथअन्वेषकों के साथ मिलकर इस तथ्य की पुष्टि कर ली कि उसके पिता सामूहिक क़ब्र में ही दफ़नाये हुए हैं और उनका नाम भी संगमरमर की पटिया पर खोद दिया गया। अपने भाई को यह सब बताते हुए वह अपनी आंखों में भर आ रहे आंसुओं को बार-बार पोंछ रही थी। अलीशेर उसका ढाढ़स बंधाने की कोशिश कर रहा था।

"क्या करूं, अलीशेर, आँसू रोके नहीं रुकते। जब मैं तेर्नोपोल में बाहर निकलती थी, तो लोगों की नज़रों से अपने आँसू छिपाने के लिए आंखों पर काला चश्मा चढ़ा लेती थी।"

"लेकिन तुम सारी बातें माँ को मत बताना!"

"नहीं, नहीं बताऊँगी।"

माँ के साथ कमरे में घुसने पर खुला संदूक़, पिता के इस्तरी किये हुए कपड़े – पतलूनें, कोट, क़मीजें देखकर महफ़ूज़ा को अफ़सोस हुआ कि उसने तार में "मिल गये" लिखा। इक़बाल आपा बेटी से पूरा क़िस्सा सुनने का इंतज़ार करती अधीरता से उसकी तरफ़ देख रही थीं। अचानक महफ़ूज़ा माँ की छाती से चिपककर रो पड़ी।

"ख़ुदा आपको सलामत रखे, हिम्मत मत हारिये, माँ!"

इक़बाल आपा का चेहरा पीला पड़ गया, वह बेटी को बाँहों से निकलकर रुंधी आवाज़ में बोलीं : "क्या?... तुम्हारे अब्बा नहीं रहे?.."

"नहीं, वह हमारे लिए हमेशा अमर रहेंगे! वह अपनी आख़िरी सांस तक औरतों और बच्चों की, हमारी और तुम्हारी रक्षा करते हुए बहादुर की तरह लड़ते रहे।"

इक़बाल आपा ने निराशा से बेटी की तरफ़ देखा और बिलख उठीं:

"और मैं ... मैं क्या इसी तरह सारी ज़िंदगी बेवा रह जाऊंगी? तुमने मेरे बारे में भी सोचा?!"

उन्हें महसूस हुआ कि उनका गला सूख गया है और उन्हें चक्कर आने लगे हैं। महफ़ूज़ा ने माँ को तुरंत हाथों का सहारा देकर सोफ़े पर बिठा दिया।

"आप दिल छोटा मत कीजिये, मां! तसल्ली रखिये, अपने पर क़ाबू रखिये। आपको घबराना नहीं चाहिए!"

इक़बाल आपा ने पति की इस्तरी की हुई क़मीज़ पर नज़र डाली। अब इस कोई नहीं पहनेगा! और इन बूटों की भी, जिन्हें वह इतने बरस संभाले रखे रहीं, किसी को ज़रूरत नहीं पड़ेगी। और उनके उमरजान कभी अपनी बांसुरी नहीं बजायेंगे ... वह इन विचारों के मारे रो पड़ना चाहती थीं, पर आँसू न थे, उन्हें ग़म सुखा चुका था। उन्हें सांस लेने में मुश्किल होने लगी, लगा जैसे कोई उनका गला घोंट रहा है और उन्होंने कसकर सीना पकड़ लिया।

अलीशेर भागकर बावर्चीख़ाने से उनके लिए पानी ले आया। महफ़ूज़ा ने उन्हें पानी पिलाकर सोफ़े पर लिटा दिया।

अलीशेर की पत्नी डाक्टर थी। उसने तुरंत सास को दिल के दौरे का इंजेक्शन लगा दिया और नाश्ते से पहले इंसुलीन का इंजेक्शन लगा दिया।

इक़बाल आपा को चार दिन में होश आया।

"तुम्हें वहाँ अब्बा के फ़ोटो नहीं मिले?" उन्होंने महफ़ूज़ा से पूछा।

"नहीं, नहीं मिले।"

काफ़ी देर की चुप्पी के बाद उन्होंने फिर पूछाः

"तुम उनसे मिलीं, जिन्होंने उन्हें दफ़नाया था?"

"नहीं, माँ।"

अलीशेर समझ गया कि इस तरह के सवालों से माँ पति की मृत्यु में संदेह प्रकट करना चाहती हैं। निश्चय ही उनके दिल में फिर से आशा जाग उठी थी कि उनके उमरजान, जिनकी वह तीस बरस बाट जोहती

रहीं, अभी जीवित हैं। उनकी इस आशा में इतना प्रेम और असीम विश्वास था कि अलीशर को इच्छा हुई कि माँ का इस भावना में विश्वास सदा बना रहे। यह महान भावना उन लोगों के प्रति थी, जिन्होंने अपने जीवन का बलिदान करके हमारे लिए विजय प्राप्त की और हमें यह सुखी जीवन प्रदान किया।

"कौन जाने, क्या हो, माँ। ऐसे कितने लोग लौट आये, जिनके मरने की ख़बर आयी थी। मैं सोचता हूँ, अब्बा भी लौट आयेंगे।"

इन आशा जगानेवाले शब्दों से उनमें इतनी शक्ति और आत्मविश्वास आ गया कि वह सोफ़े से थोड़ी उठी और उनके चेहरे पर क्षीण मुस्कान व्याप्त हो गयी।

"हाय अल्लाह" वह बोलीं। "जिन दिनों हम फ़ैक्टरी में जवानों के लिए कपड़े सीती थीं, मेरी एक सहेली थी, तूफ़ानी कामगार। अख़बारों में उसके फ़ोटो छपा करते थे। उसे अपने घरवाले की मरने की ख़बर मिली। वह कितनो रोयी थी फूट-फूटकर, मातमी काले कपड़े पहनती रही। उसके बच्चे नही हुए थे ... लड़ाई के बाद उसने शादी कर ली। कहते हैं, कुछ साल बाद उसका घरवाला लौट आया...ओफ़, कितना रोयी थी वह, कितनी दुखी हुई थी..."

महफ़ूज़ा और अलीशेर ने फिर कभी माँ के सामने पिता की मृत्यु के बारे में बात नहीं की। इक़बाल आपा पूरे एक हफ़्ता बिस्तर से नहीं उठीं! बहू उनके इंजेक्शन लगाती रही, जब तक कि वह स्वस्थ होकर चलने-फिरने लायक न हो गयीं।

एक बार रात को फिर किसी ने फाटक पर दस्तक दी। इक़बाल आपा न धीरे से बेटे को जगा दिया।

"सुनो, बेटे। जाकर दरवाज़ा खोल दो, कहीं तुम्हारे अब्बा तो नही आये हैं!"

दस्तक पड़ासी ने दी थी। अलीशेर वापस आया और कोट पहनकर आंगन में उतर गया।

"अक़बर की बीवी के दर्द उठने शुरू हो गये हैं। वह उसे ज़च्चाख़ाना ले जाने को कह रहा है।"

इक़बाल आपा ने गहरी साँस लेकर शांत स्वर में कहा:

"ठीक है, बेटे, उसे जल्दी से ले जाओ।"

अलीशेर गाड़ी स्टार्ट करके सड़क पर ले आया। उसके मन में शांति थी, उसे भी लगता था कि उसके पिता आज नहीं तो कल ज़रूर ही आकर फाटक खटखटायेंगे।

नासिर फ़ाज़िलोव

(जन्म– 1929)

नासिर फ़ाज़िलोव गद्यकार हैं। उन्होंने ग्रामीण स्कूल में शिक्षा पायी, फ़ार्म में काम किया और स्कूल में व्यायाम-शिक्षक रहे। युद्ध के बाद हाई स्कूल पास करके उन्होंने ताशक़न्द राजकीय विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान संकाय में प्रवेश लिया। तत्पश्चात् कुछ पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक-मण्डलों में कार्य किया। नासिर फ़ाज़िलोव की पहली कहानियाँ सन् 1953 में प्रकाशित हुईं। इसके बाद उनके कहानियों व लघु-उपन्यासों के संग्रह "प्रवाह" (1962), "रोबिनसन" (1964), "चिड़िया के पंख" (1965), "प्रथम हिमपात के बारे में पत्र" (1970), "बूढ़े सुयूम का दोम्ब्रा" (1973), "सबसे गर्म महीना" (1976) आदि प्रकाशित हुए।

झुर्री

न जाने क्यों आज मुझे वह घटना याद हो आई? इतने साल हो गए बचपन की उस बात को। शायद राज़िक़बाय से आज की मुलाक़ात के कारण मुझे बचपन की वह घटना याद हो आई।

1942 की गर्मियों की बात है। हम साग़िन्दिक़ के साथ गधों पर सवार होकर शहर से लौट रहे थे। धरती तप रही थी। आसमान में सूर्य अग्नि-पुंज के समान धधक रहा था। और हमारी चांदों को झुलसा रहा था।

पीली धूलवाली सड़क सुनसान थी। चारों ओर सन्नाटा था। केवल हमारे गधों की टापें सुनाई दे रही थीं। गधे गाड़ियों के पहियों की लीक पर चलने की कोशिशें कर रहे थे, क्योंकि उन पर चलना आसान था, पर वे बार-बार लीक से उतर जाते थे और धूल में धँस जाते थे। फिर वे दोबारा गाड़ियों के पहियों की लीक पर चढ़ने की कोशिश करते थे। हवा धूल से भरी थी। हमारे कपड़े और मुँह भी धूल से सन गये थे। सड़क के किनारे पर कंटीली झाड़ियां भी धूल से इस तरह ढकी थीं कि वे कांटेदार तार की तरह लगती थीं।

हम चुपचाप चल रहे थे। हमारी निगाहें रेलवे-लाइन और दूर से आनेवाली रेलगाड़ी पर टिकी थीं। रेलगाड़ी अभी दूर थी और एक कीड़े की तरह रेंगती-सी लग रही थी। देखना था फाटक बंद होने तक हम रेलवे लाइन को पार कर सकते हैं कि नहीं। क्या पता हम जैसे ही रेलवे

लाइन के पास पहुंचें, हमारे सामने फाटक बंद हो जाए। मोड़ के पीछे से जहां से रेलगाड़ी आ रही थी, रेलवे इंजन की सीटी की लम्बी आवाज़ सुनाई दी। सीटी की आवाज़ में बड़ी उदासी-सी थीं, ख़ुशी की कोई झलक नहीं थी—यह मुझे अच्छी तरह याद है।

रेलवे इंजन बिलकुल नज़दीक आ पहुंचा। चढ़ाई पर कठिनाई से चढ़ते हुए वह फक-फक कर रहा था। रेलगाड़ी लाल रंग की थी। सभी डिब्बे लाल थे। इतनी सुंदर रेलगाड़ी देखकर हम मुस्करा उठे। रेलगाड़ी के डिब्बे हमारे पास से गुज़र रहे थे कि हमारी नज़र सफ़ेद पट्टियों पर पड़ी। खिड़कियों और डिब्बों के खुले दरवाज़ों—सब जगहों से वही सफ़ेद पट्टियां झांक रही थी। घायल। तो यह घायल जवानों की गाड़ी हैं। लाल डिब्बे हमारे सामने से गुज़र रहे थे।

एक जवान खिड़की से झांक रहा था। उसके सिर पर पट्टियां ऐसे बंधी थीं कि लगता था कि उसने पगड़ी पहन रखी हो। दूसरे के हाथ पर पट्टियां बंधी थीं। वह देर तक मुड़कर हमारी ओर देखता रहा। एक और जवान बैसाखियों का सहारा लेकर खड़ा था। उसके पास सफ़ेद चोग़ा पहने नर्स खड़ी थीं।

रेलगाड़ी बड़ी तेज़ी से हमारे सामने से गुज़र रही थी। उसके लाल डिब्बों की लम्बी धारा में असंख्य सफ़ेद पट्टियां दुख और उदासी की लपटों जैसी लग रही थीं।

कहीं दूर से रेलवे इंजन की सीटी सुनाई दी। फाटक कभी का खुल गया था, पर हम वहीं के वहीं खड़े थे।

"क्यों? क्या हुआ साग़िन्दिक़?" मैंने कहा और उसकी आंखें देखकर मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया, मेरा भी गला रूंध गया।

हम इसी तरह देर तक मौन खड़े रहे। फिर मेरे पीछे से उसकी स्नेह भरी आवाज़ सुनाई दीः

"और तुम क्यों खड़े हो? चलो! आज हमें जल्दी करनी है।"

हां, आज हमें जल्दी करनी थी। ऐसी जल्दी करनी थी जैसे भूखे भेड़िये हमारा पीछा कर रहे हों, चाहे गधे झाग से ढंक जाएं पर गांव जल्दी

पहुंचना था। हमें शीघ्रातिशीघ्र गांव पहुंचकर बड़ों के सामने अपना प्रस्ताव रखना था। मेरे पिता जी और साग़िन्दिक़ के दो भाई मोर्चे पर थे। वहां रक्तपात हो रहा था। जी चाहता था कि जल्दी ही गांव पहुंच कर अपनी योजना सबके सामने रख दें। पर हमें इन आलसी गधों पर इस धूल-भरी सड़क पर धीरे-धीरे चलना पड़ रहा था।

"च-लो ऽऽऽ! चल-लो ऽऽऽ!" चिल्लाकर और एड़ मारकर हम गधों को जल्दी चलने पर मजबूर करने की कोशिश कर रहे थे – "च-लो ऽऽऽ, आलसियो! जल्दी करो!" चाहे धूल उड़े, चाहे धूल से हमारा दम घुट जाये फिर भी हमें जल्दी करनी ही थी : बात यह थी कि हमने अपने सामूहिक फार्म में पैदा किये गए गेहूं को साइलो तक पहुंचाने का अच्छा उपाय सूझा था। गेहूं की ढुलाई के लिए सामूहिक फार्म में गाड़ियों की कमी थी। और हमें एक ऐसा उपाय सूझा था कि उसका कोई जवाब नहीं था। अरे, हमारे बड़े मान लें, तो हम भी दिखा दें कि हम लड़के क्या-क्या कर सकते हैं। जल्दी करो, हमारे प्यारे गधे! गधे भी कितने प्यारे जानवर होते हैं। इन्हीं को देखकर तो हमने अपनी योजना बनाई थी। "जल्दी करो, लम्बे कानोंवालो!" हमारा मुँह धूल से भर जाता, और हम थूकते हुए आगे बढ़ जाते। खुरों की टाप के साथ गधों के पेट में गड़गड़ हो रही थी।

सच बताऊं तो गेहूं की ढुलाई का उपाय साग़िन्दिक़ को सूझा था। हम शहर से कभी के निकल चुके थे। शायद आधा रास्ता तय कर लिया होगा। अचानक उसने बदले-बदले स्वर में कहाः

"देखो ... सामने देखो!"

मैंने देखा, पर कोई ख़ास बात नज़र नहीं आई। गधे पर सवार कोई आदमी आ रहा था। वह रुई-भरा चोग़ा और सिर पर नमदे की टोपी पहने था। उसके पीछे दो और गधे आ रहे थे, जिन पर ठसाठस-भरे बोरे लदे थे।

"इतनी गर्मी में ऐसे कपड़े पहने हैं मानो उत्तरी ध्रुव पर जा रहा हो," मैंने कहा।

"मेरा मतलब इससे नहीं," साग़िन्दिक़ हड़बड़ाकर बोला। "तुमने इसका क़ाफ़िला देखा?"

"तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है, तीन ही तो गधे हैं।"

"ये तो एक आदमी के हैं .. और यदि हम सारे गांव के गधों को जमा करें..."

"क्यों?! क्या गधों की प्रदर्शनी का आयोजन करने का इरादा है?"

"तू समझता नहीं, क्या?" उसन चीख़कर कहा, "इस प्रकार तो सामूहिक फ़ार्म का सारा गेहूं साइलो तक पहुंचाया जा सकता है।

"अरे, हां! मैं भी चिल्ला उठा। "और यह क़ाफ़िला हम ख़ुद शहर ले जाएंगे, यही बात है न?!"

"ज़रूर!"

"पर गांव के लोग क्या कहेंगे? हमारी हंसी तो नहीं उड़ाएंगे?"

"इसमें हंसी की क्या बात है?" साग़िन्दिक़ ने कहा, "हम तो मोर्चे की सहायता करना चाहते हैं।"

शेष रास्ता हमने अपनी योजना के बारे में सोचते हुए काटा। फिर हमें लाल रंग की यह रेलगाड़ी मिल गयी। जब वह चले गयी, तो हमने पाया कि हम फाटक के पास खड़े हैं, हालांकि रास्ता कभी से खुला है। तभी मैंने अपने दोस्त साग़िन्दिक़ की आंखों में आंसू देखे। उसने मुझसे यह छिपाने की कोशिश की, क्योंकि मर्दों को रोना शोभा नहीं देता। इसके बाद हमने किसी हंसी-वंसी के बारे में नहीं सोचा, बल्कि अपने गधों के नंगे पैरों पर एड़ मारते गए। अब चाहे सारी दुनिया हमारी हंसी उड़ाये हम अडिग रहेंगे।

खेतों से अभी-अभी गाहे गए गेहूं की तीखी ख़ुशबू आ रही थी। खलियान में गेहूं का पहाड़ीनुमा ढेर दूर से दिखाई दे रहा था। और चारों ओर लोग काम कर रहे थे। महिलाएं पूले बांध रही थीं। वे अपने सिर पर रूमाल इस तरह बांधे हुए थीं कि उनकी केवल आंखें ही दिखाई दे रही थीं। पूले बांध-बांधकर वे उसकी टालें बना रही थीं। और गांव के

स्कूली छात्र ज़मीन पर गिरी बालियां जमा कर रहे थे। गेहूं का एक भी दाना बेकार नहीं जाना चाहिए थाः आख़िर शहरों के भूखे लोगों, मोर्चे पर दुश्मन से लोहा लेनेवाले जवानों को रोटी चाहिए थी।

हम खलियान के पास पहुंचे तो इतने गन्दे, सर से पांव तक धूल से सने थे। शायद कोई भूत मालूम हो रहे थे। पर लोग अपने काम में इतना व्यस्त थे कि किसी ने आंख उठाकर भी हमारी ओर नहीं देखा। मैदान में हालिक़ बाबा का सबसे बड़ा पोता ग़नीशेर घेरे में घोड़े हांक रहा थाः अनाज कूट रहा था। एक-एक करके पूलों से भरी गाड़ियां आ रही थीं। हम अनाज के ढेर की ओर बढ़े, जहां हालिक़ बाबा काम कर रहे थे। वे यकतक* पहने थे जिसका रंग फीका पड़ गया था। सिर पर चौड़ा हैट था। मुंह धूल से सना था, पलकें गेहूं की सुनहरी बालियों की तरह लग रही थीं। वे बेलचे से गेहूं को ओसा रहे थे, लगता था मानो वे चप्पू से नाव खे रहे हैं।

उनका अभिवादन करके हम गधों से उतरे। हमें आशीर्वाद देकर वे अपने काम में लग गये। और कुछ नहीं बोले। उनका बेलचा ऊपर-नीचे चलता रहा। वे शायद सूर्यास्त तक इसी तरह काम करते रहते। मैंने और साग़िन्दिक़ ने एक दूसरे पर नज़र डाली। उसने हाथ फैलाकर यह संकेत किया कि समझ में नहीं आता क्या करूं। मुझे भी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय। इसलिए हम दोनों हालिक़ बाबा को काम करते देखते रहे। उनके बेलचे से साफ़ अनाज ढेर में गिर रहा था। और भूसा हवा के झोंकों के साथ उड़कर एक ओर जमा हो रहा था।

"बेटे," अचानक उन्होंने हमें संबोधित किया और रूमाल से अपना मुंह पोंछा। "तुम ज़रा इस ढेर के उस ओर जाओ!"

साग़िन्दिक़ ढेर की दूसरी ओर चला गया।

"क्या तुम वहां से मुझे देख सकते हो?" वृद्ध ने उससे पूछा।

"जी नहीं, कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है, बाबा!" साग़िन्दिक़ ने उत्तर दिया।

---

* यकतक – कुर्ते की तरह की क़मीज़।

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा," वृद्ध अपना पोपला मुँह खोलकर मुस्कराने लगा। "तो आज भी योजना से अधिक अनाज तैयार है। पर इसकी ढुलाई कैसे की जाये, कुछ समझ में नहीं आता है।"

तब हम दोनों ऊंची आवाज़ में बोल उठे। दोनों एक साथ बोलने लगे, पर हालिक़ बाबा ने हमें रोककर कहाः

"धीरे बोलो, बेटे! कुछ समझ में नहीं आ रहा है। कैसे गधे? गधों के क़ाफ़िले से क्या मतलब है? तुम्हें कहीं लू तो नहीं लगी है?!"

इसके बाद हमने अपनी बात फिर से शुरू की। बताया कि हम ने तीन गधों को हांक रहे आदमी को देखा, तो हमें अनाज की ढुलाई का रास्ता सूझ आया।

"अच्छा, यह बात है। मुझे आपकी योजना मंजूर है, बेटे।" यह कहकर उन्होंने सायबान के नीचे बैठे आदमी को आवाज़ दी, "ओ इंस्पेक्टर जवान! इधर आओ, बेटे!" फ़ौजी वर्दी पहने आदमी, जो उकड़ू बैठकर अपनी नोट-बुक में कुछ लिख रहा था, खड़ा हो गया और धीरे-धीरे हमारी ओर आया। उसकी मूंछें अजीब-सी थीं। लगता था कि उसकी नाक के नीचे गुबरैला बैठा है।

"क्या बात है, बाबा?" अनाज वसूली के इंस्पेक्टर ने हमारी ओर नज़र डाले बिना हालिक़ बाबा से पूछा।

"बात यह है, बेटे," हालिक़ बाबा ने उन्हें हमारी योजना ठीक से समझायी। सुनकर इंस्पेक्टर मुस्करा उठा और ऐसा लगा कि आधा गुबरैला उसकी नाक में घुस गया है।

"शाबाश!" उसने हमारे कंधे थपथपाकर कहा। "शाबाश, बच्चो! आज ही सामूहिक फ़ार्म के अध्यक्ष से बातचीत होगी, उसे ज़रूर ख़ुशी होगी।" बड़े हर्ष के साथ हाथ मलते हुए वसूली इंस्पेक्टर ने कहा। "बहुत अच्छा प्रस्ताव है। यदि हम पहले कोई बीस गधों का क़ाफ़िला भेजें..." क्षण भर सोचने के बाद वह बुदबुदाने लगा। "पचास-पचास किलो के बोरे हों, तो ... यह तो रोज़ एक-एक टन अनाज बनता है।

उसकी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा और फिर से मेरी व साग़िन्दिक़ की पीठ थपथपाते हुए उसने कहा, "शाबाश! रोज़ एक-एक टन! बड़े अक़्लमन्द हैं ये लड़के!"

हमें अपार ख़ुशी हुई। ऐसा लगा कि हम मोर्चे पर हों, लड़ाई जीत गए हों और कमांडर सबके सामने हमारी प्रशंसा कर रहा हो।

इस प्रकार साग़िन्दिक़ , आज़म, हालिक़ बाबा का पोता ग़नीशेर, राज़िक़बाय और मैं गधों के क़ाफ़िले के हंकवैये बन गये। शाम को हम बोरों में अनाज भरते। अगले दिन जब सुबह आसमान पर अंतिम तारे टिमटिमाते और क्षितिज पर बिल्लौर के टुकड़े की तरह शुक्र ग्रह जगमगाता, हम गांव से प्रस्थान करते। हरेक के पास पांच-पांच गधे होते। एक पर कुछ छोटा बोरा लादकर हम ख़ुद बैठ जाते थे और शेष गधों पर इतने बड़े बोरे लादते थे कि उनके कारण गधा मुश्किल से दिखाई देता था। शहर हमारे गांव से दूर था। चलते-चलते आपस में ख़ूब गपशप करते, कभी-कभी उंघने लगते और गधे से गिरते-गिरते बचते। यह अच्छा था कि राज़िक हमारे साथ रहता थाः उसके रहते कोई सो नहीं सकता था। वह लतीफ़े और क़िस्से-कहानियां सुनाता, बड़े हास्यजनक गीत गाता। कभी-कभी तो ऐसी बातें करता कि हंसते-हंसते हमारे पेट में बल पड़ जाते। बड़ा हंसोड़ लड़का था। इसीलिए हमने उसे अपने साथ रखा। डेयरी फ़ार्म के निदेशक का बेटा था। हमसे कुछ बड़ा, क़द भी उसका हमसे ऊंचा था। कहने का तात्पर्य यह है कि राज़िक़बाय बड़ा अच्छा लड़का था और चालाक भी।

हम गधों पर हिचकोले खाते चल रहे थे और राज़िक ऊंचे स्वर में गीत गा रहा था, जिसमें उसने अपनी तरफ़ से यह दोहा जोड़ दिया थाः

इन प्यारे गधों की बदौलत
मिलेंगे हम सबको बूट...

बड़ा अजीब दोहा थाः हम सब नंगे पैर शहर जा रहे थे। बूट बाज़ार में अवश्य थे, पर हमारी माताएं ऐसी महंगी चीज़ें ख़रीदने में असमर्थ थीं।

हमारा क़ाफ़िला आगे बढ़ता जा रहा था। शहर के दामन में हमें इसी प्रकार के और क़ाफ़िले मिलेः हमारे इलाक़े के सभी सामूहिक फ़ार्मों को हमारा प्रस्ताव अच्छा लगा। हम संतुष्ट थे। जब साइलो से थोड़ी दूर हम उस पोस्टर के पास से गुज़रे, जिसमें सफ़ेद बालोंवाली महिला का चित्र था, जो पूछती थीः "तुमने दुश्मन को हराने के लिए क्या किया है?" तो हमें शर्म के मारे आंखें नीची नहीं करनी पड़ती थीं। पहले भी हम मोर्चे पर दुश्मन का मुक़ाबला करनेवालों की सहायता के लिए भरसक प्रयत्न करते थे और अब तो और भी!...

मैंने अपनी कहानी राज़िक़बाय से आज की बात से शुरू की, पर मुझे सन् उन्नीस सौ बयालिस की कड़ी गर्मियों की बात याद आ गई, जब हम बच्चों को सख़्त मेहनत करनी पड़ रही थी। हमें इस पर गर्व था कि हम बच्चे भी दुश्मन से अपनी जनता की लड़ाई में अपना योगदान दे रहे थे। पर राज़िक़बाय के संबंध में मुझे एक और बात याद आ गई...

एक दिन साइलो में अनाज लाकर हमने उसे तुलवाया, तो पाया कि कांटेवाले ने हमें नौ सौ अठारह किलो अनाज की रसीद दी है। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ, हमने दोबारा तौलने की मांग की : फिर वही नौ सौ अठारह किलो। यानी मोटे कांटेवाले ने हमें धोखा नहीं दिया था। तब बात क्या है? आख़िर हमने गांव में अनाज तोलकर गधों पर लादा थाः नौ सौ चालीस किलो था। अजीब बात है। बाईस किलो अनाज कहां ग़ायब हो गया?

अगली बार भी यही बात हुई। बड़ा आश्चर्य और दुख हुआ। जब हम साइलो के फाटक से निकले, तो हमने पाया कि राज़िक़ हमारे साथ नहीं है। न जाने वह कहां ग़ायब हो गया। यह क्या बला हैः एक तो अनाज की कमी और दूसरे – अपना साथी खो गया। हमने इधर-उधर देखा, आस-पास की गलियां छान मारीं, पर राज़िक़ कहीं नहीं मिला।

हम दम लेने के लिए बैठ गए। अब क्या किया जाय? हम सोचने लगे। इतने में देखते क्या है कि राज़िक़ चला आ रहा है। भला-चंगा। हमें ख़ुशी हुई। पर एक ही क्षण बाद हम सब उस पर टूट पड़ेः क्यों हमें

कुछ कहे बिना चला गया? हम उसके लिए बहुत परेशान थे। और अनाज की कमी के कारण भी।

"मुझे यहां अपना एक रिश्तेदार मिल गया था," राज़िक़ ने कहा। फिर चिंतित स्वर में उसने पूछाः "क्या फिर अनाज कम पड़ रहा है? न जाने क्या हो रहा है इस अनाज के साथ? कोई जादू का काम लगता है।"

अपने-अपने गधे पर बैठकर हम घर के लिए रवाना हुए। बाद में नदी के पास रुककर नहायेः बड़ी गर्मी थीं। हम कपड़े पहनकर अपने गधों पर बैठे ही थे कि राज़िक़बाय अपना पेट पकड़कर कराहने लगाः

"ओह, मां...ओह!"

"क्यों, क्या हो गया राज़िक़?" हम सब दौड़कर उसके पास आ गए।

"ख़ूबानी..."

"ख़ूबानी? क्या तुमने ख़ूबानी खाई थी? बताओ न?"

"हां, खायी थीं...ओह मरा, ओह दर्द...रिश्तेदार के यहां खायी थीं। रिश्तेदार ने खिलायी..."

हम उसे काठी से उतारने लगे ताकि घास पर कुछ लेटकर उसे कुछ होश आ जाय। पर राज़िक़बाय ने उतरना नहीं चाहा। कहने लगाः "अब पहले से ठीक हूं।" और ख़ुद हाथ से ख़रजीं ढकने लगा।

"क्या है इसमें? मगरमच्छ है? क्या छिपा रखा है तुमने वहां?" मैंने पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं है इसमें, रोटी का एक टुकड़ा है बस..."

उसकी मुखमुद्रा ऐसी थी कि हम हंस पड़े और क़हक़हा लगाते हुए उसे गधे से खींचने लगे।

"नहीं, नहीं, छोड़ दो मुझे, छोड़ दो..." वह चिल्ला उठा।

एकाएक सब चुप हो गए। ज़ीन एक तरफ़ को झुक गई और ज़मीन पर बूट गिर पड़े। फ़ौजी बूटों का एक जोड़ा। वह किसी कपड़े में लिपटा था, कपडा खुल गया और हम सबने बूटों के पास गेहूं के कुछ दाने देखे।

सन्नाटा छा गया। केवल राज़िक़ के नाक सुड़कने की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

"ये बूट कहां से आए?" साग़िन्दिक़ ने पूछा और राज़िक़ की ओर बढ़ा।

"रिश्तेदार..." उस चोर ने रुआंसा होकर कहा।

हमन उसे घेर लिया।

"आप लोगों को विश्वास नहीं है क्या? मैं तो बस..."

तब से हमारे क़ाफ़िले में लतीफ़े सुनानेवाला और हास्यजनक गीत गानेवाला कोई नहीं रहा। हमने राज़िक़बाय को शर्मिंदा करके अपने समूह से निकाल दिया। लगता था कि इसके बाद वह शर्म के मारे मर जाएगा। हमने इस घटना के बारे में किसी को नहीं बताया। हमारे लिए वह नहीं रहा, बस। पर वह तो चिकना घड़ा निकला। एक महीने बाद ही वह खलियान में चौकीदार बन गया। उसके बाप ने उसे वहां लगा दिया। यही नहीं, वह हम से बदला लेने की कोशिशें भी करने लगा। और बड़े नीच ढंग से।

एक दिन साग़िन्दिक की छोटी बहिन खेत में दिन भर के काम के बाद कुछ अनाज घर ले जा रही थी। ऐसा नियम था कि खेत में गिरी बालियां जमा करनवाले बच्चे जो अनाज जमा करते थे, उसका एक चौथाई घर ले जा सकते थे, तो उस चोर ने लड़की का अनाज छीन लिया और उसे थप्पड़ मारा।

हमारा धीरज छूट गया। हम सब मिलकर राज़िक़बाय को सबक़ सिखाने खलियान की ओर चल पड़े। उसने दूर से हमें देख लिया, भागकर कहीं गया, ज़ीन लाया और हड़बड़ाकर घोड़े पर ज़ीन कसने लगा।

हम दौड़कर उसके पास पहुंचे। वह उचककर घोड़े पर सवार हो गया। उसके पैरों में नए बूट थे।

मैं उसके बिलकुल नज़दीक था और जब उसने घोड़े पर सवार होने के लिए पैर उठाए, तो क़सम खाकर कहता हूँ, मैंने देखा कि उसके बूटों से गेहूं के दाने गिर रहे हैं।

"उतरो!" मैं चिल्ला उठा।

"किसलिए?" उसने भयभीत दृष्टि से चारों ओर देखा। वह समझ गया कि उसकी मदद करनेवाला कोई नहीं है।

"उतरो न! एक काम है।"

"काम है, तो बताओ..." राज़िक़बाय के चेहरे का रंग उतर गया।

"ओ, क्या बात है?" हालिक़ बाबा की आवाज़ सुनाई दी। पल भर बाद बेलचा लिए वे ख़ुद आ गए।

"यह तुम क्या कर रहे हो, बच्चो? क्यों लड़ रहे हो?" उन्होंने हांफते हुए पूछा और हमें राज़िक़बाय के पास से हटाने लगे। "बड़े हथछुटे हो तुम, लड़को..."

हमारे परिचित इंस्पेक्टर भी आ गए, जिन की मूंछें गुबरैले जैसी थीं।

"क्या बात है?" उन्होंने कठोरता के साथ पूछा।

"बात यह है, साथी इंस्पेक्टर," मैंने आगे बढ़कर कहा और राज़िक़बाय की ओर संकेत करके बतायाः "आप इससे कहिए कि यह अपने बूट उतारे।"

वे हैरान हो गएः

"बूट?! तुम्हें इसके बूटों की क्या ज़रूरत है?"

"बूटों की नहीं, बल्कि उस चीज़ की जो यह अपने बूटों में भरता है।"

"झूठ है, झूठ!" राज़िक़बाय चिल्ला उठा।

पर हम उस पर पिल पड़े। हमने उसे गिराकर उसके बूट उतार दिये। ज़मीन पर सुनहरे गेहूं के दो छोटे-छोटे ढेर बन गए। हालिक़ बाबा ने खा जानेवाली दृष्टि से राज़िक़ को घूरते हुए कहाः

"कई दिन से देख रहा हूं कि जब यह घर जाता है, तो इन बूटों को पहनकर बड़ी कठिनाई से चल पाता है। सदा घोड़े पर सवार होकर जाने

को उतावला रहता है। लोग ठीक कहते हैं कि ईमानदार के पग बड़े-बड़े, बेईमान के छोटे-छोटे होते हैं।" गुस्से से वृद्ध की दाढ़ी हिल उठी।

"बहुत चुराया है?" इंस्पेक्टर ने राज़िक़बाय से पूछा।

"ना-ना! केवल एक बार..." अपने आंसू चेहरे पर मलते हुए उसने जवाब दिया और पास खड़े अपने भाई की ओर संकेत करते हुए कहा: "कबीर गवाह है। इससे पूछिये।"

"चोर का भाई गिरहकट," पीछे से किसी ने ही-ही करते हुए कहा।

"जाओ यहां से!" साग़िन्दिक गरजकर बोला और खलियान में इकट्ठा सभी लोग चिल्ला उठे:

"जाओ! और कभी अनाज के पास फटकने की हिम्मत न करना!"

हालिक़ बाबा ने हमसे कहा:

"देखो, बच्चो! क्या-क्या होता है इस दुनिया में: वह तो एक खाते-पीते परिवार का लड़का है। उसका बाप डेयरी फ़ार्म का निदेशक है और तुम लोगों के पिता मोर्चे पर हैं। तुम ऐसे लोगों से सख़्ती से निबटो, नहीं तो वे बुरे आदमी बन जाएंगे। यदि गोश्त से कुछ बदबू आने लगे, तो उस पर नमक छिड़का जा सकता है। मगर यदि गोश्त में कीड़े पड़ गये हों, तो वह किसी काम का नहीं रहता है।

मैं राज़िक़बाय से अपनी मुलाक़ात के बारे में बतानेवाला था, किन्तु फिर पुरानी बातों की यादों में डूब गया।

तो बीस से भी अधिक साल बाद हमारी मुलाक़ात हुई। हम सड़क पर मिले। दोनों बहुत बदल चुके थे। फिर भी हमने एक दूसरे को पहचान लिया। वह बिन बुलाये मेरे घर भी आ गया। हम मेज़ पर आमने-सामने बैठकर बचपन, अपने गांव को याद कर रहे थे। राज़िक़बाय काफ़ी मोटा हो गया था, फिर भी उसका रंग-रूप ठीक था।

"तुम बहुत बदल गए, भई," उसने एकाएक मुझसे कहा। "माथे पर कैसी गहरी झुर्री है! खेत में हल चलाने पर जो लकीरें बनती हैं, वैसी ही लग रही है..."

मैंने उस पर नज़र डाली और अंततः समझ गया कि उसमें ऐसी क्या बात है, जिसने शुरू से ही मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया है : उसके चिकने चुपड़े चेहरे पर एक भी झुर्री नहीं थी। कैसे बिताया उसने अपना जीवन कि उसके चेहरे पर एक भी झुर्री नहीं है। क्या उन्नीस सौ बयालीस की तरह यह बाद में भी चालाकी करता रहा, कठिनाइयों से कन्नी काटता रहा? क्या इसने कोई मुसीबत नहीं देखी, किसी का दुख नहीं बांटा?

तो क्या इस सुन्दर भूमि पर जीवन ऐसे भी बिताया जा सकता है कि एक भी झुर्री न पड़े?

जॉनरीड अब्दुल्लाख़ानोव

(जन्म– 1929-2015)

जॉनरीद अब्दुल्लाख़ानोव गद्य-लेखक और निबंधकार हैं। उन्होंने पत्रकारिता की शिक्षा पायी। वह कई वर्षो तक उज़्बेक रेडियो व टेलीविजन प्रसारण समिति में कार्य कर चुके हैं। उनकी रचनाऐं सन् 1952 से प्रकाशित होने लगीं। उनके सुप्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं: "शादी में आइये", "अजीबोग़रीब लम्हे," "सुबह सवेरे का प्रदेश" और "गुलचेहरा"। उनके उपन्यास "राह" (1964), और "तूफ़ान" (1968) निर्माणकर्मियों के जीवन और श्रम को समर्पित हैं। जानरीड अब्दुल्लाख़ानेव को उनके उपन्यास "तूफ़ान" के लिए सोवियत संघ के श्रम-संघों की केन्द्रीय परिषद तथा सोवियत संघ के लेखक संघ द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में समकालीन श्रमिक वर्ग के बारे में सर्वश्रेष्ठ गद्य रचना का पुरस्कार दिया गया है। हाल ही में उन्होंने अपने उपन्यास "बारसा केल्मेस" का लेखन-कार्य सम्पन्न किया है।

गौरैया

"ऐ, देखो!" अब्दुल्ला ने पास में काम कर रहे हंसोड़ अमनताय की बग़ल में कोहनी मारी।

"हा-हा, फिर आ गयी वही! हाय मेरा दिल!.." अमनताय ख़ुशी के मारे उछल पड़ा। "शर्त लगाकर कह सकता हूं, उसे मुझसे प्यार हो गया है...ऐ, लड़की!" उसने ऊपर से ज़ोर से आवाज़ दी। "ज़रा, ऊपर आओ हमारे पास! ऐ, गौरैया..."

दूसरी मंज़िल पर, जहां फ़िटर सुबह से काम कर रहे थे, ख़ुशी छा गयी। नौजवान साथी एक दूसरे से होड़ करते हुए नाटे अमनताय को सलाहें देने लगे कि उसे अपरिचित युवती पर अच्छा असर डालने के लिए क्या-क्या करना चाहिए।

सातवीं की छात्रा-सी लगनेवाली वह अजीब लड़की क़िरमिज़ी जाकिट पहने कई दिनों से वहां चक्कर काट रही थी। कभी वह निर्माणाधीन मकानों की मंज़िलों पर चढ़ती, उतरती, कभी सरियों से बने ढांचों और इमारती लकड़ी के ढेरों, सब जगह रखे कंक्रीट के नलों के बीच से निकलती, कंक्रीट मिक्सर, आती-जाती गाड़ियों के शोर में घूमती और साथ ही नोटबुक में पेंसिल से कुछ लिखती जाती, ध्यान से कुछ देखती जाती।

फ़िटरों की ज़बानें तेज़ और नज़रें पैनी होती हैं। उनका ध्यान बेशक तुरंत उस पर गया, आख़िर वे यूँ ही तो दिन भर ऊंचाई पर काम नहीं

करते रहते हैं। लेकिन लड़की उनके हंसी-मज़ाक़ के जवाब में कुछ नहीं कह रही थी—जैसे उन बातों का उससे कोई वास्ता ही न हो...और अमनताय की भी उस पुकार का कोई जवाब नहीं मिला ...

"तेरी हालत पतली है," किसी ने चुटकी ली। "लगता है उसे भी तेरा क़द पसंद नहीं है।"

"ठीक कहा!" दूसरों ने हां में हां मिलायी। "नाटी लडकियों को छः फुटे नौजवान ही ज़्यादा पसंद आते हैं..."

"छिप जा, अमनताय!..."

"दूल्हे!..."

"अब छोड़ो भी, तुम..." अमनताय ने एक दस्ताने पर दूसरा मारते हुए खीसें निपोड़ीं। "पर फिर भी, भाइयो, वह यहां कर क्या रही है? नहीं, सच कह रहा हूं बताओ तो?"

"किसी समाचारपत्र से आयी है, इतना भी नहीं समझते क्या?"

"नहीं, मुझे तो दाल में कुछ काला नज़र आ रहा है," अमनताय ने आंखें सिकोड़कर दूर जाती क़िरमिज़ी आकृति पर नज़र रखते हुए कहा।

"फिर वही," फ़ोरमैन ताहिर अका निर्माण-स्थल पर न जाने अचानक कहां से आ धमके। "चलो, अपनी-अपनी जगह ..." उनकी आवाज़ में धमकी का पुट था। "बड़ी जल्दी खाने की छुट्टी कर ली...अब्दुल्ला, अमनताय!"

"जो हुक्म!" अमनताय ने फ़ोरमैन की नज़र चुराकर फ़ौजी ढंग से सलाम किया।

टोली के लोग झट से निर्माण-स्थल पर बिखर गयेः ताहिर अका को मज़ाक़ पसंद नहीं था।

अगले दिन मिली ख़बर ने सबको चौका दियाः वह लड़की मानक अध्ययन केंद्र से थी! यही नहीं, वह सामाजिक गुणवत्ता निरीक्षक का कार्य भी कर रही थी।

शुरू में इस ख़बर को किसी का बेवक़ूफ़ी-भरा मज़ाक़ समझा गया। लेकिन फ़ोरमैन ने कार्यालय से आकर इसकी पुष्टि कर दी: बात बिलकुल सच है, वह गौरैया जैसी लड़की गुणवत्ता निरीक्षक भी है और मानक निर्धारक भी...

खाने की छुट्टी में टोली के सदस्यों में बहस होने लगी:

"बुरे फंसे!" अमनताय ने भाषण झाड़ना शुरू किया। "हम बड़े नादान साबित हुए...लानत है हम पर। इंस्पेक्टर तक को नहीं पहचान पाये!.."

"पर दोषी कौन है इसका?" अब्दुल्ला उस पर बरस पड़ा "तुम्हीं ने हमारा दिमाग़ ख़राब कर दिया...अब वह सबक़ सिखा देगी हमें, देख लेना। बोनस से हाथ धोना पड़ेगा—इसमें तो शक ही नहीं है।"

"अरे, छोड़ो भी, क्या कहते हो!" फ़ोरमैन से न रहा जा सका। "आख़िर हम कामचोर तो हैं नहीं! कोटे से ज़्यादा काम पूरा करते हैं ... हल्ला मचा दिया, सचमुच..."

लेकिन यह कहते समय उसके लहजे में आत्मविश्वास था या नहीं, कहना मुश्किल था। सबने भांप लिया: फ़ोरमेन परेशान है, हालांकि यह छिपाने की कोशिश कर रहा है।

कहने का मतलब है, जब लड़की तशरीफ़ लायी, तो उसमें उनकी दिलचस्पी काफ़ी बढ़ चुकी थी।

लेकिन सब आश्चर्यजनक रूप से ठीक-ठाक रहा। युवती ने अपनी घनी बरौनियां फड़फड़ाकर लड़कों की तरफ़ एकटक देखा और संयत स्वर में कहा:

"सलाम-अलैकुम!"

"ओहो, कितने इज़्ज़त बढ़ायी है आपने हमारी!" अमनताय ख़ुशी से फूला न समाया। "आइये, आइये...अधिकारियों के आने पर हमें हमेशा ख़ुशी होती है," एक मिनट और, और वह उसके सामने घुटनों के बल बेठ जाता।

"लेकिन मैं कोई अधिकारी नहीं हूं," युवती ने कहा।

"आप भी क्या..." अमनताय ने विरोध किया।

"आप मेहरबानी करके अपना काम करते रहिये," उसने कहा, "मैं आपको परेशान नहीं करना चाहती...कामरेड फ़ोरमैन," उसने मौन खड़े सब देख रहे ताहिर अका से कहा, "आप मुझे काम की रफ़्तार नोट करने की इजाज़त दे सकते हैं?"

"ज़रूर, क्यों नहीं, बेटी," उन्होंने हड़बड़ाकर कहा। इसमें पूछने की बात ही क्या है! ज़रूर, नोट करो..."

"ऐ, संभलके!" अचानक ऊपर से आवाज़ आयी और साथ ही बिजली की घंटी घनघना उठी – निर्माण-स्थल पर क्रेन के जिब के साथ-साथ कंक्रीट का पैनल धीरे-धीरे नीचे आ रहा था।

लड़के अपनी-अपनी जगह दौड़ पड़े। उन्होंने पैनल को सावधानी से पकड़ा और एक दूसरे को आवाज़ें देते उसे संभालकर जोड़ने के स्थान पर उतार दिया। बेल्डरों ने जल्दी से अपने-अपने मास्क लगाये और एक-दो बार इलेक्ट्रोडों को पटरी के टुकड़े से छुआकर आज़माया–चारों ओर चिंगारियों के गुच्छे बिखरने लगे...

"वेल्ड करो!..." फ़ोरमैन चिल्लाया।

उधर निर्माण-स्थल के ऊपर अगला पैनल नीचे आ रहा था। युवती का किसी को ध्यान ही न रहा।

वह अपने कोने में खाने की छुट्टी तक बैठी रही, बीचे-बीच में घड़ी पर नज़र डालती नोटबुक में लिखती रही। उसने कई बार ताज़ा जोड़े नये पैनलों को भी जाकर देखा। टोली के सदस्यों को उसकी तरफ़ ध्यान देने की फ़ुरसत न थी। "बैठी रहे, जगह की कमी थोड़े ही है," फ़ोरमैन ने चलते-चलते कहा और उसके इन शब्दों को लड़की की उपस्थिति पर ध्यान न देने का आदेश मान लिया गया। कितने लोग आते-जाते रहते हैं निर्माण-स्थल पर? कुछ आते हैं, आंकड़े लिखते हैं और चलते बनते हैं। फ़िटरों को उनसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। फिर यह लड़की तो अभी नयी

है, निर्माण-कार्य की उसे कुछ समझ नहीं है। कुछ सीख ही लेने दिया जाये उसे...

यही तय हुआ। लेकिन एक दिन उसने काम पर आदतन देरी से आनेवाले अमनताय को चेतावनी दे दी। वह हक्का-बक्का रह गया। फिर उसने बात को मज़ाक़ में टालने की कोशिश कीः

"आपकी घड़ी तेज़ चल रही है, बहन... सूइयां आम रफ़्तार से तेज़ भाग रही हैं।"

"मेहरबानी करके मुझे फिर कभी बहन मत कहिये," उसने शांत पर दृढ़ स्वर में उतर दिया। "मेरा अपना नाम है। सनोबर। और कुलनाम भी है। और अगर..." उसका चेहरा लाल हो उठा," अगर आप फिर कभी देर से आये...तो मैं आपका बोनस रुकवाकर रहूंगी।"

"बाप रे बाप!" अमनताय पर जैसे बिजली गिरी, वह केवल इतना ही बुदबुदाया।

आगे और भी ज़्यादा घटनाऐं हुईं। मालूम पड़ा कि वह पैनलों के बीच में छूटी दरारों से ख़ुश नहीं है। उसका कहना था, वे मानक से तीन मिलीमीटर ज़्यादा चौड़ी है। और वेल्डिंग के जोड़ भी वैसे नहीं हैं जैसे वह चाहती हैं।

"तुम्हें कैसे पता कि जोड़ कैसे होने चाहिएं?" अब्दुल्ला से न रहा जा सका (वह झल्लाया हुआ मास्क उठाकर पसीन से तर चेहरा रूमाल से पोंछ रहा था, जब कि वह अपनी पंछी-से कोमल स्वर में उसे कुछ मिलीमीटरों के बारे में बता रही थी) "ऐ, लड़की, जवाब दे।"

"आपने ख़ुद ही तो मुझे सिखाया था," उसने चकित होकर कहा।

"मैंने?!" अब्दुल्ला गुर्राया।

"जी, हां। आपने भी। और अमनताय ने भी। याद है, आपने मुझे असली, सफ़ाई से वेल्ड किया जोड़ दिखाया था? आपने उसे 'उच्च कोटि का काम' बताया था। और आपका यह जोड़ उस 'कोटि' का बिलकुल नहीं है।"

"तो..." अब्दुल्ला को कोई जवाब नहीं सूझा। "यह तो...मुझे फ़ोरमैन से बात करनी पड़ेगी। जाने कैसे-कैसे लोग आ जाते हैं, काम नहीं करने देते!...ऐ, ताहिर अका!" फ़ोरमैन को देखकर उसने आवाज़ दी। "ज़रा, इधर आइये!"

यहीं असली मामले की शुरूआत हुई। फ़ोरमैन आया, दूसरे फ़िटर भी आये। सभी इसे मामले का निबटारा करने के लिए कब से उतावले थे। आख़िर यह लड़की हमसे चाहती क्या है?"

"सनोबरजान," फ़ोरमैन ने शांत स्वर में बात शुरू की। "अगर यह राज़ की बात नहीं है, तो हमें बताइयेः क्या अभी और कई दिनों तक आपका हमारे यहां काम नोट करने का इरादा है?"

"तो क्या," उसने चुनौती-भरे स्वर में पूछा। "आप मुझसे ऊब चुके हैं?"

"नहीं, यह बात नहीं है..." ताहिर अका होंठों ही होंठों में मुस्कराये। "उल्टे हमें तो आपको देखकर ख़ुशी होती है। लेकिन आप जानती हैं, जब कोई बाहर का आदमी निर्माण-स्थल पर घूमता रहता है..."

"मैं बाहर की नहीं हूं," लड़की ने विश्वासपूर्वक कहा। "मैं भी यहीं काम करती हूं।"

"पेंसिल चलाती हैं..." अमनताय अपने को रोक न सका।

"जी, हां," लड़की की आवाज़ खनक उठी। "और जानते हैं, क्या-क्या नोट किया है मेरी पेंसिल ने?" वह तेज़ी से नोटबुक के पन्ने उलटने लगी। "यह लीजिये...आपकी टोली बराबर फ़िटिंग तकनीक का पालन नहीं कर रही है...मैं अभी काम पर देर से आने की तो बात ही नहीं कर रही हूं..." उसने फ़ौरन अमनताय की तरफ़ देखा। "जब चाहें तब 'सिगरेट पीने की छुट्टी' करके काम का समय बरबाद करने की भी नहीं!"

"ज़रा सुनो तो, बेटी," ताहिर अका का चेहरा उतर गया। "अगर मैं तुम्हारा मतलब ठीक से समझा हूं, तो तुम कहती हो कि काम में हम काफ़ी ख़राबियों छोड़ देते हैं?"

“मैंने इसका नाम भी नहीं लिया है,” सनोबर उनसे आंखें मिलाकर बात कर रही थी, “लेकिन जब चाहते ही हैं, तो हां...इसे और कुछ नहीं कहा जा सकता...”

“अच्छा...” ताहिर अका ने अपनी टोपी ठीक की। “आपने सुना है, कामरेड इंस्पेक्टर? हमारी फ़िटर टोली अधिकरण में सर्वश्रेष्ठ टोलियों में से है, कितनी बार हमारे फ़ोटो सम्मान-फलक पर लगाये जा चुके हैं...”

“यही तो सबसे बुरी बात है, ताहिर अका!” लड़की की आंखें छलछला आयी। “यही तो सबसे भयानक बात है...आप तूफ़ानी कामगार होते हुए, ऐसा होने देते हैं।” उसने जेब से मापने का फ़ीता निकाला और लपककर तीसरी मंज़िल की ताज़ा लगायी गयी दीवार में वेल्डिंग के जोड़ों के बीच छूटी दरार नाप ली... “यह देखिये!...” उसने फ़ोरमैन को दिखाया। “यह क्या आपके ख़याल से ख़राबी नहीं है?”

“बकवास है...” फ़ोरमैन ने फ़ासला नापकर कहा। “यह तो ना के बराबर फ़र्क़ है।”

“मानक के अनुसार ऐसा नहीं होना चाहिए।” सनोबर ने तपाक से कहा।

“मानक, मानक,” फ़ोरमैन ने मुंह बनाया। “तुम मेरी जगह काम करके देखो...किसे ज़रूरत है इस आधे मिलीमीटर के फ़र्क की?”

“क्या?” सनोबर आश्चर्यचकित रह गयी। “इन आधे-आधे मिलीमीटरों से ही तो क्वालिटी बनती है। और नहीं तो क्या?”

“अच्छा, ठीक है,” फ़ोरमैन ने फिर अपनी टोपी ठीक की, “बात हो चुकी, अब बस करो।” उसके स्वर में किंचित् कठोरता झलकी। “बातें बातें ही होती हैं और काम काम...अपना-अपना काम करो,” उसने आदेश दिया और सबसे पहले केबिल से लटके दीवार के पैनल की तरफ़ बढ़ा ...

मामला गंभीर होता जा रहा था। अगले दिन सुबह सनोबर को फ़ौरन कार्यालय में बुलाया गया। वहां निर्माण-स्थल के सभी अधिकारी जमा हो

चुके थे। कोने में मुँडे सिरवाला ओवरसियर अधीरता से चहलक़दमी कर रहा था। मेज़ पर ताहिर अका दूसरे फ़ोरमैनों के साथ बैठे थे।

"हां तो..." सनोबर के कक्ष में क़दम रखते ही ओवरसियर ने संतोष के साथ कहा, "आइये, काम की बात फ़ौरन शुरू करें ... आपको मालूम है, हमने आपको क्यों बुलवाया है? बैठिये," उसने सनोबर की तरफ़ कुर्सी खिसकाई।

"नहीं..." वह कुछ सहम-सी गयी लगती थी। "मुझे तो बस...जल्दी से आने को कहा गया था।"

"ख़ैर, ठीक है," ओवरसियर ने गिलास से पानी का एक घूंट लेकर न जाने क्यों मुँह बनाया.." बात यह है, कामरेड ... आपके ख़िलाफ़ शिकायत आयी है।"

"शिकायत?" सनोबर ने उस पर सहमी नज़र डाली।

"हां, शिकायत," ओवरसियर ने पुष्टि की। "ताहिर अका ने की है और दूसरे फ़ोरमैनों ने भी। आप बाल की खाल निकालती हैं, कामरेड ... "

वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

"और आप ख़ुद जानते हैं, कामरेड ओवरसियर, कि 'बाल की खाल निकालने' से लोगों का मतलब क्या है?" उसकी आवाज़ कांप रही थी। "आप जानते हैं, कुछ फ़ोरमैन आलोचना पर ध्यान देने के बजाय..." उसे शब्द नहीं सूझ रहे थे, "ख़ुद ख़राब कामगारों की तरफ़दारी करते हैं।"

"यह झूठ है!" किसी से रहा न जा सका।

"नहीं, यह झूठ नहीं है..." सनोबर अब आपे में आ चुकी थी। "आप कहते हैं, ताहिर अका ने मेरी शिकायत की है ... मैं उनकी बड़ी इज़्ज़त करती हूं ... वह सम्मानित निर्माता है, काफ़ी अनुभवी हैं। लेकिन, कामरेडो, क्या ऐसे कुशल विशेषज्ञ की टोली को पैनलों के बीच लापरवाही से दरारें छोड़ने दिया जा सकता है?... मैंने हिसाब लगाया है ..." उसने तुरंत अपनी नोटबुक खोली। "एक घनमीटर मसाला दस

रूबल का पड़ता है, ठीक है न? पूरी इमारत पर इन लोगों की लापरवाही के कारण लगभग दस घनमीटर मसाला ज्यादा ख़र्च हुआ। यह सौ रूबल का हुआ, ठीक है ना? लेकिन हमारे यहां दूसरी चीज़ें भी लापरवाही से ख़र्च की जाती हैं। सरिये, लकड़ी ... यह तो हज़ारों रूबल बेकार ख़र्च करना हुआ न?... तो फिर मेरी ग़लती क्या है?" उसका गला अचानक रुंध गया और आंखें छलछला आयीं।

"सुनिये, कामरेडो," अचानक दरवाज़े से आवाज़ आयी। (सब ने पलटकर देखा—दरवाज़े में अधिकरण का मुख्य इंजीनियर एरगाशेव खड़ा था।) "मैं इस कामगारिन का नाम नहीं जानता ... लेकिन मेरे ख़याल से यह बड़े काम की बात कह रही है ..."

"कौन कहता है कि यह काम की बात नहीं कह रही है," ओवरसियर बड़बड़ाया।

"ज़रा ज़ोर से बोलिये, कामरेड मतयाकूबोव," मुख्य इंजीनियर ने अनुरोध किया।

"मैं कह रहा था," उसने फिर मुँह बनाकर गिलास से पानी का घूंट पिया, "कि बहुत से काम मजबूरी में करने पड़ते हैं ... जैसे मिसाल के तौर पर फ़िटरों से पैनल लगाने में थोड़ी दरारें छूट जाती हैं ... पर, बताइये, क्या वे पैनल हमेशा अच्छी क्वालिटी के होते हैं? उनमें कभी यहां ख़राबी होती है, कभी वहां ..."

"इसे भी माफ़ नहीं किया जाना चाहिए!" मुख्य इंजीनियर ज़ोर से बोला। "कारख़ाने में पता लगाना चाहिए कि दोषी कौन है, उनसे जवाब तलब किया जाना चाहिए। मैंने ठीक कहा ना?" उसने सनोबर को संबोधित कर कहा।

"जी, बेशक!" वह ख़ुश हो उठी। "वरना हम कभी बढ़िया फ़्लेट नहीं बना सकेंगे..."

ताहिर अका के फ़िटर ग़ुस्से से आग-बबूला थे। उनकी टोली के इतिहास में उन्हें पहली बार बोनस से वंचित कर दिया गया था। लड़की ने अपनी ठानी कर दिखायी।

"अब वह यहां क़दम रखकर देखे," अब्दुल्ला गुस्से में कह रहा था। "मैं उससे साफ़-साफ़ कह दूंगा..."

"देखो," अमनताय दुखी हो रहा था, "एक पिद्दी-सी लड़की ने..."

"पिद्दी, पिद्दी!" ताहिर अका अचानक फट पड़े। "हमें काम बेहतर ढंग से करना चाहिए, बस! न जाने कहां की जल्दी पड़ी रहती है, ख़राबियों की कोई परवाह ही नहीं!... अधिकारियों के सामने फ़ोरमैन जवाब देता रहे ... यह गांठ बांधे लो," उन्होंने आदतन टोपी ठीक की, "गांठ बांध लो, क्वालिटी ख़राब हुई, तो चमड़ी उधेड़ दूंगा ..."

"सलाम-अलैकुम!" लड़की ने एकसुरी आवाज़ में कहा।

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया, जैसे वह वहां थी ही नहीं। केवल अमनताय उसकी तरफ़ कनखियां से देखता लड़खड़ाता हुआ बेल्डिंग यंत्र की तरफ़ बढ़ा और चलते-चलते बोलाः

"मेहरबानी करके एक तरफ़ हट जाओ, कहीं कपड़े न गंदे हो जायें।"

वह पूर्ववत् रोज़ाना निर्माण-स्थल पर आती रही। निरीक्षण के लिए सुविधाजनक स्थान ढूंढ़कर वह बैठ जाती, स्टॉपवाच निकालती, नोटबुक में ख़ाने बनाकर उनमें आंकड़े लिखती रहती। कभी-कभी ताहिर अका के पास जाकर कुछ पूछ लेती, वह शिष्टतापूर्वक संक्षप में जवाब दे देते। बस। अब न पहले जैसे मज़ाक़ सुनने पड़ते थे, न अमनताय की मज़ाकिया नुक़ताचीनी और न ही अब्दुल्ला के रूखे पर न चुभनेवाले फ़िकरे। वह जैसे सुनसान जगह में रह रही थी, इसके बावजूद कि उसके चारों ओर लोहे और कंक्रीट से निर्माण-कार्य पूरे ज़ोर-शोर से चल रहा था।

उसका मन पहले कभी इतना उदास नहीं हुआ था। वह सोच भी नहीं सकती थी कि वे लोग, जिनके साथ उसे इतनी सहानुभूति थी, सच्ची बात का बदला इतनी क्रूरता से ले सकते हैं ... वह तो केवल उनका भला ही करना चाहती थी, और कुछ नहीं। ये मैले-कुचैले, हंसमुख लड़के उसे अपने नज़दीकी लगते थे, वह उनकी, उनकी दक्षता की और जादूई हाथों की प्रशंसक थी। इस हंसोड़ अमनताय की भी। उस किंचित् उदास –

सिर्फ़ ऊपर से! – पर दिल के ज़रा भी बुरे नहीं अब्दुल्ला की भी। फ़ोरमैन ताहिर अका की भी ... वे क्या सचमुच सोचते हैं कि वह उनका बुरा चाहती है? हाय, अल्लाह!... कितनी ग़लती पर हैं ये ... कितनी भारी ग़लती कर रहे हैं! ...

उसे उनसे ईर्ष्या होती थी: ये लोग मकानों का निर्माण करते हैं। जो देखने में तो रोज़मर्रा का काम है, पर वास्तव में होता चमत्कार है। एक महीने पहले यहां ख़ाली ज़मीन थी, धूसर, निरानंद टीले थे, पर आज वहीं नीले पैनलोंवाला ख़ूबसूरत मकान खड़ा है, जिसकी अभी-अभी शीशे लगायी हुई खिड़कियां नयी सड़क को निहार रही है। और यह सब उन अच्छे, प्यारे लड़कों ने किया है!

वे क्यों नहीं समझते कि वह उनका भला ही चाहती थी, चाहती थी कि ऐसी टोली के काम में ज़रा भी ख़राबी न रहे। ,

...वह जल्दी-जल्दी आंकड़ों की खड़ी क़तारें भरे जा रही थी, पर अचानक वे गड्ड-मड्ड होने लगे – उसने चुपचाप औरों की नज़र बचाकर आस्तीन से आंखें पोंछीं, पर आंकड़े थे कि नीले धब्बों की तरह तैरते ही चले जा रहे थे ...

"देखो," अब्दुल्ला ने अमनताय से फुसफुसाकर कहा।

लेकिन वह ख़ुद यह सब पहले से ही देख रहा था। मिनट भर वह दुविधा में पड़ा पैर बदलता क़िरमिज़ी जाकिट पहने कोने में दुबकी खड़ी अजीब-सी लड़की की तरफ़ देखता रहा, फिर उससे रहा न गया और उसने उससे चिल्लाकर कहा :

"ऐ, गौरैया, सुनो! हमारी नामी टोली के काम की क्वालिटी का क्या हाल है?.."

फ़रहाद मुसाजानोव

(जन्म– 1933)

फ़रहाद मसाजानोव गद्य-लेखक तथा नाटककार हैं। उन्होंने प्राच्य-वेत्ता की शिक्षा प्राप्त की है। वह रेडियो में और उसके बाद "उज़्बेकिस्तान मदनियाति" ("उज़्बेकिस्तान की संस्कृति") समाचारपत्र व "गुंचा" ("कली") पत्रिका के सम्पादक-मण्डलों में कार्य कर चुके हैं। उनकी प्रथम कहानी सन् 1955 में प्रकाशित हुई। तब से अब तक उनके कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जैसे "इन आंखों पर विश्वास किया जा सकता है," "सोमवार को नाश्ते के बाद," "सूरज के पीछे-पीछे" आदि। उन्होंने बालकों के लिए भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें "तुर्दी, साइकिल और मैं" प्रमुख हैं।

शादी में ज़रूर आइये

बग़लों पर नीले चौखानोंवाली भदमैले रंग की 'वोल्गा' धीरे से हिचककर चमकते विशाल शोकेसोंवाले सुपरबाज़ार के सामने रुकी। अहद ड्राइवर को किराया चुकाकर टेक्सी से बाहर निकला। उसने अनिश्चयता से पहले पटरी की सीध में दायें देखा, फिर बायें। हलीमबाय अका यहीं कहीं रहते हैं...लेकिन कहाँ? सुपरबाज़ार की दायीं तरफ़ या बायीं तरफ़? अहद ने जेब से संबंधियों की लंबी फ़ेहरिस्त निकाली, जिन्हें उसे विवाह का निमंत्रण देना था, – उनमें पूरा पता नहीं लिखा था। उसका ध्यान जूतों की एड़ियों की तेज़ खटखट से भंग हुआ: एक युवती उसके पास से गुज़र रही थी।

"सुनिये, क्या आप जानती हैं, यहाँ दाँतों के डाक्टर कहाँ रहते है?" अहद ने युवती से पूछा।

"हलीमबाय अका?"

"हाँ, हलीमबाय अका।"

"हमारे क़िबराय में हलीमबाय तोशायेव को सभी जानते हैं," लड़की ने अपने लंबे बालों को झटका दिया और वे धूप में धुंधले चमक उठे।

"मैं यहाँ का नहीं हूँ," अहद मुस्कराया।

"क्यों, नौजवान, क्या दाँत लगवाने हैं?" युवती की आँखों में शरारत की चमक झलकी।

"मौक़ा निकल गया, ख़ानम," अहद ने सोचा। "शादी कर रहा हूँ! ... तुम्हारी जुल्फ़ें काले झरने-सी तुम्हारे कंधों पर पड़ी हैं, आँखें ख़ूबसूरत हैं, पैर भी सुडौल हैं ... स्कर्ट शायद थोड़ा ऊँचा है? लेकिन अपनी-अपनी पसंद की बात है ... कुल मिलाकर तुम अच्छी हो। पर मेरी ख़ासियत तुमसे बेहतर है ... शादी कर रहा हूँ। ख़ानम!"

"देख किधर रहे हो, नौजवान?" युवती हँस पड़ी।

"अरे, हाँ..."

"अहद ने घबराकर गर्दन दायें घुमायी, जिधर लड़की का धूप में साँवला पड़ा हाथ उठा हुआ था।

"आप इस रास्ते से तीन-चार सौ मीटर नाक की सीध में चलेंगे, तो दायीं ओर बादामी रंग का फाटक दिखाई देगा। दरवाज़ा खटखटाना मत भूलियेगा..."

"शुक्रिया, ख़ानम। नहीं भूलूंगा," अहद मुस्करा दिया।

बस को स्टाप पर आते देख युवती ने फिर अपने बालों को झटका दिया और भागकर सड़क पार करने लगी।

अहद दायीं तरफ़ चल पड़ा। प्रातःकालीन हल्की धूप पोपलारों की पत्तियों से छनकर उसके चौड़े कंधों पर सुखद सेंक कर रही थी, रेशमी कशीदाकारीवाली टोपी को गरमा रही थी और उन्मत्त-सी हुई पेटेंट चमड़े के जूतों पर अठखेलियाँ कर रही थी। उसे लग रहा था जैसे पास से गुज़र रही बसों की खिड़कियों से ख़ासियत की मुस्कराती नटखट आँखें उसे देख रही हैं।

बादामी रंग का फाटक अहद का दूर से दिखाई दे गया। हलीमबाय अका उसके दूर के रिश्तेदार लगते थे। दूल्हा केवल दंतचिकित्सक के साढ़ू का भतीजा ही था। फिर भी उज़्बेक रीति-रिवाजों के अनुसार सभी संबंधियों का विवाह के प्रीति-भोज में साथ बैठना आवश्यक होता है। अगर किसी को दावत में नहीं बुलाया, तो ऐसी पुश्तैनी अदावत होगी कि बस पूछिये मत।

फाटक बंद नहीं था। कीट बिछी पगडंडी से अहद फलों के वृक्षों से घिरे घर की ओर चल पड़ा। हाल ही में सफ़ेद पेन्ट की हुई खुली खिड़कियों में से चिल्लाने की आवाज़ें आ रही थीं। अहद रुक गया।

"बाप रे बाप! पाँच पेटी आड़ू सड़ गये!" गुस्से से भरी मर्दानी चिल्लाहट सुनाई दी। "क़सूर तुम्हारा है, आयशा! तुम्हारा!..."

"चिल्ला क्यों रहे हैं आप?" खीज-भरा स्त्री स्वर सुनाई दिया। "मेरा क्या क़सूर है?"

"आजकल आड़ू हाथों हाथ बिक जाते हैं! वाह री, आयशा! ... क्या बाज़ार नहीं ले जा सकती थीं? क्यों?.. बाज़ार बग़ल में ही तो है!"

"मैं भी काम करती हूँ!" स्त्री ने ऊँची आवाज़ में कहा।

"अच्छी-ख़ासी रक़म फूंक डाली। डूबा दी!"

"मैं डाक्टर हूँ, कुंजड़िन नहीं!"

"अपनी माँ को भेज सकती थीं!"

"मरी माँ भी कुंजड़िन नहीं, नर्स है!" स्त्री अब रो पड़ी।

"भाड़ में जाओ सब के सब!" हलीमबाय अका फिर चिल्ला पड़े। "बेवकूफ़ हूँ मैं! उफ़, कितना बेवकूफ़ हूँ, जो पढ़े-लिखे ख़ानदान की लड़की से शादी की!"

"ख़ासियत भी अध्यापकों के परिवार से है," अहद ने सोचा। "क्या हमारे यहाँ भी सचमुच, ऐसी कहा-सुनी हो सकती है? और तभी उसे बरामदे से थोड़ी दूरी पर फैली आड़ू की टहनियों की पत्तियों में से दुलहन की मुस्कराती आंखें नज़र आ गयीं। उसने इन विचारों को दिमाग़ से निकाल दिया और बरामदे का सफ़ेद दरवाज़ा खटखटाया।

शीघ्र ही उसने बाज़ जैसी नाक तले गुबरैले-सी मूंछोंवाले नाटे क़द के आदमी को अपने सामने खड़ा पाया।

"क्या काम है?" उसने रुखाई से पूछा।

"आप हलीमबाय अका हैं?"

"मैं ही हूँ। पर बात क्या है? दाँतों के डाक्टर ने पहले जैसी ही अशिष्टता से कहा। शायद सड़े हुए आड़ू उसकी आत्मा पर गहरी छाप छोड़ गये थे। लेकिन यह मालूम होने पर कि अहद शादी करने जा रहा

है और उसे उसकी पत्नी सहित विवाह में आने का निमंत्रण दे रहा है, हालांकि वह बहुत ही दूर का रिश्तेदार है, हलीमबाय अका मुस्करा पड़े और दूल्हे का आलिंगन कर उसे अंदर आने को कहा।

"मजबूर हूँ, हलीमबाय अका," अहद ने दिल पर हाथ रखकर कहा। "मुझे सारे रिश्तेदारों के यहाँ जाना है। शाम तक शायद ही निबटा सकूँ।"

"जाओ, मेरे बेटे, जाओ!" दंतचिकित्सक ने अहद के कंधे थपथपाकर किंचित उदात्त स्वर में कहा। "मेहमानों को दावत का बुलावा दो ... शादी—बहुत नेक काम है! मालूम है, यह आदमी की ज़िंदगी में बहार की तरह होती है! और उसके बाद..." हलीमबाय अका शायद सड़े हुए आड़ुओं का ख़याल आने पर कुछ उदास हो गये, "घटाएँ छाने लगती हैं ..."

निमंत्रणपत्र देकर अहद बस में बैठकर क़ुरबाक़ाबाद रवाना हो गया। यह भूकंप के बाद बसाया गया नया इलाक़ा था।

किंडरगार्टन के पास, जिसकी ईंटों की नीची इमारत की छत बेदों के झुरमुट में चमक रही थी, अहद बस से उतर गया। दूल्हे की माँ की चचेरी बहन गुलख़ोन मौसी बसस्टाप से थोड़ी दूरी पर रहती थीं। उसे वह आयताकार अहाते में फूलों की क्यारी के पास मिलीं। लंबी नाकवाली सख़्त दीखनेवाली बूढ़ी घास पर बिछी दरी पर बैठी थीं ... उनकी गोद में नीले कंबल में लिपटा बच्चा लेटा था। मौसी मक्खियाँ उड़ाती हुई बच्चे को बोतल से दूध पिला रही थीं।

"सलाम, गुलख़ोन मौसी!" अहद ने कहा और वृद्धा के सामने आलथी-पालथी मारकर बैठ गया।

मौसी सिर उठाकर स्नेहपूर्वक मुस्करायीं:

"अहा, अहद! सलाम, लाड़ले। तुमने कब से सूरत नहीं दिखाई है। हमारे घर का रास्ता ही भूल गये।"

"फ़ुरसत नहीं मिलती, मौसी।"

"आजकल नौजवानों को फ़ुरसत ही कहाँ," गुलख़ोन मौसी ने ठण्डी सांस ली और बोतल दरी पर रखकर बोलीं: "लो, अलीख़ाँ को लो ज़रा।

इसके सोने का वक़्त हो गया है।"

अहद ने बच्चे को अनाड़ियों की तरह उठाया, मौसी फुर्ती से उठकर नीली बच्चा-गाड़ी से तकिये ठीक करने लगीं।

"अलीख़ाँ महमूदोविच कितने महीने के हो गये?" अहद ने कंबल ठीक करते हुए पूछा।

"छठा महीना लगा है।"

अलीख़ाँ महमूदोविच दूल्हे को अपनी काली-काली, तृप्त आँखों से टुकुर-टुकुर देख रहा था। एकाएक पोपली मुस्कान से उसके गाल दोनों तरफ़ फैल गये – केवल बटन-सी मुस्कराती नाक अपनी जगह रह गयी। "क्या सचमुच मेरे भी ऐसा बच्चा होगा? विश्वास नहीं होता ..." अहद ने मुस्कराकर ज़बान चटकारी।

"माँ कैसी है?" गुलख़ोन मौसी ने पोते को बच्चा-गाड़ी में लिटाकर पूछा।

"थोड़ा बहुत काम-काज करती रहती है।"

"क्या नयी ख़बर है, नौजवान?"

"शादी करने जा रहा हूँ, मौसी!"

"पागल मत बनो!"

वृद्धा ने बच्चा-गाड़ी घने ऐश वृक्ष की छाया में ले जाकर खड़ी कर दी। वे बैंच पर बैठ गये।

"पागल तो हो चुका हूँ," अहद मुस्कराया। "शनिवार को शादी है। आप, महमूद और उसकी बीवी ज़रूर आइये।"

"बड़ी जल्दबाजी करते हैं आजकल के नौजवान", गुलख़ोन मौसी बड़बड़ायी। "दोस्ती होते देर नहीं होती कि शादी तय कर लेते हैं।" उन्होंने दूल्हे का माथा चूमा और उंगली उठाकर ख़बरदार किया: "देखो, बीवी को क़ाबू में रखना। शुरू से ही सख़्ती से पेश आना, किसी मामले में ढील मत देना।

"मेरी ख़ासियत प्यारी और नेक है। घर में उसे 'गऊ' कहते हैं।"

गुलख़ोन मौसी ने अपनी लंबी नाक उसे चुभोते हुए मज़ाकिया लहजे में कहा:

"शादी तक सब 'गऊ' रहती हैं, फिर शेरनियाँ हो जाती हैं। तुम्हारी मंगेतर तो पढ़ी-लिखी है न?"

"अध्यापिका है," अहद ने कहा।

"वही तो मैं कह रही हूँ!" गुलख़ोन मौसी को न जाने क्यों ख़ुशी हुई "स्कूल में कोई उसे भला-बुरा कह देगा – तुम जानते ही हो आजकल के बच्चे कैसे हैं, फिर घर पर वह तुम पर गुस्सा उतारा करेगी!"

"आप भी क्या, मौसी," दूल्हा शर्मा गया।

"यही होगा, अगर उसे सिर चढ़ाओगे," बूढ़ी बोलती रही। "मेरी इंजीनियरनी को ही देखो, बेचारे महमूद की नाक में तीर किये रहती है। पता है, क्या कहती है, कि वह कम कमाता है ... 'कह रही थी कि नये फ़ैशन के बूट क्यों नहीं ख़रीदे?' हर चीज़ में मीन-मेख निकालती है। मुझे भी नहीं बख़्शा उसने। पाँच महीने के बच्चे को मेरे ज़िम्मे छोड़कर ख़ुद काम पर भाग गयी। और यह सब क्यों होता है? क्योंकि महमूद ढुलमुल है, उसने उसे ढील दे रखी है..."

अहद जानता था कि गुलख़ोन मौसी घंटों अपनी बहू की बुराई कर सकती है। यह दलील देकर कि उसके दूसरे रिश्तेदार भी उसके निमंत्रण का इंतज़ार कर रहे होंगे, वह चलता बना।

अहद नगर-केंद्र के लिए रवाना हो गया। उसे अपने विवाह में तकनीकी स्कूल के अध्यापक, भले और काम के मामले में सख़्त ख़लील तुर्सुनोविच को निमंत्रित करने की इच्छा हुई जिन्होंने उसे फ़िटर का काम सिखाया था। अध्यापक नौमंज़िला मकान में रहते थे। अहद ने लिफ़्ट से छठी मंज़िल पर पहुंचकर बहत्तर नम्बर फ़्लैट की घंटी बजाई। दरवाज़ा थोड़ा-सा खुला और सुंदर भौंहों को सिकोड़े हुए एक सांवली स्त्री नज़र आयी। फ़्लैट के भीतर से पियानो के स्वर सुनाई दे रहे थे।

"मैं ख़लील तुर्सुनोविच से मिलना चाहता हूँ," दूल्हा अभिवादन करके मुस्कराया।

"वह घर पर नहीं हैं," स्त्री ने सर्दमिज़ाजी से कहा और दरवाज़ा भड़ाक से बंद कर दिया।

अहद ने फिर घंटी बजाई। इस बार दरवाज़ा झटके के साथ खुला। स्त्री की सुंदर भौंहें झुँझलाहट से कांप रही थीं।

"मैंने आपको बता तो दिया, नौजवान, कि ख़लील तुर्सुनोविच घर पर नहीं हैं!" उसने झल्लाहट-भरे स्वर में कहा।

"माफ़ कीजिये," अहद घबरा गया। "मैं उस्ताद ख़लील तुर्सुनोविच को अपनी शादी में बुलाना चाहता हूँ। यह निमंत्रण पत्र है।"

स्त्री ने निमंत्रणपत्र को हाथ में उलटा-पलटा और अब कुछ नर्म स्वर में बोली:

"ठीक है, मैं उनको दे दूंगी।"

उसी समय स्त्री के पीछे से तेज़ क़दमों की आहट आयी। छः एक साल की लड़की का सांवला चेहरा झांका। स्त्री झटके से मुड़कर लड़की पर चीख़ पड़ी:

"चल, जाकर पियानो बजा! ताक-झांक करने की कोई ज़रूरत नहीं!"

लिफ़्ट के दरवाज़े बंद होने पर अहद को याद आया कि उसने अध्यापक की पत्नी को तो शादी में आने को कहा ही नहीं। उसने अगली मंज़िल पर निकलना चाहा, पर फिर नीचे उतर गया – ख़लील तुर्सुनोविच की पत्नी ज़रूरत से ज़्यादा चिड़चिड़ी औरत निकली।

बस ने दूल्हे को चिलंज़ार पहुँचा दिया। इस नये इलाक़े में उसके चाचा के दामाद को हाल ही में फ़्लैट मिला था। अहद चौड़े अहाते में घुसा जिसके किनारों पर गहरे हरे लिंडन वृक्ष लगे थे। वृक्ष तीसरी मंज़िल तक पहुँच रहे थे। किन्हीं खुली खिड़कियों से वैराइटी संगीत आता सुनाई दे रहा था। अहाते के दूसरे छोर पर डोमिनो खिलाड़ी मेज़ को घेरे खटाखट गोटियाँ चल रहे थे।

अहद तीसरी मंज़िल पर चढ़ गया। मंसूर अका के फ़्लैट के बंद दरवाज़े में से शोर और बच्चों की हंसी आती सुनाई दी। घंटी बजाते ही दो बच्चे लपककर आये। उन्होंने अपने नन्हे-नन्हें कुतूहली मैले चेहरे उठाकर देखा।

"अब्बा घर पर है?"

"जी। वह समोसे बना रहे हैं," बच्चों ने एक दूसरे से होड़ करते हुए जवाब दिया।

पलक झपकते कोरिडोर लड़के-लड़कियों के झुण्ड से भर गया। वे सब के सब गोल-मटोल और पतली नाकोंवाले थे। बड़ी मुश्किल से काले सिरों के बीच से निकलकर अहद रसोई में पहुँचा। हट्टे-कट्टे मंसूर अका सफ़ेद एप्रन बांधे, आस्तीनें चढ़ाये मेज़ के पास खड़े लोइयाँ बेल रहे थे। उनके माथे पर पसीने की बूंदें मोतियों-सी चुहचुहा रही थीं। दूसरी मेज़ पर तीसेक सफ़ाई से बने समोसे ओवन में रखे जाने की बाट जोह रहे थे।

मेहमान के आने का सबब जानकर मेंसूर अका ने उसे अपनी ताक़तवर बाँहों में जकड़ लिया, जिससे उसके कपड़ों पर आटे के दाग़ लग गये।

"अफ़सोस इस बात का है कि तुम्हारी बहन शादी की दावत मंज़ूर नहीं कर सकती," मंसूर अका ने गुंधे आटे पर खड़ी हथेली मारते हुए कहा।

"क्या हुआ, मंसूर अका?" अहद न जाने क्यों डर गया।

हट्टे-कट्टे मंसूर अका ने हुंकार भरी और फिर लोइयाँ बेलने लग गये।

"बीवी घर पर नहीं है," उन्होंने हाँफते हुए कहा।

"क्या बीमार पड़ गयी हैं?"

"कैसी बीमार!" मंसूर अका ने हँसकर एप्रन से माथे का पसीना पोंछा। "तुम्हारी बहन को साल में एक बार वहाँ गये बिना चैन नहीं आता।"

" 'वहां' कहाँ?"

"ज़च्चाख़ाने में," मंसूर अका ने ठण्डी सांस ली।

"तो यह बात है!" अहद हँस पड़ा। "मुबारक हो, मंसूर अका! बेटा हुआ या बेटी?"

"बिटिया। पांचवी ... नहीं, छठी बेटी है। काली-काली आंखें हैं ... ख़ूबसूरत निकलेगी!"

"आपके कुल कितने बच्चे हैं?"

"अब दस हो गये," मंसूर अका ने फिर ठण्डी सांस ली। "मुझे तो डर है कि तुम्हारी बहन को पूरे दस पर ही सबर नहीं होगा। आगे जो होगा देखेंगे।"

मंसूर अका ने अंतिम शब्द ऐसे लहजे में कहे, मानो बहन का हर साल बच्चा पैदा करना उन पर ज्यादा निर्भर नहीं करता हो। उन्होंने गुंधा आटा धप से मेज़ पर पटका और दूसरी बार माथे का पसीना पोंछा।

"बीबी को गले लगाना आसान होता है," मंसूर अका हंस पड़े, "लेकिन समोसे बनाना कहीं ज़्यादा मुश्किल होता है।"

"समोसे क्या आपको अक्सर बनाने पड़ते हैं?" अहद ने पूछा।

"हूँ! सिर्फ़ समोसे ही थोड़े ही!... कपड़े धोने पड़ते हैं, रफ़ू करने पड़ते हैं, खाना पकाना पड़ता है। मैं औरतों का हर तरह का काम कर सकता हूँ।"

"सच?!" अहद को आश्चर्य हुआ।

"ज़रा ठहरो, तुम भी ये सारे हुनर सीख जाओगे। तुम्हारी मंगेतर पेशे से क्या है?"

"अध्यापिका," दूल्हे ने ठण्डी सांस ली।

"तब तो तुम्हें अपने को सौ फ़ीसद घरवाली मान लेना चाहिए," मंसूर अका हँस पड़े और उन्होंने तीसरी बारे माथे का पसीना पोंछा...

अहद भीड़-भरी सड़क पर चलता सोच रहा था: "दुनिया में हज़ारों मर्द शादी करते हैं ... हज़ारों क्या – लाखों! और सब जानते हैं – पति बनना मुश्किल होता है। फिर भी शादी करते हैं। मैं भी शादी करने जा रहा हूँ ... शायद मुझे भी मंसूर अका की तरह समोसे बनाना सीखना पड़े, पर ख़ासियत से शादी किये बग़ैर मैं नहीं रह सकता। यह कितनी प्यारी और स्नेहमयी है!" अहद मुस्करा पड़ा और उसे दोपहर की धूप में मेपल की चमकती पत्तियों में एक बार फिर दुल्हन की मुस्कराती शरारती आँखें नज़र आ गयीं।

उल्मस उमरबेकोव

(जन्म– 1934-1994)

उल्मस उमरबेकोव गद्य-लेखक व नाटककार हैं। वह ताशक़न्द राजकीय विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान संकाय में पत्रकारिता विभाग के स्नातक हैं। उनकी रचनाऐं सन् 1956 से प्रकाशित हो रही हैं। प्रथम कहानी-संग्रह सन् 1959 में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् "हमारे गांववाले", "बूढ़ा अख़रोट", "पुल", "सुनहरी पत्तियाँ", "बेफ़िक्र", "प्रियतम" कहानी-संग्रह तथा उपन्यास "इनसान बनना मुश्किल है" आदि प्रकाशित हुए। उल्मस उमरबेकोव फ़िल्मी नाट्यकला के क्षेत्र में फलप्रद कार्य कर रहे हैं। उनकी पट-कथाओं पर "लड़का और लड़की", "महत्त्वपूर्ण दिन", "सफ़ेद बादल" फ़िल्में बनाई जा चुकी हैं।

उल्मस उमरबेकोव की कृतियों का अनुवाद सोवियत संघ के बंधु जनतंत्रों की तथा कई विदेशी भाषाओं में हो चुका है।

बूढ़ा अख़रोट

बूढ़े गुलामक़ादिर अता अपने घर के बरामदे में सोच में डूबे खंभे पर पीठ टिकाये बैठे थे, जिस पर न जाने कितने वर्षों से बरामदे की छत टिकी हुई थी। वह लगातार तीसरी शाम इस मुद्रा में बैठे हुए थे; दिन ढ़ले घर लौटकर वह यहीं बैठ जाते और तुरन्त उन्हें स्मृतियाँ आ घेरतीं। कुछ ही दिन पहले की बात होती, तो वह अपने घर का दरवाज़ा बंद करके चायख़ाने चल देते। उन्हें चायख़ाना बहुत अच्छा लगता था, वहाँ सदा यार-दोस्त मिल जाते थे, हंसी-मज़ाक़ और गपशप में समय काटा जा सकता था। घर वह अकसर आधी रात के बाद लौटते थे, क्योंकि वह अकेले रहते थे। केवल रविवार को वृद्ध कहीं नहीं जाता था, खाना पकाता था और फिर बूढ़े अख़रोट की छाया में बैठकर अपने पोते मुहम्मद अली की बाट जोहता था। उस दिन लड़का बोर्डिंग-स्कूल से अपने दादा से मिलने आता था। बूढ़े और बच्चे दोनों को ही पुलाव पसंद था, ख़ास तौर से पुलावे-फ़रग़ानी। इसीलिए गुलामक़ादिर अता हर शनिवार को पुलाव का ज़रूरी सामान ख़रीदने बाज़ार जाया करते थे। पोता इस पर नाराज़ भी हो उठता था।

"क्या ज़रूरत है आपको तकलीफ़ उठाने की, दादा!" वह मुंह फुलाकर कहता था। "बाज़ार नज़दीक होता, तो और बात होती, आपको तो इतनी दूर जाना पड़ता है।"

"ओह मेरे लाड़ले, ऐसी परेशानी उठाने से तो बूढ़े आदमी की उम्र बढ़ जाती है," गुलामक़ादिर अता पोते की चिंताशीलता देख ख़ुश होकर जवाब देते। "हमारे सारे घर को पुलाव पसंद था, तुम्हारे मरहूम अब्बा को भी, माँ को भी..."

इतना कहकर गुलामक़ादिर अता सोच में डूब जाते थे, उनकी घनी, सफ़ेद भौंहें सिकुड़ जाती थीं। फिर उनके होंठ हिलकर कुछ बुदबुदाते, शब्द स्वतः बाहर निकलने को बेचैन हो उठते और संयत वाणी फूट पड़ती। गुलामक़ादिर अता जानते थे कि बीती बातों को याद करना घावों पर नमक छिड़कने जैसा होता है, फिर भी अपने बेटे, बहू और पत्नी के बारे में बात करना कितना सुखद लगता है। मुहम्मद अली कई बार यह कहानी सुन चुका था, पर वह दादा की बात कभी नहीं काटता था, बल्कि हमेशा ध्यानपूर्वक सुनता था। माँ की उसे धुँधली याद थी। वह मर गयी थीं जब वह मुश्किल से तीन साल का हुआ था। उनकी याद आने पर उनका हंसमुख गोरा चेहरा, भरा बदन उसकी आँखों के आगे घूम जाते थे। अपने पिता को बालक केवल उनकी उसी तसवीर से पहचानता था, जो, जब से उसने होश संभाला, कमरे के दायें कोने में टंगी थी। लड़का इतना और जानता था कि उसके पिता सैनिक थे और उनकी मृत्यु पीछे हटते फ़ासिस्टों द्वारा छोड़े गये गुप्त शस्त्रागार की सुरंगें हटाते समय हुई थी। उस दुर्घटना को काफ़ी अरसा हो चुका था। बड़े सारे घर में केवल दो ही आदमी रह गये थे – वह और उसके दादा। जब सामूहिक फ़ार्म में अपना बोर्डिंग-स्कूल बना, हकीम अका ने उसे उसमें भर्ती करवा दिया।

हकीम अका उसके पिता के मित्र थे, उन्होंने साथ-साथ लड़ाई लड़ी थी और अब हकीम अका स्कूल में उज़्बेक भाषा पढ़ाते हैं। गुलामक़ादिर अता अपने बेटे के मित्र की सदा प्रशंसा करते थे, साथ ही पोते को सीख दिया करते थेः "तुम हकीम अका का कहना माना करो, वर्ना वह तुम्हारे कान उमेठकर बाहर निकाल लेंगे।" वैसे यह बहुत पुरानी बात है। अब तो मुहम्मद अली बड़ा हो चुका है और उसे दादा से ऐसी बातें नहीं सुननी पड़तीं। अब दादा उसके साथ इस तरह बात करते हैं जैसे वे दोनों हमउम्र हों। दादा बोलते रहते हैं और मुहम्मद अली सुनता रहता है। इसीलिए

तो उसे काफ़ी बातों का ज्ञान है। उसे मालूम है कि उसके पिता, माता और दादी कैसे लोग थे। यह भी कि जवानी में दादी दादा के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर बासमाचियों के विरुद्ध लड़ी थीं। वह सरपट घोड़ा दौड़ाती थीं और एक बार तो उन्होंने एक मोटे-तगड़े लुटेरे को क़ैद भी कर लिया था। तबे दस्ते के सारे सैनिक दंग रह गये थे। ऐसी थीं उसकी दादी।

शाम घिर आती, ठंडी हवा बहने लगती, पर ग़ुलामक़ादिर अता के क़िस्सों का अंत ही न होता। पोता धीरे से कहताः

"दादा..." और आसमान की तरफ़ इशारा करता।

वृद्ध काले होते जा रहे आकाश और छिटकते तारों की तरफ़ देखता, जिनकी चमक रात को अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती और तब उसे बोर्डिंग-स्कूल की याद आती। कुछ देर तक चुप्पी साधे, भौंहें सिकोड़े लड़के को घूरने के बाद उसके होंठों पर मुस्कान खेल जाती। मुहम्मद अली को दादा की यह मुस्कान बहुत अच्छी लगती थी। उनकी दबी आंखों से झुर्रियां चारों तरफ़ फैल जाती, सफ़ेद दाढ़ी सारे सीने को ढक लेती; घनी और शानदार लगने लगती।

मुहम्मद अली जानता है कि दादा एक-दो बार खांसकर कहेंगेः

"हाँ, तो डाक्टर साहब, ज़रा अपनी डायरी दिखाइये।"

'डाक्टर' क्यों? मुहम्मद अली की समझ में नहीं आता। वह जल्दी से बस्ते से डायरी निकालकर दादा को दे देता। उसके पाँच में से पाँच अंक देखकर वृद्ध की मुख-मुद्रा गम्भीर हो उठती, चेहरे से मुस्कान ग़ायब हो जाती और दाढ़ी भी अपनी जगह लौट आती। वह डायरी सावधानीपूर्वक चौकी पर रख देता और धीरे-धीरे पुरानी अरबी लिपि में हस्ताक्षर कर देता। थोड़ी देर हस्ताक्षर को देखता और फिर डायरी बंद करके पोते को लौटा देता।

"शुक्रिया," वह गंभीर स्वर में कहता, "बहुत-बहुत शुक्रिया..."

फिर दादा पोते के साथ बोर्डिंग-स्कूल के लिए रवाना हो जाते। वापसी में ग़ुलामक़ादिर अता चायख़ाने में अपने दोस्तों से मिलने नहीं

जाते, हालांकि सोने के वक़्त में अभी काफ़ी देर होती, बल्कि सीधे अपने घर आकर उसी जगह बैठ जाते, जहां थोड़ी देर पहले उनका पोता बैठा था, और चाय की चुस्कियाँ लेते हुए अगले दिन का कार्यक्रम सोचने लगते। आख़िर सामूहिक फ़ार्म के दस हेक्टेयर के बाग़ की संभाल करना मज़ाक़ तो नहीं है। गुलामक़ादिर अता सुबह से शाम तक बाग़ में काम करते रहते और शाम देर गये ही चायख़ाने में जाते।

लेकिन पिछले तीन दिनों से वृद्ध चायख़ाने में नज़र नहीं आ रहा था। तीन दिन से वह कहीं नहीं जा रहा था, घर पर ही बैठा था। और यह सब ग्राम सोवियत के अध्यक्ष के कारण हुआ।

बात यह थी कि हाल ही में ग्राम सोवियत ने गुलामक़ादिर अता का घर गिराने का फ़ैसला किया था। नयी, चौड़ी सड़क बनाकर दो पड़ोसी गाँवों को मिलाने की योजना थी और बूढ़े बाग़वान का घर ठीक ऐसी जगह पर बना था, जहाँ से भावी मार्ग निकलना था। वृद्ध को घर गिराये जाने पर एतराज़ न था। गाँव की दशा सुधारने और चौड़े मार्गों का भला कौन विरोध करेगा? जब कि इसके अलावा सामूहिक फ़ार्म उसे गाँव के ठीक केंद्र में नया मकान दे रहा हो! जब ग्राम सोवियत के अध्यक्ष ने वृद्ध के पास आकर उसे घर के बारे में हुए फ़ैसले के बारे में बताया, तो बूढ़े ने कोई जवाब नहीं दिया, केवल सिर झुका लिया, मानो उसे यह स्वीकार हो। लेकिन अकेला रह जाने पर उसके दिल में अचानक टीस उठी। पर बाग़ का क्या होगा? क्या फलों के वृक्षों को भी उखाड़ दिया जायेगा? सेब, चेरी, नाशपाती और आड़ू के पेड़ों का क्या होगा? और उसके अपने अख़रोट के पेड़ का क्या होगा?

बहुत तेज़ गर्मी में वृद्ध को केवल उसी पेड़ के तले राहत मिलती थी, उस शतवर्षीय बलूत जैसे बूढ़े, विशाल अख़रोट के तले बैठने पर ही उसे प्यास नहीं सताती थी। फिर पतझड़ में उससे इतने अख़रोट उतरते कि सारे गाँव के लिए काफ़ी होते। न तो गाँव में कोई ऐसा आदमी था और न ही कोई मेहमान, जो बूढ़े पेड़ के पास से गुज़रते समय उसकी घनी, फैली डालों को, मोटे तने को और बड़े-बड़े अख़रोटों की प्रशंसा मिश्रित आश्चर्य की दृष्टि से न देखता हो।

इस वृक्ष का इतिहास भी कितना निराला था!

बहुत समय पहले बासमाचियों के विरुद्ध संघर्ष के वर्षों में ग़ुलामक़ादिर अता लाल घुड़सवार सेना के एक दस्ते के कमांडर थे।

उन्होंने अली क़ुरबाशी और अमनक़ुल लुटेरों के गिरोहों का, जो क़ोक़ान्द व फ़रग़ाना में लूटमार करते रहते थे, जीना हराम कर दिया था। सन् 1921 में स्वयं फ़्रूंज़े* ने उनसे हाथ मिलाकर उन्हें लाल पताका का पदक प्रदान किया था। उसके बाद ग़ुलामक़ादिर अता ने शहाबुद्दीन सदीरोव के साथ बेकतेमीर, प्सकेंत तथा पर्केंत के बासमाचियों के ख़िलाफ़ लड़ाइयाँ लड़ी थीं। यह वही कमांडर सदीरोव था, जिसने हवाई जहाज़ से भाग निकलने की कोशिश करनेवाले ब्रिटिश अफ़सर को गिरफ़्तार कर लिया था। ग़ुलामक़ादिर अता ने वह अख़रोट का पेड़ भी उसी ज़माने में लगाया था।

एक बार अली क़ुरबाशी के गिरोह का पीछा करते समय ग़ुलामक़ादिर अता अपने गांव से गुज़र रहे थे। उनकी नज़र अचानक एक बूढ़े की लाश पर पड़ गयी, जिसे लुटेरों ने यंत्रणाएं दे-देकर मार डाला था। उसके चेहरे पर ख़ून और मिट्टी जम गये थे, एक आँख फूटी हुई थी। लगता था लुटेरों से उसे घोड़े की पूंछ से बांधकर घसीटा था। ग़ुलामक़ादिर अता ने उसकी लाश पर झुककर देखा, तो उन्हें उसके हाथों में एक छोटी-सी डाली नज़र आ गयी। उसने अपनी बेजान उंगलियों में उस डाली को कसकर पकड़ रखा था, मानो उसके अंतिम क्षणों में उसे जीवन-डोर से बांधे रखनेवाली वह उसके लिए सबसे मूल्यवान वस्तु थी। तब ग़ुलामक़ादिर अता ने उसे तुरंत पहचान लिया ... सईदअज़ीम! उनके गाँव का माली सईदअज़ीम! माली के हाथ में कसकर पकड़ी हुई अख़रोट की हरी डाली अब मुरझाने लगी थी ...

सेना के जवानों ने माली को दफ़ना दिया, और डाली को ग़ुलामक़ादिर अता ने अपने अहाते में बासमाचियों द्वारा जला डाले गये मकान के सामने रोप दिया। तब से यह अख़रोट का पेड़ बड़ा होकर फैलता गया और

* फ़्रूंजे – सुप्रसिद्ध सोवियत सेनानायक।

उसकी कई और पीढ़ियाँ भी पैदा हुईं। सामूहिक फ़ार्म का अख़रोट का झुरमुट लगभग पूर्णतया उसी की देन है ... तो क्या अब सचमुच इस पेड़ को नया चौड़ा मार्ग निकालने की ख़ातिर काट डाला जायेगा?

गुलामक़ादिर अता ने सिर उठाकर ऊपर देखा। अहाते को दोपहर की चिलचिलाती धूप से बचानेवाले पेड़ के चौड़े पत्ते हौले-हौले सरसरा रहे थे। उस सरसराहट ने वृद्ध के बचपन की यादें ताज़ा कर दीं। कितनी मिलती थी यह सरसराहट उस बड़ी पतंग की सरसराहट से! ख़ास तौर से जब उसके साथ पतले काग़ज़ की लंबी पूंछ और चिपका दी जाती थी! ... बूढ़ा माली काफ़ी देर तक बैठा पत्तों की फुसफुसाहट सुनता रहा। इन जानी-पहचानी आवाज़ों में वह अपने चिर-परिचित बीते ज़माने की गूंज सुनने का अभ्यस्त था। वे उसे अपने जवानी के दिनों की याद दिलाती थीं, जब वह बांका नौजवान तलवार सिर पर घुमाता, धूले के गुबार उड़ाता सरपट घोड़ा दौड़ाता था। लेकिन अकसर यह हल्की सरसराहट और मंद-मंद झोंके उसे अपने वर्तमान शांत जीवन की कहानी सुनाते थे, सम्मानपूर्वक जिये वर्षों को यादों से भी उसे काफ़ी सुकून मिलता था। ऐसे क्षणों में गुलामक़ादिर अता अपने बुढ़ापे के बारे में भूल जाते थे। अपने बड़े, झुर्रीदार हाथों को देखकर वह सोचते थेः 'तुम अभी और काम करोगे, तुम अभी और भी बहुत कुछ कर सकते हो...'' और यह भी कि अभी उन्हें काफ़ी जीना है ...

सूरज डूबने जा रहा था। बयार अपने साथ ठंडक ले आयी। पर वृद्ध अभी भी बाग में बैठा था। बरामदे की छत को छू रही अख़रोट की डाल से दो गौरैया फुर्र से, चहचहाती हुई चूल्हे के पास लगे रेत के ढेर के पास आ बैठीं और एक-दो बार इधर-उधर देखकर रेत में लोटने लगीं। ''शायद बारिश होनेवाली है, ''वृद्ध ने सोचा। ''देखो कितनी ख़ुश हो रही हैं, जैसे प्यास से तड़पता आदमी पानी को देखकर ख़ुश होता है।''

एक गौरैया पंख फैलाकर फुदकने लगी, दूसरी सुस्ताने लगी, वह थक गयी थी।

''बाज़ार जाना चाहिए,'' वृद्ध ने सोचा। ''पर ठहरो, आज दिन कौनसा है? शुक्रवार या शनिवार?''

तीन दिन पहले अध्यक्ष आया था। यह मंगलवार की बात है। यानी आज शुक्रवार है। तब तो कल ही बाज़ार जाना चाहिए।

"काश, मेरी किस्मत में यह सप्ताह न देखना बदा होता, तो बेहतर होता।"

वृद्ध बोला और वह ख़ुद ही अपनी आवाज़ से चौंक उठा। उसने अग़ल-बग़ल देखा। घर में सन्नाटा छाया था, केवल नाले में मेंढक टर्रा रहा था।

"लो, अब अपनी ही आवाज़ से डरने लगा," वृद्ध खीझकर बड़बड़ाया! "पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था ... हाँ ... काश, यह सप्ताह न देखना बदा होता मुझे ... ओह, वह मुहम्म्द अली, शैतान, मेरा हमदर्द, कितना नाराज़ होगा, यह देखकर कि मुझे कितना परेशान किया गया है! बेहतर होगा मैं ख़ुद जाकर उसे देख लूं। शाम होने में अभी देर है।"

गुलामक़ादिर अता ने उठकर सारे अहाते पर नज़र दौड़ायी, फिर अख़रोट के पास आकर उसका तना देखने और छूने लगे, जिस पर वैसी ही दरारें पड़ी थीं, जैसी कि उनकी गरदन पर झुर्रियाँ।

"आह, मेरे प्यारे, तू तो बिलकुल भी नहीं बुढ़ाया," उन्होंने तने को थपथपाया। "तेरी जड़ें मज़बूत हैं। अच्छा, ठीक है, अबे थोड़ी देर और जी ले। कुछ ही दिन तो बच रहे हैं तेरी ज़िंदगी के।"

कहीं घास में टिड्डा झिंगार उठा, अरुणिम सूरज मिट्टी की दीवार के पीछे ओझल हो गया, बयार का अचानक आया झोंका कहीं से भुने प्याज़ की सुगंध ले आया।

"तो यह बात है, बुढ़ऊ। तुझे इस बात का अहसास तक नहीं है कि तेरे बस अब गिने हुए दिन ही बचे हैं।"

गुलामक़ादिर अता ठंडी सांस लेकर फाटक की तरफ़ चल दिये। वह बोर्डिंग-स्कूल के पास पहुँचकर ऐन उसके दरवाज़े पर रुक गये। "अंदर क्यों जाऊं, क्यों पोते को बेकार परेशान करूँ?" उन्होंने सोचा। "क्या वह ख़ुद नहीं समझ जायेगा? शायद उसे सब मालूम है!"

इस तर्क ने बूढ़े को जैसे आश्वस्त कर दिया और वह वापस मुड़ गया। वापसी में उसने चायख़ाने में रोशनी देखी, पर वह रुके बिना अपने घर चल दिया।

अगली सुबह वह बड़े तड़के उठ गया। रिमझिम बारिश हो रही थी। बूढ़े ने अहाते में निकलकर हमेशा की तरह नहर से आनेवाले नाले के पानी से हाथ-मुँहे धोये और समोवार सुलगाया।

"बारिश होती है, तो होने दो, पेड़ों को तो राहत मिलेगी।"

अपने आपसे बात करना अरसे से उसकी आदत हो चुकी थी।

"भला पानी से किसी को नुक़सान होते कभी किसी ने देखा है? कड़ी गर्मी पड़ने में अभी काफ़ी दिन है। ख़ूबानी के पेड़ ने अभी पानी सोखना शुरू ही किया है, और अख़रोट ने तो अभी बिलकुल ही नहीं पिया है।"

इतना कहते ही वृद्ध का दिल धक-धक कर उठा।

"यह अच्छा नहीं हुआ, बिलकुल अच्छा नहीं हुआ। पेड़ यों ही बर्बाद हो जायेंगे।"

बूढ़े माली का चोग़ा भीगकर कंधों पर काला पड़ गया था, समोवार बुझ चुका था, पर वह वैसे ही खड़ा था, पेड़ों के सिवा किसी और चीज़ का उसे ध्यान नहीं था। कभी वह सेब को देखता, कभी ख़ूबानी को, फिर उसकी नज़र चेरी से फिसलकर आड़ू पर पड़ती और फिर अख़रोट पर टिक जाती। उसे ताज़ा कटे पेड़ की गंध आती महसूस हुई, वह बेआवाज़ रो उठा और आंसू उसके झुर्रीदार गालों पर से ढुलकने लगे। कहीं वे वर्षा की बूंदें तो नहीं हैं, जो प्यासी ज़मीन की प्यास बुझा रही हैं?

"या ख़ुदा, यह कौनसी बला आ पड़ी है? मैंने कभी अपने को इतना कमज़ोर नहीं महसूस किया..."

बाहर से किसी को उसे पुकारते सुनकर वृद्ध चौंक उठा। उसने मुड़कर देखा, तो अपने पड़ोसी अब्दुजलील और ग्राम सोवियत के अध्यक्ष के साथ खड़ा पाया।

"तबियत कैसी है? क्यों कल आप चायख़ाने में नज़र नहीं आये?" अब्दुजलील अका ने हाथ बढ़ाते हुए पूछा। "हम तो आधी रात तक वहाँ

बैठे बातें करते रहे, आपको याद करते रहे। क्या आप सचमुच वहाँ नहीं आये थे? कहीं बीमार तो नहीं पड़ गये हैं?"

"नहीं, मैं ठीक हूँ," माली ने जबरन मुस्कराकर पडोसी को सांत्वना दी। "मेहरबानी करके अंदर तशरीफ़ लाइये!"

"हाँ, तो गृहप्रवेश कब का रखें?" अध्यक्ष ने बरामदे में चढ़कर पूछा। "कहीं आपको मकान तो पसंद नहीं है?"

"नहीं, पसंद क्यों नहीं है? मकान अच्छा है। जब आप कहेंगे, हम उसमें रहने आ जायेंगे। दो आदमियों का सामान बांधने में भला देर लगती है?"

"ऐसा है, तो हम लोगों को भेज देंगे। वे सामान ढोने में आपकी मदद कर देंगे।"

"लेकिन फलदार पेड़ों का क्या होगा?" अब्दुजलील बीच में बोल उठा। "उन्हें तो उठाकर ले नहीं जाया जा सकता।"

"पेड़ों का क्या करेंगे? काट डालेंगे, अध्यक्ष ने तीखे स्वर में कहा। यह भी कोई समस्या है!"

"क्या, क्या कहा?" माली ने उसका अंतिम वाक्य न समझ पाकर पूछा।

"कह रहा हूँ, यह कोई मुश्किल काम नहीं है। इससे भी आप ही को फ़ायदा होगा। पलक झपकते आपके पास जाड़े के लिए जलावन की लकड़ी हो जायेगी, चिंता करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी।"

वृद्ध अचानक शिथिल पड़ गया। मेज़पोश की तरफ़ बढ़ा उसका हाथ वैसा ही रह गया। वह कुछ नहीं बोल पाया। चेहरे का रंग उड़ गया, होंठ कांप उठे।

"लीजिये, बारिश भी थम गयी," अब्दुजलील ने कहा। "इस साल तो फल भी इतने होंगे, जितने पहले कभी नहीं हुए होंगे।"

वृद्ध मौन था।

"अच्छा, तो हम चलते हैं। अता, आपके अख़रोट के नये बाग़ में फिर मुलाक़ात होगी," अब्दुजलील दरवाज़े की तरफ बढ़ा।

अध्यक्ष भी उठ खड़ा हुआः

"आपकी मदद के लिए आनेवाले लोगों से कह दीजिये कि वह पहले पेड़ काटने का काम शुरू करें। अख़रोट के इस पेड़ को गिराना इतना आसान नहीं होगा।"

"नहीं।"

"आपने क्या कहा?"

"मेरा मतलब है, लोगों की कोई ज़रूरत नहीं है," गुलामक़ादिर अता ने दरवाज़े की तरफ़ इशारा किया। शुक्रिया, हम ख़ुद ही उसे काट लेंगे।"

"आप मज़ाक़ तो नहीं कर रहे हैं?"

"मज़ाक़ कैसा? ख़ुद काटूँगा और काम ख़त्म। और लकड़ियाँ सीधे आपके घर डाल आऊँगा।"

"ठहरिये ज़रा ... आप जो कह रहे हैं? उसे समझते हैं? अब्दुजलील अका, ज़रा यहाँ आकर सुनिये, यह क्या कह रहे हैं!"

मगर अब्दुजलील अका कभी के जा चुके थे।

"सुनिये, गुलामक़ादिर अता, मैं तो आप ही का भला चाहता हूँ, मेरी बात समझने की कोशिश कीजिये..."

वृद्ध ने अध्यक्ष के जाने के बाद धड़ाक से दरवाज़ा बंद कर लिया। वह गुस्से के मारे कांप रहा था।

"लकड़ियाँ! तुझे काटकर लकड़ियाँ बनायी जाये, तो कैसा लगे!"

वह कुछ और भी कहना चाहता था, पर केवल हाथ झटकारकर चुप हो गया।

"हैरत होती है," आख़िर उसके मुँह से निकला। मालूम नहीं यह उसने अपने आपसे कहा या उसका मतलब ग्राम सोवियत के अध्यक्ष की बात से था।

बरामदे में लौटकर उसने ठंडी चायवाला बड़ा प्याला उठाया और एक घूंट में ख़ाली कर दिया, आस्तीन से मूँछें पोंछीं और एक बार फिर अख़रोट पर नज़र डाली। फिर जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता बाहर निकला। बाहर सुनसान था, कवल थोड़ी दूर फाटक के पास एक नंगा बालक झुककर ज़मीन पर हाथ जमाये उल्टे आकाश को देख रहा था।

माली को देखकर बच्चा मुस्करा उठा। कुछ दूरी पर सुखी घास से ऊपर तक भरा छकड़ा नज़र आया। वह उसकी तरफ़ चल पड़ा – उसे याद आ गया कि आज शनिवार है और उसे खाने का सामान ख़रीदने जाना है।

... शाम हुए वह संतुष्ट और कुछ हद तक ख़ुश हुआ घर लौट आया। अपना प्यारा गीत "हरे-भरे बाग़ों में गुज़रते हुए मैं ..." गुनगुनाते हुए उसने गोश्त काटा, आग सुलगायी और कुछ याद आने पर ठहाका लगाकर हँस पड़ा।

"ओफ़, ख़ूब है यह अब्दुजलील भी! कहता है, मैं तो बस इस अख़रोट के सहारे जीता हूँ! पर वह ख़ुद किसके लिए जीता है? तीन साल से दो कुम्मैत घोड़ों को पाल रहा है, घुड़सवारी के खेलों में इनाम जीतना चाहता है। क्या इतना भी नहीं समझता? हर आदमी की पसंद अपनी-अपनी होती है। मुझे अख़रोट का पेड़ पसंद है। तो इसमें बुराई क्या है?"

वृद्ध ने अख़रोट पर नज़र डाली और तुरंत हटा लीं। उसे अचानक लगा जैसे उसने अपनी शाखाएं ऐसे फैला ली है, जैसे कोई भयानक अजदहा अपने पंख फैलाता है। उसके कानों की लोलकियाँ तप रही थीं। उसका उत्साह फिर ठंडा पड़ गया। अब वह यंत्रवत् खाना पका रहा था। पुलाव बेस्वाद बना था और उसे ज़बरदस्ती गले के नीचे उतारना पड़ रहा था।

"काश, मुहम्मद अली मेरे पास होता," वृद्ध ने सोचा, "तब हम दोनों बैठकर बातें करते रहते। आख़िर सड़क मेरे ही घर के बीचोंबीच से क्यों निकाली जानी चाहिए? 'जाड़े के लिए लकड़ियाँ हो जायेंगी!' ख़ूब दूर की सूझी उसे!"

वृद्ध अहाते में निकला। चारों ओर अंधेरा छा चुका था, पेड़ों को पहचान पाना असंभव था।

सड़क पर घर के पास से एक कार गुज़री, तो दीवार पर अख़रोट के पत्तों की परछाई तैर गयी। वृद्ध एकाध मिनट खड़ा रहकर अंदर गया और लेटकर दुर्बलता के कारण आँखें मूंद लीं।

सुबह उसकी नींद रोज़ाना से जल्दी खुल गयी। उसका सिर झन्ना रहा था। पलंग से पैर लटकाये वृद्ध कुछ सोचता हुआ थोड़ी देर बैठा रहा, फिर उठकर आदत के अनुसार नाले के पानी से हाथ-मुँह धोकर ओसारे में गया। वहाँ उसके बढ़ईगीरी के औज़ार दीवारों पर सलीके से टंगे हुए थे। गुलामक़ादिर अता आरी और कुल्हाड़ी उठाकर अख़रोट के पास गये। उनका दिल तेज़ी से धड़क रहा था। हालांकि मौसम गर्म नहीं था, और रह-रहकर शीतल झोंके आ ही रहे थे, फिर भी उनके माथे पर पसीना चुहचुहा आया।

"मुहम्मद अली के आने तक ज़रा मैं ख़ुद ही काम शुरू करने की कोशिश करता हूँ। वर्ना वह बाद में कहेगा कि दादा इतन कमज़ोर हो गये हैं कि अकेले पेड़ को भी नहीं गिरा सकते।"

उन्होंने पेड़ की सख़्त छाल पर आरी चलाकर अपनी ओर खींची, पर हाथ काँप उठे और आरी झन्न से ज़मीन पर गिर पड़ी।

"नहीं, ऐसे काम नहीं चलेगा," वृद्ध ने सोचा। "अब काटना ही है तो ढंग से काटना चाहिए। यह क्या हो रहा है? मैं अपना ही लगाया पेड़ नहीं काट सकूंगा, कोई दूसरा नहीं काट सकेगा, तब सड़क कहाँ से निकलेगी, नये मकान कहाँ बनाये जायेंगे? इस वक़्त गाँव के लिए सबसे अहम क्या है? अख़रोट का पेड़ या सड़क? बेशक सड़क। यानी मुझे काटना ही चाहिए।"

उसने दुबारा आरी उठायी और अपना हौसला बढ़ाने के इरादे से बोलता रहा।

"अरे, बुढ़ऊ, तू भी यह क्या खेल करने लगा। चला ना आरी। हाथ क्यों काँप रहे हैं? कोई परवाह नहीं, चला!"

उसने ज़ोर से आरी चलायी, वह किसी ठूंठ से टकरायी और झन्न से टूट गयी। बूढ़े ने हाँफते हुए अग़ल-बगल देखा और अहाते से बाहर निकल आया।

सामूहिक फ़ार्म के कार्यालय में अब्दुजलील और ग्राम सोवियत का अध्यक्ष बैठे कुछ काग़ज़ात देख रहे थे।

"आइये, आइये," अध्यक्ष ने माली को अंदर आने को कहा और न जाने क्यों उसका चेहरा अचानक लाल हो उठा।

"अब्दुजलील!" वृद्ध ने बिना दुआ-सलाम के बात छेड़ी। "गाड़ी दो, मैं नये घर में जा रहा हूँ।"

"यह हुई ना बात!" वह ख़ुश हो उठा। "हम अभी आदमी और गाड़ी भेजते हैं।"

एक घंटे के अंदर-अंदर माली का सारा सामान बाँधकर नये घर में पहुँचा दिया गया। सूने पुराने घर में केवल गृहस्वामी रह गया। वह बरामदे में खंभे के पास अपने प्रिय स्थान पर बैठा अख़रोट के पेड़ को दोषी की तरह देख रहा था। न जाने वह कितनी देर तक ऐसे ही बैठा रहता, अगर बोर्डिंग-स्कूल से मुहम्मद अली न आ गया होता। वृद्ध की आँखों में आँसू छलछला आये, न जाने ख़ुशी के कारण या उसके बूढ़े दिल को लगी ठेस के कारण।

"अच्छा, तुम आ गये, बेटा," ग़ुलामक़ादिर अता ने चोग़े के गरेबान से मुंह ढाँपकर कहा। "मैं तो तुम्हारा इंतज़ार करते-करते थक गया था। इसका मतलब है कि अब पुलाव हम नये घर में पकाया करेंगे। तुम्हें पता है, वह कहाँ है?"

"मुझे तो बहुत पहले से पता है," मुहम्मद अली फट से बोल उठा, मानो उसने कोई राज़ खोल दिया हो। उसके गाल लाल हो उठे। "मुझे अब्दुजलील अका ने दिखाया था। बहुत ही बढ़िया है!"

"तो फिर अपने दादा को वहाँ ले चलो।"

नया मकान वास्तव में अच्छा था। लंबा-चौड़ा अहाता था, ऊंचा बरामदा, बड़े, रोशनीदार कमरे।

बुज़ुर्ग ने पहली बार नये मकान में पोते और अपने लिए पुलाव पकाया। उसे अनायास ही अपने पुराने घर के पास चल रहे बुलडोज़र का शोर सुनाई दे गया, उसकी व्याकुलता से बालक परेशान न हो, इसलिए वह अपना प्रिय गाना गाने लगाः "हरे-भरे बाग़ों से गुज़रता हूँ मैं ..." बुलडोज़र की घर-घर रात को भी सुनाई देती रही थी।

...पिछले सप्ताह मुहम्मद अली दादा को लेकर नये मार्ग पर घूमने निकला। वृद्ध ने बहुत टालमटोल की, पर वह आख़िर पोते को इनकार नहीं कर सका। नया मार्ग समतल चौड़े फीते की तरह फैला था, पैरों तले बजरी किरकिरा रही थी।

ज्यों-ज्यों गुलामक़ादिर अता अपने पुराने घरवाली जगह के निकट पहुँचते गये, त्यों-त्यों उनके दिल की धड़कन तेज़ होती गयी। वहाँ उस जगह बरामदा था। अब सब हमवार हो चुका है। नहर से निकले नाले का तो नामोनिशान तक नहीं रहा। पर यह क्या है? क्या नया नाला खोदा गया है?

वृद्ध ने नाले की सीध में आगे नज़र डाली और अवाक् रह गया... सड़क के किनारे कुछ जाना-पहचाना-सा पेड़ गर्व से अपनी शाखाऐं फैलाये खड़ा था। उसके नीचे एक नयी नीली बेंच रखी हुई थी। उसने पहले कभी इस पेड़ की तरफ़ क्यों ध्यान नहीं दिया? लेकिन ... अरे, यह तो अख़रोट है! उसका बूढ़ा अख़रोट!"

"शुक्रिया..." माली पोते को गले लगाकर बुढ़ापे की कमज़ोरी के कारण उसके कंधे का सहारा लेकर केवल इतना ही कह सका। पोता बड़ी सावधानी से दादा को सहारा दिये रहा।

वृद्ध की आंखों में आँसू छलछला आये थे। लेकिन अब वह उन्हें नहीं छिपा रहा था।

लतीफ़ महमूदोव

(जन्म– 1935-1966)

लतीफ़ महमूदोव गद्य-लेखक हैं। उनकी पहली कहानियाँ सन् 1957 में प्रकाशित हुई। वह मुख्यतया बालकों व किशोरों के लिए लिखते हैं। उनकी पुस्तकों "चिनार", "उक़ाब" और "तूफ़ानी नदी का रहस्य" का रूसी भाषा में अनुवाद हो चुका है। लतीफ़ महमूदोव नाट्यकला विधा में भी कार्य करते हैं। उनके नाटक "लड़का, जिसे उक़ाब उठा ले गया", "रहस्यमय पत्र" तथा "अली और वली" जनतंत्र के थियेटरों में सफलतापूर्वक मंचित किये जाते हैं।

चिनार

बस स्तेपी में रुकी। उससे उतरकर मैंने पसोपेश में चारों ओर देखा, समझ में नहीं आ रहा था कि किधर जाऊं। चारों ओर न कोई पेड़ था, न ही कोई घर – केवल खाली स्तेपी। सिर्फ़ बड़ी सड़क से थोड़ी दूरी पर कच्चे रास्ते के किनारे सरकंडों के छप्परवाला छोटा-सा चायख़ाना नज़र आया और उसके पास एक विशाल चिनार वृक्ष। अस्ताचलगामी सूरज की अरुणिम चमक उसकी फैली डालों पर अठखेलियाँ कर रही थी। वह भव्य था, किसी स्मारक की तरह और उसकी पत्तियाँ आहिस्ता से सरसरा रही थीं, मानो वह स्तेपी की गर्म हवाओं से नाराज़ हो।

ध्यान से देखने पर मुझे चिनार के तले एक क़ब्र नज़र आयी। ज़मीन को फोड़कर बाहर निकली पेड़ की टेढ़ी-मेढ़ी मजबूत जड़ें अजीब-से ढंग से क़ब्र के पत्थर के चारों ओर लिपटी हुई थीं, मानो उसकी रक्षा कर रही हों।

मैंने कब्र के पास जाकर पत्थर पर लिखा अभिलेख पढ़ने की कोशिश की। लेकिन समय ने अक्षरों को इस तरह मिटा दिया था कि कुछ समझ पाना असंभव था।

वहाँ से गुज़रती किसी मोटर के इंतज़ार में मैं कच्चे रास्ते के किनारे बैठ गया।

झुटपुटा होने लगा था। हवा शांत थी। चारों ओर कोई आवाज़ नहीं। लगता था जैसे दिन की कड़ाके की गर्मी से क्लांत स्तेपी सोने जा रही है।

"खों, खों!" कोई खांसा। मैंने मुड़कर देखा, तो एक वृद्ध को खड़ा पाया। वह दरमियाने क़द का और दुबला-पतला था।

"तुम्हारा क्या यहाँ देर तक बैठे रहने का इरादा है?" उसने किंचित् व्यंग्यपूर्ण स्वर में पूछा।

"सलाम, अता," अप्रत्याशित प्रश्न के उत्तर में मैं बुदबुदाया और खड़ा हो गया।

"सलाम, सलाम ... ज़रूर भूख लगी होगी?! चलो, यहाँ से एक भी गाड़ी मेरे चायख़ाने के पास रुके बग़ैर नहीं जाती, ज़रूर रुकती है!"

मैं सूटकेस उठाकर धीरे-धीरे वृद्ध के पीछे चल पड़ा।

दरवाज़े के पास रुककर वृद्ध ने कमरबंद में से माचिस निकाली और लालटेन जलाकर किवाड़ पर लटका दी।

"ख़ुश आमदीद! मेहमानों के आने पर मुझे हमेशा ख़ुशी होती है," उसने मुझे आगे निकलने देते हुए कहा।

जब तक मैं तख़्त पर आराम से बैठा, वृद्ध एक ट्रे में मिठाइयाँ, चायदानी और प्याली ले आया और उसे मेरे सामने रख दिया। फिर उसने ताक़ में तह करके रखी हुई रज़ाइयों के नीचे से मुलायम नान निकालकर उसके टुकड़े किये। मुझे आश्चर्यचकित होते देख वह मुस्कराकर बोलाः

"हवा से बचाता हूँ, ताकि सूख न जाये ... तुम खाओ, बेटा, शर्माओ मत। अच्छा, मैं अभी आता हूँ।"

वृद्ध बाल्टी उठाकर बाहर चला गया। अधखुले किवाड़ से टकराकर पगलायी हवा फिर सांय-सांय करने लगी। पल भर बाद ही उसने उसे इतने ज़ोर का थपेड़ा मारा कि लगा जैसे किवाड़ के परखचे उड़ जायेंगे। लालटेन फड़फड़ाकर बुझ गयी।

मैंने उठकर किवाड़ बंद किये और लालटेन दोबारा जला दी। चायख़ाने में फिर उजाला हो गया। वह आरामदेह लगने लगा। अचानक ऐन मेरे सिर के ऊपर कुछ सरसराया। छत पर नज़र डाली, देखा पिंजरे में बटेर है। वह बार-बार पतली जाली से टकराता हुआ फड़फड़ा रहा था।

वृद्ध लौट आया।

"कैसी हवा चल रही है, लगता है जैसे उड़ा ले जायेगी। हमेशा रात होते-होते उधम मचाने लगती है..." वह दरवाज़े की चिटकनी लगाकर मेरे सामने बैठ गया। "मैंने सड़क के किनारे दो सेब के पेड़ लगाये हैं और अब रोज़ शाम को उनमें पानी देने जाता हूँ ... तुम यह क्या करते हो, बेटे, न खा रहे हो, न पी रहे हो। कौन जाने गाड़ी का कितनी देर और इंतज़ार करना पड़े।"

मेरे ना-ना करने के बावजूद वृद्ध ने मेरी प्याली में चीनी का एक बड़ा टुकड़ा डाल दिया और एक और नान के टुकड़े करके रख दिये।

हम चुपचाप एकाग्रचित बैठे ख़ुशबूदार हरी चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे और एक दूसरे को ग़ौर से देख रहे थे।

सबसे पहले मौन वृद्ध ने भंग किया।

"तुम मुझे माफ़ करना ऐसी पूछताछ के लिए ... मेरे ख़याल से इसमें कोई बुरी बात नहीं है ... तुम शहरी हो, यह तो साफ़ नज़र आता है। पर तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा इधर कैसे आना हुआ?"

"शहर में घिचपिच रहती है," मैंने मज़ाक़ में कहा, "सूटकेस उठाया और खुली स्तेपी की ताज़ा हवा में सांस लेने आ पहुँचा।"

वृद्ध ने हैरानी से मेरी तरफ़ देखा।

"वैसे तो, अता, मैं सरकारी फ़ार्म में जा रहा हूँ। बस से उतरा और सोच में पड़ गया कि किधर जाऊँ..."

वृद्ध जीवंत हो उठा।

"शाबाश!" उसने घुटने पर हाथ मारा। "जल्दी ही सरकारी फ़ार्म की गाड़ी आनेवाली है। मैं ख़ुद तुम्हें उसमें बिठा दूंगा। ज़रा अपनी प्याली मुझ देना। तुम शर्माओ मत ... सच कहूँ, तो मैं भी शहरी हूँ। क़ाराताश मुहल्ले का रहनेवाला हूँ, उसका नाम सुना है? सुना है न? अब साल में एक बार बेटी से, नातियों से, दोस्तों से मिलने शहर जाता हूँ। कुछ भी कहो, मैं स्तेपी का आदी हो चुका हूँ। जिसने एक बार भी स्तेपी की हवा में सांस ली, वह कभी यहाँ से नहीं जायेगा। क़सम से! बेटी के यहाँ महीना भर रहने के इरादे से जाता हूँ, पर रह नहीं पाता, तीन-चार दिन बाद ही वापस

स्तेपी लौटने को मन करने लगता है और लौट आता हूँ। क्या किया जाये, आदमी की क़ुदरत ही ऐसी है – उसका दिल वहीं जाने को करता है, जहाँ उसने अपनी ज़िन्दगी का काफ़ी बड़ा हिस्सा गुज़ारा हो।"

वृद्ध मुझे चाय की प्याली देकर सोच में डूब गया। उसके माथे पर झुर्रीदार बल पड़ गये, मानो वह कोई बहुत पुरानी, अविस्मरणीय बात याद कर रहा हो।

"मैं सारी ज़िन्दगी स्तेपी से लड़ता रहा पर अब हार चुका हूँ। उतनी ताक़त नहीं रही। मेरी जवानी स्तेपी की हवा की तरह उड़ गयी, लेकिन मुझे बिलकुल भी अफ़सोस नहीं होता। बिलकुल भी नहीं। जवानी तो नदी की तरह ही होती है – उसमें उफ़ान आता है, झाग उठते हैं; सबसे अहम बात है लगाम अपने हाथों में संभाले रखना : ठीक से संभालोगे – वह रेगिस्तान को फले-फूले बाग़ों में बदल देगी, और अगर ढील दी – सैकड़ों छोटी-छोटी धाराओं में बंटकर बह जायेगी, अपनी ताक़त गंवा बैठोगे, कोई फ़ायदा नहीं होगा। जवानी की क़दर करनी चाहिए, बेटा। क्योंकि वह अनमोल है। काश, तुमने यह स्तेपी पहले देखी होती!"

"बचपन में एक बार अब्बा के साथ यहाँ से गुज़रा था। अगर मेरा अंदाज़ ग़लत नहीं है, तो यहाँ सरकारी फ़ार्म बनाने का इरादा था। लेकिन उस चिनार की कुछ याद नहीं आती।"

"सब बदल गया है। तुम, बेटा, अब कुछ नहीं पहचान पाओगे। अब चारों तरफ़ बाग़ ही बाग़ है। इसी साल बेकरी और नया सिनेमाघर बनाये गये हैं। चायख़ाना भी हाल ही में बना है। कल सरकारी फ़ार्म का निदेशक खेत-कैंप के बारे में सलाह करने आया था। एक राज़ की बात बताऊं तुम्हें, चायख़ाना बनाने का कोई इरादा नहीं था, पर अब लोग आते रहते हैं, तुम ख़ुद ही देखते हो। लेकिन ज़िला केंद्र दूर है। बाहर से आया आदमी कहाँ जाये? किससे पूछे? चारों तरफ़ अछूती धरती है। इसी साल उसे खेती लायक़ बनाना शुरू किया गया है। इसीलिए मैंने सरकारी फ़ार्म के अफ़सरों को सलाह दी। मैंने उन्हें ऊँच-नीच समझायी, कहा, अच्छा हो अगर यहाँ चायख़ाना बना दिया जाये। उन्हें मेरा सुझाव पसन्द आ गया, और तुम देख ही रहे हो, चिनार भी सबको अपनी तरफ़

खींचता है! बेटा, ज़िंदगी में अकसर ऐसा होता है कि जवानी की याद दिलानेवाली हर चीज़ बुढ़ापे में अपनी और नज़दीक हो जाती है, लगता है जैसे तुम उनके साथ आग और पानी से जूझ चुके हो।''

वृद्ध चुप हो गया। वह मौन विचारमग्न बैठा प्याली के बेल-बूटों को एकटक ताकने लगा। मैं भी चुप था, मुझे वहाँ छायी शांति को भंग करने की इच्छा नहीं हुई।

मुझे लगा जैसे वृद्ध को अतीत की दुखदायी स्मृतियाँ सता रही हैं, जो मुझसे हुई बातचीत के दौरान अचानक उभर आयी हैं – उसका चेहरा उदास हो गया, लटक गया। मुझे वृद्ध से चिनार तले बनी क़ब्र के बारे में पूछने की इच्छा हुई, पर मैं तुरंत साहस न कर सका। थोड़ी देर बाद मैंने बड़ी सावधानी से सवाल कर ही डाला। वृद्ध ने या तो मेरी बात सुनी ही नहीं, या फिर उसने जवाब नहीं देना चाहा – वह कुछ नहीं बोला।

दूर से शोर आता सुनाई दिया। मैं कुछ समझ नहीं पाया – हवा है या निकट आती गाड़ी?! वृद्ध धीरे से उठकर बाहर निकल गया। वह शीघ्र ही लौटकर कराहता हुआ मेरे सामने उसी जगह पर बैठकर बोला :

''मैंने कहा था न कि गाड़ी आयेगी ... पर तुम खड़े मत होओ। गाड़ी को पहुँचने में अभी बीस-तीस मिनट लगेंगे। यहाँ रुके बिना नहीं जायेगी। स्तेपी में आवाज़ हमेशा कानों को धोखा देती है। गाड़ी अभी दूर है, पर उसके इंजन की घरघराहट की हवा यहाँ पहुँचा रही है ... अच्छा तो, थोड़ी चाय और पी लें? इनकार मत करना, मैं अभी बना देता हूँ। बैठकर गाड़ी के आने तक गपशप करेंगे।''

मैं अपनी जगह पर बैठ गया।

समोवार काफ़ी देर पहले बुझ चुका था। वृद्ध ने दो-तीन छिपटियाँ डालकर आग सुलगायी। किवाड़ चरमराकर थोड़ा खुल गया, हवा अंदर आने लगी। चाँद निकल आया और उसने दरवाज़े के सामने ज़मीन के छोटे-से टुकड़े को रोशन कर दिया, लगा जैसे उस पर चूना पोत दिया गया हो।

अब मुझे गाड़ी के इंजन की घरघराहट साफ़ सुनाई दे रही थी। वृद्ध ने चाय तैयार कर ली।

"आपको, अता, परेशान नहीं होना चाहिए था," मैंने कहा।

"इसमें परेशान होने की क्या बात है, शायद ड्राइवर भी चाय पीना चाहे।"

हमने एक-एक प्याली चाय पी कि गाड़ी आ पहुँची। हम निकलकर रास्ते पर आ खड़े हुए। चाँद का बड़ा थाल मानो लंबी काली छाया डाल रहे चिनार के ऊपर टंग गया था। ड्राइवर ने वृद्ध से दुआ-सलाम की और मेरी तरफ़ देखकर सिर हिलाया, पर शायद उसका गाड़ी से उतरने का इरादा नहीं था।

"सफ़र कैसा रहा, बेटा?" वृद्ध ने पूछा।

"अच्छा रहा, मीरहैदर अता ... क्यों, गाँव चलें?"

"नहीं, बेटा, मैं नहीं जा सकता, अभी खेत से तीन आदमी और आनेवाले हैं।"

"हाँ..." युवक ने सिगरेट सुलगायी। वह थोड़ी देर चुप रहकर क्षमा-याचना के स्वर में बोला। "माफ़ कीजिये, अता, मैं आपका काम नहीं कर सका।"

"कोई बात नहीं, बेटा, अगली बार ले आना। अरे, तुम गाड़ी में क्यों बैठे हो, उतरो, चाय पियेंगे।"

"जब आपको लेने आऊँगा तभी पिऊँगा, अभी मुझे कुछ ज़रूरी काम है।"

"ऐसी बात है, तो जाओ। बस एक उधर जानेवाले आदमी को लेते जाओ।"

युवक ने मेरी तरफ़ मुड़कर कुछ ऐसे स्वर में बोला जो अधिक विनम्र न था।

"जल्दी से बैठिये।"

मुझसे हाथ मिलाते हुए मीरहैदर अता ने मुझसे उन्हें न भूलने और मौक़ा मिलते ही आने के लिए कहा। मैंने वृद्ध का अतिथि-सत्कार के लिए धन्यवाद किया और ड्राइवर के पास बैठ गया।

ट्रक थोड़ी दूर जाकर जिला केंद्र की तरफ़ जानेवाली स्तेपी की एक सड़क पर मुड़ गया।

मैंने केबिन की खिड़की से सिर निकालकर देखा – चायख़ाने के दरवाज़े पर जलती लालटेन मुश्किल से नज़र आ पा रहे बिंदु में बदल गयी थी। और थोड़ी देर बाद वह पूरी तरह नज़रों से ओझल हो गयी। चाँदनी में नहाया हुआ चिनार दूर से और अधिक भव्य और रहस्यमय लग रहा था।

मैं रह-रहकर वृद्ध के बारे में सोच रहा था। मुझे बड़ा बुरा महसूस हो रहा था कि मैंने उससे बड़ी सर्दमिज़ाजी से विदा ली। मैं इसके लिए ड्राइवर का दोषी ठहरा रहा था, जो थोड़ी देर भी और इंतज़ार न कर सका। मैं उसे अपलक देख रहा था। शायद उसे भी बुरा महसूस हो रहा था। वह चुपचाप सिगरेट सुलगाकर हर बार इतने ज़ोर-ज़ोर से कश खींचने लगा कि सिगरेट की लाल रोशनी से उसका चेहरा आलोकित हो उठने लगा।

अचानक ड्राइवर ने गाली दी और क़सूरवार की तरह मेरी तरफ़ देखा।

"माफ़ कीजिये। मैं कभी गाली नहीं देता। अचानक मेरे मुँह से निकल गयी। आप, लगता है, मुझसे नाराज़ हैं कि मैंने आपके साथ इतनी जल्दबाज़ी की?" उसने पूछा।

यह भाँपकर कि मैं इस पर आपत्ति करना चाहता हूँ, वह बोला:

"मैं तो देख रहा हूँ। मैं सारे रास्ते आप पर नज़र रखे हुए हूँ ... आप मेहरबानी करके मुझे माफ़ कर दीजिये।"

फिर उसने मुझे बताया कि मीरहैदर अता ने उससे फूलवाले के पास जाकर उनके लिए गुलाब की क़लमें लाने को कहा था, पर ट्रक के इंजन में कुछ ख़राबी हो गयी और वह शाम तक उसी में लगा रहा। वह फूलवाले के पास नहीं जा पाया। और यह विचार उसे सता रहा था।

मैंने उसका चित्त प्रसन्न करने की ठानी।

"आप इसके बाद भी तो शहर जायेंगे न?"

"हाँ, जाऊँगा..."

"तब लेते आइये।"

"बात लाने की नहीं है। लाने को तो मैं ले आऊँगा ... पर दिल में बहुत बुरा महसूस हो रहा है। मीरहैदर अता इस इलाक़े में सबसे पहले बसनेवालों में से हैं। आपने सड़क के दोनों तरफ़ पेड़ देखे? हाँ, तो उन्हें मीरहैदर अता ने ही लगाया है। जानते हैं, हम सब उनकी कितनी इज़्ज़त करते हैं? और मुझे बहुत बुरा लग रहा है कि मैं उनका काम न कर सका।"

ड्राइवर ने पीठ सीट पर टिका ली और छज्जेदार टोपी गुद्दी पर खींच ली, ठण्डी साँस ली और फिर सिगरेट सुलगा ली।

"लेकिन आजकल तो फूल लगाने का मौसम नहीं है," मैंने उसे तसल्ली दिलाने की कोशिश की।

ड्राइवर ने आश्चर्य से मेरी तरफ़ देखा।

"मैं कह तो रहा था – वह सब कर सकते हैं!... सड़क के किनारे चिनार उन्होंने गर्मियों में लगाया था, भरी गर्मी में। और जहाँ तक फूलों का सवाल है, तो यह तो उनके लिए बायें हाथ का खेल है!"

मुझे चिनार के नीचे क़ब्र की याद आ गयी और मैंने सारी बात पूछने की ठान ली:

"यानी चिनार मीरहैदर अता ने लगाया? शायद यह बहुत पुरानी बात है, क्यों?"

ड्राइवर मौन रहा, शायद सोच रहा था कि संयोगवश मिले सहयात्री को पूरा क़िस्सा सुनाना चाहिए या नहीं। अंत में उसने फ़ैसला कर लिया।

"हाँ, चिनार मीरहैदर अता ने लगाया था। लेकिन आप अगर उनसे पूछें, तो वह आपको कुछ नहीं बतायेंगे। उन्हें अपनी पुरानी यादें कुरेदना बहुत बुरा लगता है। लोग बताते हैं, वह इस इलाक़े में खेत में मज़दूरी करने आया करते थे। जमींदार के रेवड़ भी चराते थे। इसीलिए वह स्तेपी का चप्पा-चप्पा अच्छी तरह जानते हैं।

उन्होंने शादी एक मामूली लड़की से की, जो एक ग़रीब गड़रिये की बेटी थी। उनके दो बच्चे हुए – बेटी, जो अब शहर में डाक्टर है, और

बेटा – सरकारी फ़ार्म का मुख्य मैकेनिक ... हाँ, तो मैं क्या कह रहा था? ... हाँ, एक बार ज़मींदार का बेटा अपने दोस्त के साथ यहाँ शिकार करने, क़िमिज़* पीने आया और गड़रिये की बीवी पर उनकी बुरी नज़र पड़ गयी। वे रात को उनके यहाँ रुक गये। जब गड़रियो रेवड़ संभालने चला गया, बाय का बेटा अपने यार के साथ उसके खेमे में घुसकर उसकी बीवी के साथ छेड़छाड़ करने लगा। उसकी चीख़ सुनकर मीरहैदर अता भागे-भागे आये। उनमें से एक छुरा निकालकर गड़रिये पर टूट पड़ा, पर पत्नी उनके बीच आ गयी ... छुरा सीधा उसके दिल में घुस गया ..."

मख़मल जैसे काले आकाश में असंख्य तारे छिटके हुए थे। उनमें से एक टूटा और उसके पीछे-पीछे रुपहली नीली पूंछ बन गयी, जो ख़ंजरे से इतनी मिल रही थी कि मेरे रोंगटे खड़े हो गये।

"और हत्यारों का क्या हुआ? क्या वे बचकर भाग निकले?" मैंने ड्राइवर से पूछा।

"कहाँ भागते! गुस्से से पागल हुए गड़रियों ने उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अगले दिन मीरहैदर अता ने अपनी बीवी का दफ़नाया। कड़ाके की गर्मी पड़ने लगी और रेवड़ों को जिज़ाख़ हाँककर ले जाना पड़ा। गड़रिये ने इसलिए कि क़ब्र की जगह वह भूल न जाये, वहाँ चिनार लगा दिया और पूरे तीन साल तक दूर से मशक में पानी ला-लाकर उसे सींचता रहा। आपने ख़ुद ही देखा है, कितना बड़ा हो गया है वह ..."

हम मौन चलते रहे, गाड़ी का इंजन एकरस घर-घर करता जा रहा था। मैं निस्स्वार्थ नारी के बारे में, उस चिनार के बारे में सोच रहा था, जो अमर प्रेम के प्रतीक के रूप में खड़ा था।

---

* क़िमीज़ – घोड़ी के दूध से बनाया खट्टा नशावर पेय।

उकतम उस्मानोव

(जन्म– 1938)

उकतम उस्मानोव गद्यकार और पत्रकार हैं। उन्होंने सन् 1960 में ताशक़न्द राजकीय विश्वविद्यालय के इतिहास संकाय की शिक्षा समाप्त की। वह "लेनिन उचूक़ूनी" ("लेनिनवादी चिंगारी") तथा "सोवेत उज़्बेकिस्तोनि" ("सोवियत उज़्बेकिस्तान") समाचारपत्रों के सम्पादक-मण्डलों में कार्य कर चुके हैं। उनकी कृतियों में कहानी-संग्रह "लड़के ने शर्त लगाई", "वसन्त के तूफ़ान", "अशान्त रात" तथा लघु-उपन्यास "लड़कपन की राहें" प्रमुख हैं। उनके उपन्यास "भंवर" से उन्हें बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई है।

अड़ियल मुहम्मद

वह दुबला-पतला था और उसका बड़ा-सा सिर इतनी लंबी गर्दन पर जमा हुआ था कि कभी-कभी लगता था जैसे उसका अस्तित्व छरहरे शरीर से बिलकुल ही अलग हो। सूखे-से चेहरे पर नीली आंखों में निर्भीकता झलकती थी, पर कुछ लोगों के ख़याल में वे चुनौती-भरी थीं। उसका दायां हाथ तो लगता था जैसे ख़ासतौर से मूंछों पर फेरने के लिए ही था। और जब कभी मुहम्मद को गुस्सा आता, ऐसे में अगर फ़ार्म का अध्यक्ष भी नज़र आ जाता, तो उसको भी ख़ैर न होती। हालांकि लोग उसे आदरपूर्वक "मुहम्मद अका" कहकर पुकारते, पर पीठ पीछे ज़रूर ही कहतेः "अड़ियल मुहम्मद! उफ़, कितना अड़ियल है।"

चौराहे पर शाखी बूढ़े चिनार के तले आरामदेह चायख़ाना है। वहां सफ़ेद दाढ़ीवाले इब्राहीम अता आपको ख़ुशबूदार चाय पिलायेंगे और अगर अच्छे मूड में हुए, तो ज़िद्दी मुहम्मद के बारे में अनोखे क़िस्से भी सुनायेंगे।

घर पर

... क़िस्मत का खेल देखिये। उस अड़ियल को टोली-नायक बना दिया गया। वैसे बेशक वह अच्छा आदमी है और उसके बारे में बुरा कोई नहीं कह सकता, लेकिन ज़बान का बड़ा तेज़ है। कुछ लोगों को यह अच्छा नहीं लगता। मैं "कुछ" कह रहा हूं, पर ज़रा उसकी बीवी से पूछकर देखिये! सलामतख़ोन हमारे पड़ोस में रहती है। आप शायद यक़ीन

न करें, कुछ दिन हुए वह आंखों में आंसू-भरे हमारे यहां दौड़ी-दौड़ी आयी। आप जानते हैं, क्या हुआ था?

... सवेरे-सवेरे मियां-बीवी चाय पी रहे थे। लगता था सब ठीक-ठाक है। मियां अख़बार पढ़ रहा था और चाय की प्याली पर प्याली ख़ाली किये जा रहा था, बीवी बड़ी लगन से प्याली में चाय डाल रही थी, ताज़ा मलाई और मुलायम नान उसकी तरफ़ सरकाती जा रही थी। लेकिन जैसे ही मुहम्मद ने खेत जाने के लिए दहलीज़ पर पांव रखा, सलामतख़ोन अचानक कह उठी।

"आज मैं घर बैठूंगी।" और लगी रोने-बिलखने। "आप ज़रा मेरी तरफ़ देखिये, मेरी हालत क्या हो गयी है। इसे क्या आप औरत का सिर कह सकते हैं?!" सलामत ने पूरे ज़ोर से अपनी चोटियां खींचीं। "और ये? ये क्या आपको ज़नाने हाथों जैसे लगते हैं?!" उसने अपने खुरदरे, हवा और धूप की मार खाये हाथ उसे दिखाये।

"ऐ, औरत, लगता है, तेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है!" मुहम्मद चिल्ला पड़ा।

उसे कभी इसकी उम्मीद न थी और शुरू में उसे कुछ सूझा नहीं। लेकिन पल भर में उसकी आंखों में वही भाव झलक उठा, जिसके लिए उसका नाम "अड़ियल मुहम्मद" धरा गया था।

दूसरों से मैं क्या उम्मीद करूं, जब मेरी अपनी बीवी ही इस तरह की हरकत करती है! या ख़ुदा! ऐसे वक़्त, जब काम ज़ोरों पर है, इसे सिंगार करने की सूझी है! तुम अगर जानना चाहो, तो बता दूं कि तुम मुझे ऐसी ही अच्छी लगती हो। सुनो, फ़ौरन काम पर जाओ!..."

लेकिन सलामत पूरे दिन घर बैठी सजती-संवरती रही।

शाम को मुहम्मद मुँह फुलाये घर लौटा। बनी-ठनी बीवी की तरफ़ उसने नज़र उठाकर भी नहीं देखा। वह मेज़ पर बैठा, बिना बीवी के सवालों का जवाब दिये अपनी मूंछों पर बल देता रहा। सलामत का दिल बैठ गया। वह तीन दिन तक मियां की तरफ़ प्यार-भरी नज़रों से देखती रही, प्यार का इज़हार करती रही। लेकिन मुहम्मद चुप्पी साधे रहा। जब उससे और बर्दाश्त न हो सका, वह आंखों में आंसू-भरे पड़ोसियों के पास

पहुंची—घरवाले से मेरी सुलह करा दीजिये।

तो यह बात है, भाई! क्या यह सब सुनने के बाद भी आप कहेंगे कि वह अड़ियल नहीं है?!

मीटिंग में

ऊफ़, कैसी तेज़ ज़बान है मुहम्मद की! बेहतर होगा, ऐसे में उसे कभी नज़र न आइये, ऐसी गत बनायेगा कि ख़ुदा ही बचाये! किसी का भी लिहाज़ नहीं करता।

हाल ही में हमारे यहां ज़िले से एक आयोग के आने पर मीटिंग हुई थी। फ़सल की कटाई के बारे में विचार हुआ। काफ़ी गर्मागर्म बहस हुई – किसी की तारीफ़ की जा रही थी, किसी की बुराई। हमारे गांव के क्या बच्चे, क्या बूढ़े, सभी हमारे गौरव – कपास के बारे में फ़िक्रमंद रहते हैं। लेकिन हर कोई तो खेत में नहीं जा सकता। मिसाल के लिए लेखपाल शाइस्लाम अका को ही लीजिये। उनकी सेहत बेशक बहुत अच्छी है और कपास के गोदाम में वह बहुत काम आ सकते हैं! लेकिन बेचारे को दिन में गिनतारे पर इतनी खटर-पटर करनी पड़ती है कि थक जाते हैं। तो लेखपाल को मीटिंग में बैठे-बैठे झपकी आ गयी।

मुहम्मद ने यह देखकर हाथ खड़ा कर दिया। सभापति-मण्डल के सदस्यों ने सोचा कि टोली-नायक शायद कोई महत्त्वपूर्ण बातें कहना चाहता है।

"बहुत दिन हुए एक आलसी था," मुहम्मद ने अचानक बोलना शुरू किया। सबके मुँह खुले रह गये। पर मुहम्मद ने धीरे से मूंछों पर हाथ फेरकर, बिना किसी पर ध्यान दिये बोलना जारी रखाः "उसे बस दिन भर सोना आता था, खाने तक के लिए वह ख़ुद नहीं उठता था – उसे जगाना पड़ता था। एक बार लगातार दो दिन और दो रात सोने के बाद उसने किसी तरह आंखें खोलीं, पर उसी वक़्त उसे अफ़सोस हुआः 'कितना अच्छा होता, अगर आदमी के दो हिस्से हो सकते होतेः तब एक हिस्सा तो बराबर सोता रहता और दूसरा जागता रहता, खाता-पिता रहता...' मैंने आपको यह मज़ाकिया क़िस्सा क्यों सुनाया?" मुहम्मद ने अपनी बात

पूरी की, मुस्कराया तक नहीं। "जहां हम बिना अपने आराम, यहां तक कि नींद का भी ख़याल किये बिना योजना पूरी करने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करते हैं, वहां हमारे लेखपाल-शाइस्लाम अका, ख़ुदा आपको सेहत बख़्शे, न सिर्फ़ रात को घोड़े बेचकर सोते हैं, बल्कि दिन में भी झपकी लेने से बाज़ नहीं आते..."

अरे, भाई, आप सोच भी नहीं सकते कि हॉल में कैसे ठहाकों पर ठहाके लगे। हमारे मेहमानों के तो ऊंघते शाइस्लाम अका को देख-देखकर हंसते हंसते पेटों में बल ही पड़ गये। तो अड़ियल मुहम्मद ने ऐसे, एक इज़्ज़तदार आदमी को सरेआम बदनाम कर दिया।

कपास के खलियान में

यह पिछले सोमवार की बात है। हां, उस दिन ज़िला केंद्र से एक लड़का पोस्टर लेकर आया था, जिन्हें टोली के कैंपों में चिपकाना था। अध्यक्ष ने चायख़ाने में आकर मुझे कुछ पोस्टर दिये और बोलेः "इन्हें ज़रा अड़ियल मुहम्मद को पहुंचा दो।"

खलियान के पास पहुंचते वक़्त मुझे टोली-नायक और टाइमकीपर में हो रही तू-तू मैं-मैं सुनाई पड़ी। सच कहूं, तो मुहम्मद अपने ज़रा सुस्त मददगार को झाड़ लगा रहा था। आपे से बाहर हुए जा रहे टोली-नायक का गुस्सा कुछ ठंडा करने के इरादे से मैंने जल्दी से पोस्टर उसकी तरफ़ बढ़ा दियेः

"सुनो, तुम, कभी न थकनेवाले, अध्यक्ष ने तुम्हारे लिए कुछ भेजा है। ज़रा रसीद पर दस्तख़त कर दो।"

"यह क्या है?" मुहम्मद गुस्से में पलटा।

"शायद पोस्टर हैं। अध्यक्ष तुम्हारा ख़याल रखते हैं ... लेकिन कुछ भी हो तुम्हें गुस्सा बड़ी जल्दी आ जाता है, मुहम्मद।"

टोली-नायक ने मुझ पर तीखी नज़र डाली, पोस्टर खोलकर ध्यान से देखे और उन्हें फिर से लपेट दिया।

"ये काग़ज़ वापस संभालो, हमें इनकी ज़रूरत नहीं है। क्या फ़ायदा काग़ज़ से! हां, तो दस्तख़त कहां करूं?"

मैंने न चाहते हुए भी पर्ची उसकी तरफ़ बढ़ा दी। मुहम्मद जेब से पेंसिल निकालकर आड़ा-टेढ़ा लिखने लगा।

मैं अपना-सा मुँह लिये दफ़्तर लौट आया, टोली-नायक मेरे साथ काफ़ी रुखाई से पेश आया था।

"संभालो, अध्यक्ष," मैंने अध्यक्ष के सामने पोस्टर और चार तह किया हुआ काग़ज़ रख दिया। अध्यक्ष ने बेमन से "रसीद" खोली और अचानक उसका चेहरा तमतमा उठाः

"उफ़, कैसा ज़िद्दी आदमी है!" गुस्से के मारे बुरा हाल था उसका।

शाम को चायख़ाने में हुई गपशप से मुझे पता चला कि मुहम्मद ने रसीद लिखने के बजाय क्या घसीट मारा था।

"बेहतर होता, अध्यक्ष, अगर तुम खेत-कैंप की मरम्मत करवा देते, जो आज नहीं तो कल ज़रूर ही ढह जानेवाला है। यहां पोस्टर लगाना ख़तरे से ख़ाली नहीं है।"

आख़िर अड़ियल अध्यक्ष से अपनी ठानी करवाके रहा – उसके खेत-कैंप की मरम्मत कर दी गयी।

रास्ते में

और सुनिये हमारे सामूहिक फ़ार्म के ड्राइवर सादिक़ ने हाल ही में क्या बताया। एक बार शाम को कपास की आख़िरी खेप ट्रक में लादकर वे वसूली केन्द्र के लिए रवाना हुए। वे जल्दी में थे, क्योंकि शाम ढल रही थी और कपास क्रय-केंद्र के बंद होने में बहुत कम समय बचा था। ड्राइवर और टोली-नायक दोनों ही का मूड अच्छा था, क्योंकि दिन काफ़ी शुभ रहा था – उन्होंने कोटे से काफ़ी ज़्यादा कपास चुनी थी।

अचानक मिलिशियामैन की सीटी गूंजी। सादिक़ और टोली-नायक ने कभी सोचा भी नहीं था कि वह उन्हीं के लिए बजायी गयी है। लेकिन लाल-लाल, भरे गालोंवाले मिलिशियामैन ने ट्रक को तुरंत रुकवा लिया और सादिक़ को उतरकर आने को कहकर बड़े ध्यान से ट्रक का मुआयना करने लगा – माल नियमानुसार लादा गया है या नहीं। मुहम्मद अपना काम ढंग से करता था, उसके काम में मीन-मेख निकाल पाना बड़ा

मुश्किल था। लेकिन लाल-लाल गालवाले ने ऐसे मुँह बनाया जैसे उसे कोई ख़ामी आख़िर मिल ही गयी हैं उसने बड़े रोब से सादिक़ से लाइसेंस दिखाने को कहा और उसको इतने ध्यान से काफ़ी देर तक उलट-पलटकर देखता रहा कि टोली-नायक को शक होने लगा कि उसे पढ़ना भी आता है या नहीं। अंत में क़ानून और व्यवस्था के जवान रक्षक ने चेहरे पर उदारता का भाव लाकर लाइसेंस ड्राइवर की ओर बढ़ाते हुए कहाः

"ख़ैर, इस बार माफ़ कर रहा हूं। लेकिन! अच्छा, ज़रा मुझे पास के सामूहिक फ़ार्म तक छोड़ आओ, मुझे वहां काम है।"

सादिक़ दंग रह गया।

"पास के सामूहिक फ़ार्म में? लेकिन थोड़ी देर में क्रय केंद्र बंद होनेवाला है। तब हम कपास कहां रखेंगे?"

मगर लाल-लाल गालवाले ने उसकी एक न सुनी।

तब मुहम्मद ने, जो काफ़ी देर से ग़ुस्से के मारे लाल हुआ बैठा था, हमेशा की तरह मूंछों पर हाथ फेरा और धीरे-से कहाः

"ठीक है, आओ, बैठो, प्यारे दोस्त, तुम्हें ले चलते हैं।"

और जैसे ही अपने महत्त्व के अहसास से और ज़्यादा लाल हुआ मिलिशियामैन केबिन में बैठा, टोली-नायक ने ग़ुस्से में सादिक़ से कहाः

"चलो, मिलिशिया के चीफ़ के पास!"

फूलकर कुप्पा हुए सार्जेंट का चेहरा अचानक उतर गया। वह मुहम्मद से गिड़गिड़ाकर कहने लगा कि वह ऐसा न करे, अपने बच्चों तक की दुहाई देने लगा। और जानते हैं अड़ियल ने क्या किया? जैसा कहा, वैसा ही किया।

... उस सार्जेंट को शायद ख़ूब ज़ोरदार झाड़ पड़ी, क्योंकि बाद में वह मुहम्मद के पास उससे माफ़ी मांगने आया था ...

तो ऐसा आदमी है अड़ियल मुहम्मद। उसके क़िस्से सुनाने लगूं, तो कभी ख़त्म न हों। उससे तो ख़ुद मिलना कहीं बेहतर होगा। वैसे आपको आगाह कर दूं, प्यारे दोस्त : बड़ी होशियारी से पेश आइये उसके साथ, बहुत तेज़मिज़ाज है वह।

इब्राहीम अता से रास्ता पूछकर मैं नदी के किनारे-किनारे मुहम्मद की टोली से मिलने जा रहा था।

टोली-नायक खलियान में आयी कपास का हिसाब-किताब कर रहा था। उसने मुझे देखकर बस सिर हिला दिया और अपना काम जारी रखा।

मैंने जब कहा कि मैं उसके बारे में लिखना चाहता हूं, तो मुहम्मद के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी। अंत में जब उसने और लेखपाल ने मिलकर अंतिम बोरी ख़ाली की, तब टोली-नायक ने पलटकर मुझसे कहाः

"सुनो, भाई, बेहतर होगा कि तुम अग्रणी किसानों के बारे में लिखो।"

"अग्रणी किसानों के बारे में?!" मैं दंग रह गया। "मुझे तो ख़ुद अध्यक्ष ने बताया है कि आपकी टोली सबसे अच्छी है..."

मुहम्मद ने नीली आंखें सिकोड़कर संतोषपूर्वक मूंछों पर हाथ फेरा और विचारों में डूबा मुस्कराता हुआ बोला।

"सबसे अच्छी टोली बताया?.."

लेकिन उसकी आंखें अचानक फिर भावहीन हो उठीं और वह तीखे स्वर में बोलाः

"मुझे वक़्त से पहले सफलता का ढोल पीटना बिलकुल अच्छा नहीं लगता। यह ठीक है कि हम इस समय सामूहिक फ़ार्म में सबसे आगे हैं, पर अभी काम बहुत बाक़ी हैं। और जब हम योजना पूरी कर लें, तब बड़ी ख़ुशी से, आइये..."

मैं मन-ही-मन गुस्सा होता मुहम्मद की टोली से लौट रहा था। उफ़, कितना बेतकल्लुफ़ आदमी है! संवाददाता को ख़ाली हाथ भगा दिया। सचमुच बहुत ही अड़ियल है।

फिर भी मैंने फ़ैसला कर ही लिया कि देर-सवेर मैं इस मुहम्मद के बारे में लिखकर रहूंगा—ऐसे आदमी के बारे में जिसे हर चीज़ में दिलचस्पी है।

उत्किर हाशिमोव

(जन्म– 1941-2013)

उत्किर हाशिमोव गद्य-लेखक हैं। वह ताशक़न्द राजकीय विश्वविद्यालय के पत्रकारिता संकाय के स्नातक हैं। उनकी पहली कहानियाँ तथा लेख सन् 1960 में प्रकाशित हुए। प्रथम लेख-संग्रह "फ़ौलादी घुड़सवार" सन् 1963 में छपा। तत्पश्चात् कहानी-संग्रह व लघु-उपन्यासों – "स्तेपी की हवा", "पतंगे का दिन", "और बयार बहती है", "लोग क्या कहेंगे?", "दिल की आवाज़ सुनो" आदि प्रकाशित हुए। उत्किर हाशिमोव की कृतियों का अनुवाद सोवियत संघ के कई बंधु जनतंत्रों की भाषाओं में हो चुका है।

प्यार

1

वे काफ़ी देर तक एक दूसरे को चूमते रहे। उसकी लटें उसके चेहरे का स्पर्श कर रही थीं और वह एक अपरिचित और अत्यंत सुखद सुगंध अनुभव कर रहा था।

अचानक लड़की ने सीधा खड़े होकर उसे ज़ोर से धक्का दे दिया।

तिरकाश गधागाड़ी से टिककर खडा हो गया।

"मेरा बाप मुझे मार डालेगा," युवती ने बिखरे बाल ठीक करते हुए कहा। लेकिन उसकी आंखों में डर का नाम न था, वह समझ गया कि वह अपने पिता से नहीं डरती है।

तिरकाश ने थोड़ी दूरी पर घास पर नमदे का टुकड़ा बिछाये सो रहे बूढ़े की तरफ़ देखा। वृद्ध ने सिर के नीचे रंग-बिरंगी ख़ुरजी लगा रखी थी और उसका चेहरा अंधेरे में नज़र नहीं आ रहा था। और उससे थोड़ी ही दूर नाशपाती की झड़ी हुई पत्तियों पर चलता काला गधा चर रहा था।

पहाड़ी की चोटी प्रकाशमन् हो उठी और मिनट भर बाद गोल चाँद निकल आया। अधझड़ी पत्तियोंवाला नाशपाती का पेड़ अब काली छाया-सा लग रहा था। ठण्ड बढ़ती जा रही थी। लड़की ने चोटी गूंथकर पीठ पर डाल ली। फिर वह गाड़ी के पास जाकर फ़ुर्ती से उछलकर टांगें लटकाये उस पर बैठ गयी। वह सिर ऊँचा ताने ऐसे बैठी थी मानो सारी दुनिया से बेख़बर हो।

तिरकाश ने, ख़ुद भी न समझ पाते हुए कि वह क्या कर रहा है, घुटनों के बल बैठकर लड़की के पैरों को बाँहों में ज़ोर से कस लिया।

"दिलार, मत जाओ। मैं तुमसे विनती करता हूँ..." उसने अपना सिर उसके पैरों पर रख दिया। वह इंतज़ार कर रहा था कि वह उसके बाल सहलायेगी, पर दिलारा ने उसे फिर धक्का दे दिया।

"जाओ, मैं सोना चाहती हूँ!"

उसकी तनी हुई भौंहें और दृढ़निश्चयता से बंद होंठों पर नज़र डालकर तिरकाश कातर स्वर में, जिसमें खीज झलक रही थी, फुसफुसायाः

"मैं भोर में आऊंगा।"

वह चाँदनी में नहाये लंबे रास्ते पर अपनी छाया पर पैर रखता भागा। गाँव से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें आ रही थीं, चश्मे का पानी कलकल कर रहा था। सामने रोशनियाँ टिमटिमा रही थीं। तिरकाश टेकरी पर रुक गया, नीचे, रास्ते के किनारे नाश्पाती के पेड़ की धुंधली आकृति नज़र आ रही थी। दिलारा और उसका पिता वहीं कहीं थे।

और आगे बड़ी सड़क पर मानो रोशनियों की ज़ंजीर से बंधे-से कपास से लदे ट्रकों की क़तारें जा रही थीं।

वह अचानक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठा और दिल में उसे कुछ ख़ाली-ख़ाली सा लगा।

"नहीं!" वह फुसफुसाया। "मैं कहीं नहीं जाऊँगा। नहीं जाऊँगा।"

उसने अपने गरमाये बदन से क़मीज़ उतार फेंकी और सूखी, पीली घास पर बैठ गया।

"यह मुझे क्या हो रहा है? वह कहाँ से आ टपकी है? भला मैं तेंताकसाय छोड़कर जा सकता हूँ?"

गाँव में मुर्गे बांग देने लगे। क़ासिम अता शायद अभी-अभी खलियान से लौटकर चबूतरे पर ऊंघते इंतज़ार कर रहे होंगे।

तिरकाश की आंखों के आगे क़ासिम अता का चेहरा घुम गया, उनकी चिंतामग्न भली आँखें, पकी भौंहें, नुकीली दाढ़ी। क़ासिम अता उसके

लिए पिता की तरह थे। इस दुनिया में तिरकाश को छोड़कर उनका कोई और न था। तेंताकसाय में यह पुरानी गाड़ी क्यों आयी, क्यों वह दिलारा से मिला?

तिरकाश उठ खड़ा हुआ, उसे घर जाने की इच्छा हुई। चाँद काफ़ी ऊपर चढ़ चुका था, घने काले बादल आकाश में मंथर गति से तैर रहे थे, नम मिट्टी की सौंधी गंध आ रही थी।

2

यह बहुत पुरानी बात है, बहुत ही पहले की। तिरकाश ने जब से होश संभाला है तभी से उसे इस ज़मीन की भी याद है। वह कहाँ पैदा हुआ, उसका बाप कौन था, माँ कौन थी, उसे कुछ मालूम नहीं। उसे जिप्सियों ने पाला-पोसा था। और वह ख़ुद भी जिप्सी था।

औरतें, जो आधी रात गये तब अलाव जलाये रखती थीं, हंसी-मज़ाक़ करती रहती थीं, चटकीले लहंगों को सरसराती नाचती रहती थीं, और इस ज़िंदगी को किसी क़ीमत पर बदलने को तैयार नहीं थीं, वही औरतें उसकी मांएं थीं। अलाव के इर्द-गिर्द घेरा बनाकर बैठे रहनेवाले जिप्सी उसके बाप थे।

सूरज डूबते-डूबते वे घास के मैदान में कहीं अपने खेमे गाड़ लेते थे। तिरकश खंजरी की थापें और हँसी की आवाज़ें सुनता घास पर लेटा रहता, अलाव के चारों ओर हिलती-डुलती छायाएँ देखता और उस परिचित शोर में चैन की नींद सो जाता।

सुबह लोगों की बातचीत और गधों की रेंक से उसकी नींद ख़ुल जाती। वह ओस से भीगे बालों में हाथ फेरता, ठण्ड से सुन्न हुए हाथों को मलता ... और फिर वही राह, अनंत राह। उसकी समझ में नहीं आता था कि दुनिया में इतनी राहें क्यों है, जिप्सियों का डेरा है कि आगे चलता ही रहता है, चलता ही रहता है, और शायद कोई जिप्सी नहीं जानता है कि वे कहाँ जा रहे हैं।

यह अनंत यायावरी तेंताकसाय में आकर बंद हुई। वसंत की एक

रात को पहाड़ी नदी के पथरीले तट पर उन्होंने डेरा गाड़ दिया। तेंताकसाय नदी हज़ारों छोटे-छोटे द्वीप बनाती उफन रही थी, तेज छींटे उड़ाती खलबला रही थी।

तिरकाश तब सात बरस का था। उस दिन वह बहुत थक गया था और सबसे पहले सो गया था। उसकी नींद तड़के लहरों के थपेड़ों से खुली, जो उसे अपने साथ बहा ले जा रही थीं। अपनी चीख़ वह नहीं सुन सका, हालांकि वह चीख़ता रहा, जब तक कि नाक-मुँह में पानी न भर गया। गड़गड़ाहट से सारी नदी कांप उठी, आकाश काले बादलों से ढका था। तिरकाश ऊपर आया, उसने अंतिम बार काला आकाश देखा और तल में जाने लगा ...

जब अनजाने घर में उसने आँखें खोलीं, एक अपरिचित उसके पास खड़ा था। लगता था जैसे केवल उसकी हरी मख़मली उज़्बेकी टोपी ही सूखी बची है, हल्की सफ़ेदीवाली मूंछें और दाढ़ी गीली थीं। उसने गीले चोग़े का पल्ला उठाकर बालक का माथा पोंछा।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

तिरकाश समझ गया कि इसी आदमी ने उसे पानी से निकाला है।

"मुझे छोड़ दो," वह चीख़ा, मैं जाऊँगा!" उसने खड़ा होना चाहा, पर खड़ा न हो सका। अपरिचिंत ने उसे कंबल ओढ़ा दिया।

"तुम्हारा डेरा जा चुका है। जिप्सियों ने शायद सोच लिया कि तुम मर चुके हो," अपरिचित ने गहरी सांस ली। "पहाड़ियों से बहुत तेज़ सैल वह निकला था। ऐसी है हमारी तेंताकसाय। हर वसंत में पागल हो उठती है।"

तिरकाश रंगीन काग़ज़ चिपकायी छत को ताकता देर तक लेटा रहा और न जाने कब सो गया।

यह बहुत पुरानी बात है ... बहुत पहले की। और अगर गाँव में वह गधागाड़ी न आती और तिरकाश दिलारा को न देखता, तो उसे शायद ही इसकी याद आती।

3

सूरज क्षितिज की ओट से झांकने लगा, छोटी-सी जर्जर गधागाड़ी धूल-भरे रास्ते पर धीरे-धीरे जा रही थी। काला गधा खपच्ची-से पतले-पतले पैर रखता उसे खींच रहा था, पहिये उदासी से चरमरा रहे थे, लगता था जैसे रो रहे हैं। तिरकाश को वृद्ध की झुर्रीदार गर्दन की धसकन, उसके सफ़ेद बाल नज़र आ रहे थे। वृद्ध को जल्दी नहीं थीं, वह गधे को टिटकार नहीं रहा था। वह ऊंघ रहा था। उसने सुबह से तिरकाश से कुछ नहीं कहा था। वह केवल बीच-बीच में मुड़कर अपनी उनींदी लाल आँखों से युवक की तरफ़ ध्यान से देख रहा था।

तिरकाश और दिलारा साथ-साथ गाड़ी के पीछे चल रहे थे। लड़की मुस्करा रही थी और बेदमजनूँ की कमची से रास्ते के किनारे उगी घास को पीटती चल रही थी।

तिरकाश नहीं जानता था कि वह क्या सोच रही है, लेकिन जिस ज़िंदादिली से दिलारा मुस्करा रही थी, उससे वह समझ सकता था कि वह अपने से संतुष्ट है, अपनी सुंदरता पर उसे गर्व है और इस पर भी कि लड़के को वह अपने साथ ले जा रही है।

सूरज डूबने लगा था। संध्याकाल हवा ने क्षितिज पर उसकी ज्वाला बुझा दी।

पहिये रोते-से चर्र-चूं कर रहे थे, जर्जर गाड़ी टेकरी पर चढ़ रही थी।

तिरकाश अपना गाँव छोड़कर जाते समय केवल यही सोच रहा था: अब दिलारा सदा उसके साथ रहेगी और वह उसके साथ कहीं भी जाने को तैयार है। लेकिन जैसे-जैसे वे तिरकाश के गाँव से दूर होते गये, उसके क़दम कुछ डगमगाने लगे, उसे लगा जैसे किसी ने उसे अदृश्य महीन धागे से तेंताकसाय से बांध दिया है। हर क़दम पर धागा तनता जा रहा था। कुछ क़दम और, और धागा टूट जायेगा। उसे तेंताकसाय के रास्ते पर जाने-पहचाने ड्राइवरों के मिलने का डर था। पर कोई नहीं मिला।

गाड़ी टेकरी पर रुक गयी। तिरकाश ने मुड़कर देखा। नदी चमक रही

थी। घर नज़र नहीं आ रहे थे, केवल घने झुरमुट पर रात का साया पड़ रहा था। दूर रास्ते पर धूल उड़ रही थी। गाय का झुण्ड लौट रहा था। कभी वह भी भोर में बड़ी चितकबरी गाय को झुण्ड में हांक देता था, शाम होते वह ख़ुद आंगन में लौट आती थी। गाय को पड़ोसन दुहती थी। क़ासिम अता की पत्नी को मरे काफ़ी अरसा हो गया था। और तिरकाश को फिर याद आ गया कि क़ासिम अता का दुनिया में उसके, यानी तिरकाश के सिवा कोई नहीं है।

उसी साल, जब क़ासिम अता ने तिरकाश को पानी से निकाला था, उन्होंने उसे बस्ता, वर्णमाला ख़रीद दिये थे और स्कूल ले गये थे। तिरकाश को अचानक स्पष्ट याद हो आयाः कैसे वह सुबह ओससिक्त खेत से भागता हुआ स्कूल जाता था, कैसे सामूहिक फ़ार्म के बग़ीचे में लड़कों के साथ अंगूर तोड़ता था, कैसे पिछले वर्ष दसवीं कक्षा पास करके स्कूल से विदाई के समारोह में गया था...

तिरकाश को पतझड़ की रातों में खलियान में काम करने में मज़ा आता था। वह कपास के ढेर पर चढ़कर पीठ के बल लेट जाता, और तब उसे लगता जैसे आकाश बहुत नीचे उतर आया है और मुलायम, कोमल कपास का स्पर्श इतना सुखद लगता कि शब्दों में व्यक्त कर पाना असंभव होता। उसका चिंतन जादूई पहाड़ी के तले खड़े ट्रक का हार्न भंग कर देता था। उसके केबिन का दरवाजा धड़ाक से खुलता था।

"ऐ जिप्सी, सो गया क्या?"

तिरकाश बुरा नहीं मानता। कपास के ढेर से कूदकर ट्रक में कपास भरने लगता।

उसके बाद वह ट्रैक्टर ड्राइवर का अप्रेंटिस हो गया। उसे जब यह सब याद आयाः उपाड़ी मिट्टी की ताज़गी, पेट्रोल की तीखी गंध, ट्रैक्टर इंजन की घर-घर, ट्रैक्टर के चारों ओर मंडराते कौवों की कांव-कांव, तो वह समझ गया कि वह किसी क़ीमत पर इस ज़िंदगी को बदलने को तैयार नहीं हो सकता। वह यह समझ गया और रुक गया। और कंधे पर कमची की चोट पड़ने से चौंक उठा।

दिलारा कूल्हे पर हाथ रखे मुस्कराती हुई कमची को घुमाये जा रही थी। वह बड़े रोब से मुस्करा रही थी और शायद इसीलिए उसे उसकी प्रखर आंखें और तराशी हुई-सी नाक पहली बार अप्रिय लगीं।

"तुमने ऐसा क्यों किया?" उसने दबी आवाज़ में पूछा। और उसने महसूस किया कि उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा है।

"वाह रे, मेरे अभागे प्रेमी!" दिलारा ठहाका लगाकर हँस पड़ी। तिरकाश ने निःशब्द उसके हाथों से कमची खींच ली और तोड़ डाली। दिलारा वैसे ही मुस्कराती रही।

"चलो, लौट चलते हैं!" तिरकाश ने उसके कंधे का स्पर्श किया। "मैं तुमसे विनती करता हूँ, दिलार। हम कहाँ जायेंगे? लौट चलते हैं," उसने अचानक उसका प्रगाढ़ आलिंगन कर लिया और फुसफुसायाः "चलो, तेंताकसाय लौट चलते हैं। वहाँ मेरे अब्बा हैं, दोस्त हैं, मेरा ट्रैक्टर है। जानती हो..." उसने रुद्ध कंठ से कहा। "वहाँ मेरा सब कुछ है ... मेरी जन्मभूमि है, दिलार।"

उसकी लटें, भीनी मादक सुगंध फिर उसके चेहरे का स्पर्श कर गयी।

"दिलार, मान जाओ, लौट चलो, दिलार।"

लड़की झटके से पीछे हट गयी। वह अब मुस्करा नहीं रही थी। उसकी नज़रें बुझ चुकी थीं।

"तुम्हें किसी ने नहीं बुलाया। तुम ख़ुद आये। तुम जिप्सी नहीं हो," वह अचानक चीख़ उठी, "न ही सच्चे मर्द हो! किसने कहा था तुमसे राह में मिली पहली लड़की के पीछे-पीछे चल पड़ने को? अपने गाँव लौट जाओ। मैं तुमसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहती," और वह भागकर टेकरी से नीचे उतर गयी।

"दिलारा!"

उसने भागकर उसका हाथ पड़ लिया।

"जाओ!" वह उसे तिरस्कार-भरी निगाहों से देख रही थी।

तिरकाश सन्न रह गया, उसमें पाशविक शक्ति जाग उठी। उसने

लड़की को धक्का दे दियाः

"तुम ख़ुद जाओ!" वह भर्रायी आवाज़ में चीख़ा और सड़क की ओर भागा। उसने न मुड़कर देखा और न ही अपनी रफ़्तार कम की।

4

सर्दी जल्दी आ गयी थी। हिमपात हुआ था। लेकिन दिन निर्मल था।

तिरकाश अभी-अभी सफ़ेद चादर ओढ़कर लेटी धरती को जगाता ट्रैक्टर चला रहा था। बर्फ़ से ढके खेत में सूरज की किरणें आँखें चौंधिया रही थीं। कपास के इक्के-दुक्के तने अपने भाग्य को कोसते-से सिकुड़ रहे थे। ट्रैक्टर अपने पीछे काली लकीर छोड़ता अभी ठण्ड से न जमी ज़मीन पर तैरता-सा चल रहा था।

तिरकाश इंजन बंद करके केबिन से नीचे कूदा। दोपहर के खाने का समय हो चुका था। उसे शहतूत के झुरमुट के पास एक लड़की पीला रूई-भरा जाकेट पहने और सिर पर नीला रूमाल बांधे नज़र आ गयी। वह कूल्हे पर हाथ रखे खड़ी थी। इस मुद्रा में तिरकाश को कुछ याद हो आया। और अचानक लड़की ने हाथ हिलाया।

"दिलारा, दिलारा!" उसकी ख़ुशी का पारावार नहीं रहा। उसने भागकर उसके पास पहुँच उसके पतले-पतले हाथ पकड़ लिये।

"कितने ठण्डे हैं!" उसने उसे अपलक देखते हुए सोचा।

दिलारा पीली पड़ गयी थी, उसकी आंखें में वही जानी-पहचानी, गर्वीली मुस्कान थी। उसने सिर का रूमाल खोल दिया, मानो उसे गर्मी लग रही हो, और तिरकाश के सीने पर हाथ रख उसे हौले से धकेल दिया।

"दुतकारोगे तो नहीं?"

"तुम कब आयीं?"

"सुबह।"

"हमेशा के लिए?"

कामगार प्रकाशन

9 788198 913920

मूल्य 400/-